RNI No.: MPHIN/2018/77137

ISSN 2582-483X

पाठशाला भीतर और बाहर

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

वर्ष–4 अंक–11 मार्च 2022
तिमाही, भोपाल

गणित विशेष

मार्च, 2022 (वर्ष 4, अंक 11)

प्रकाशक

- **अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय**
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
Web: www.azimpremjiuniversity.edu.in

सम्पादकीय कार्यालय

- **सम्पादक**
पाठशाला भीतर और बाहर
अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव
सोसायटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा,
भोपाल, म.प्र. 462039 फोन-0755-4074060
pathshala@apu.edu.in
gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
मो. 8226005057

डिज़ाइन एवं प्रिंट

- **गणेश ग्राफिक्स,**
26-बी, देशबंधु परिसर,
प्रेस काम्प्लेक्स,
एम.पी.नगर, ज़ोन-1
भोपाल, म.प्र. 462011
ganeshgroupbpl@gmail.com
मो. 9981984888

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का हिन्दी प्रकाशन है। यह शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, अन्य ज़मीनी कार्यकर्ताओं व शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए विचार-विमर्श का एक मंच है। पत्रिका का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के अनुभवों व आवाज़ को जगह देकर शिक्षा के विमर्श को गहन व यथार्थपरक बनाना है।

अनुक्रम

सम्पादकीय

स्कूली गणित में गणितीय क्षमता के महत्त्व पर *एनईपी 2020* में रेखांकित अधिकांश पहलू वही हैं जो पहली राष्ट्रीय शिक्षा नीति में व उसके बाद आए कई अन्य दस्तावेज़ों और *एनसीएफ़ 2005* व इसके साथ जुड़े गणित के स्थिति पत्र में भी रेखांकित थे। *एनसीएफ़ 2005* में गणितीय क्षमता के बारे में कई बातें विस्तार से कही गई हैं जो गणित व उसकी शिक्षा के प्रति दृष्टि को स्पष्ट करती हैं। उदाहरण के लिए, गणित के प्रति डर, कक्षाओं में उत्तर, सूत्र व कलन रटाने के प्रयास और यहाँ तक कि सवालों के हल रटने की मुहिम, गणित की अमूर्त प्रकृति, सामग्री का उपयोग व उसकी सीमाएँ, सभी ऐसे मसले हैं जिनके बारे में *एनसीएफ़ 2005* व उसके साथ जुड़ा गणित का स्थिति पत्र दोनों बात करते हैं। स्थिति पत्र तो बहुत-से ऐसे मसलों को उठाता है जिनपर अकसर हम विचार नहीं करते। उदाहरण के लिए, गणित शिक्षण व इसके भाषा और अन्य विषयों के साथ अन्तर्सम्बन्ध, बच्चों की नैसर्गिक गणितीय क्षमता, बुनियादी स्तर पर गणित व भाषा में सम्बन्ध, आदि।

पाठशाला भीतर और बाहर का यह अंक गणित शिक्षा पर केन्द्रित है। स्कूल का गणित एक ऐसा विषय है, जो गणित के हमारे आसपास होते हुए, हमारे जीवन के हर हिस्से में इस्तेमाल होते हुए भी मुश्किल लगता है। गणित अकसर सबसे अधिक डराने वाला विषय माना जाता है और इसकी भूमिका को द्वारपाल समान भी कहा गया है। यानी वह बाधा जिसे पार किए बिना आप आगे नहीं पढ़ सकते। यह बाधा न सिर्फ़ आगे तक पढ़ पाने की राह में है बल्कि कौन-से विषयों को पढ़ पाते हैं, इसे भी निर्धारित करती है। शालाओं में गणित को अकसर प्रतिष्ठा व होशियार होने का प्रतीक माना जाता है किन्तु यह मान्यता इस विषय के प्रति रुचि व सीखने का जोश बनाने की बजाय आतंकित ही करती है। गणित के प्रति यह डर सीखने वालों व सिखाने वालों दोनों के लिए बड़ी चुनौती है। मुख्य प्रश्न यह है कि कैसे इन दोनों में यह आत्मविश्वास आए कि गणित सीखा जा सकता है।

इस विरोधाभासी बिन्दु पर ध्यान देने की आवश्यकता है कि हर समय हमारे आसपास होते हुए भी और हर बच्चे की इसमें बुनियादी पकड़ होने के बावजूद, स्कूल का गणित दुरूह व जीवन से परे लगता है। बहुत-से लोगों को यह रूखा और अमूर्त-सा भी लगता है। लेकिन अमूर्त होने के बावजूद गणित जीवन से जुड़ा है, यथा– इसके विकास को सीखने वाले में एक नज़रिए के विकास के रूप में देखा जाना चाहिए। गणितीयकरण कुछ और नहीं बस बच्चों के आसपास के माहौल में शामिल गणित के उपयोग, उनके आसपास की भाषा का गणितीय धारणाओं के प्रस्तुतिकरण में इस्तेमाल आदि ही है। इसके अलावा, गणित सीखने में इंसानों के सीखने के ढंग के प्रति सतर्कता, उनमें गणितीय क्षमता के स्वाभाविक विकास, आदि जैसे पहलू शामिल हैं। इस अंक के लेख इनमें से कुछ मसलों पर केन्द्रित हैं।

पहला लेख *जीवन में गणित* रुबीना खान और महेश झरबड़े का है। लेखक द्वय इसमें मध्य प्रदेश, भोपाल की कच्ची बस्तियों में रहने वाले अगरिया और गोंड समुदाय के बच्चों व किशोरों के साथ गणित शिक्षण के अनुभव साझा करते हैं। वे बताते हैं कि इन समुदायों से आने वाले बच्चे बुनियादी गणितीय अवधारणाओं की एक काफ़ी बेहतर समझ लेकर स्कूल आते हैं। वे इन बच्चों के दैनिक जीवन में मौजूद उन सन्दर्भों का ज़िक्र करते हैं जो उनकी एक बेहतर गणितीय समझ हासिल करने में मददगार बनते हैं।

परिवेश में मौजूद सन्दर्भ और उनपर उपयुक्त बातचीत की गणित सीखने में महत्ता पर केन्द्रित एक और लेख है, *सन्दर्भों में निहित गणितीय सम्भावनाएँ।* इसके लेखक हैं अशोक प्रसाद। लेख आसपास मौजूद स्वाभाविक सन्दर्भों को पहचानने, बच्चों में गणितीय समझ विकसित

करने के लिए इन सन्दर्भों पर बातचीत की ज़रूरत और उसकी प्रक्रिया पर विस्तार से चर्चा करता है। चयनित सन्दर्भ को लेकर किए गए क्रमगत काम का विवरण देते हुए लेख दर्शाता है कि उपयुक्त सन्दर्भ, उपयुक्त प्रश्न और उपयुक्त तरीक़े से किया गया काम बच्चों को विभिन्न गणितीय क्षमताओं; अपने गणितीय विचारों का निरूपण, उस विचार पर बातचीत, उसका दूसरे अमूर्त विचारों से अर्थपूर्ण सम्बन्ध, आदि को विकसित करने में मदद करता है।

अंशुल राजुरकर अपने लेख, *कौन बड़ी-कौन छोटी : भिन्नात्मक संख्याओं की तुलना* में, भिन्नात्मक संख्या क्या है, और बच्चों को भिन्नात्मक संख्याओं की अवधारणा को समझने में मदद करने के लिए किस तरह के अभ्यास और गतिविधियाँ की जा सकती हैं, इसपर अपने अनुभव आधारित विचार रखते हैं।

तान्या सक्सेना का लेख है *प्राथमिक स्तर से गणितीय सोच का विकास।* वे बताती हैं कि बच्चों में शुरुआती स्तर से ही गणितीय सोच, मेथेमेटिकल रीज़निंग विकसित की जा सकती है, वे इस सन्दर्भ में किए गए शोध का ज़िक्र भी करती हैं। लेख में गणितीय सोच, तार्किक सोच से क्या तात्पर्य है, इसपर चर्चा है। एनसीईआरटी और छत्तीसगढ़ राज्य की गणित की पाठ्यपुस्तकों के कुछ उदाहरणों पर चर्चा करते हुए लेख यह भी दर्शाता है कि गणितीय सोच के विकास के लिए किस तरह के अभ्यास ज़्यादा बेहतर होंगे और क्यों?

गणित और भाषा का सम्बन्ध शुरुआती स्तर पर काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। मुकेश मालवीय का लेख *गणित में भटकाव, एक वजह, भाषा का अटकाव* गणित की अवधारणाओं को सीखने के दौरान भाषा के प्रयोग पर है। गणित में तकनीकी शब्द होते हैं लेकिन इन शब्दों के अर्थ बच्चे समझ पाएँ, इसके लिए पहले शिक्षक को स्वयं के लिए इन तकनीकी शब्दों की व्याख्या करनी होगी। बच्चे तकनीकी शब्दों को समझ पाएँ, इसके लिए बार-बार इन शब्दों पर बातचीत ज़रूरी है, और यह बातचीत, बच्चे जिन अवधारणाओं से परिचित हैं, उनके साथ इन नए शब्दों के सम्बन्ध को ध्यान में रखते हुए हो।

गणित की एक और कक्षा का उदाहरण है अंकित सिंह का लेख *बच्चे, रेखा और कोण।* लेखक ने कोण की अवधारणा पर कक्षा में बच्चों के साथ किए गए काम का वर्णन किया है। वे रेखांकित करते हैं कि ठोस की मदद से कोण की अवधारणा पर बात करते हुए द्विविमीय और त्रिविमीय आकृतियों के अन्तर को ध्यान में रखना और उनपर बातचीत करना बहुत ज़रूरी है।

मैडम, मेरा जवाब सही है! इस लेख में मीनू पालीवाल अपनी कक्षा के उदाहरणों को रखते हुए, एक वयस्क और शिक्षक होने के नाते, बच्चों के ज्ञान पर अपने ज्ञान के वर्चस्व के बारे में बात करती हैं। कक्षा के बाद में किए विश्लेषण के उपरान्त वे पाती हैं कि जाने-अनजाने उन्होंने भी बच्चों के जवाब को ग़लत करार दिया जबकि वे सही थे। वे सवाल करती हैं कि क्यों हम अकसर बच्चों के नज़रिए को अनदेखा करते हैं?

उत्तर खोजना बनाम प्रश्न बनाना लेख सत्य नारायण यादव का है। वे अपने कक्षा अनुभव के हवाले से बताते हैं कि पाठ्यपुस्तक में दिए गए पाठ पर प्रश्न बनाने की गतिविधि न केवल पढ़ना-लिखना सीखने में मददगार होती है, बल्कि यह सीखने में बच्चों की रुचि बनाने, पाठ के विभिन्न पहलुओं को विस्तार से समझने और कक्षा में उनकी सक्रिय भागीदारी को सुनिश्चित भी करती है।

कोविड महामारी के बाद गणित शिक्षण की शुरुआती प्रक्रिया लेख गुलशन यादव का है। महामारी के दौरान स्कूलों के बन्द होने से बच्चे बहुत कुछ भूल गए हैं जिससे सीखने में आगे बढ़ने ख़ासकर गणित के क्षेत्र में उन्हें कठिनाई आ सकती है क्योंकि गणितीय अवधारणाएँ आपस में गुँथी

होती हैं। वे छत्तीसगढ़ राज्य में स्कूलों में किए गए बेसलाइन आकलन और इस सन्दर्भ में शिक्षकों से हुई उनकी चर्चा का ज़िक्र करते हुए बताते हैं कि ऐसे अध्ययन यह जानने में काफ़ी मददगार हैं कि बच्चे क्या भूल गए हैं। वे यह भी बताते हैं कि शिक्षक स्वयं इस तरह के छोटे अध्ययन अपनी कक्षा के बच्चों के साथ कर सकते हैं और निष्कर्षों के आधार पर यह तय कर सकते हैं कि वे अपनी कक्षा में बच्चों के साथ कहाँ से शुरुआत करें?

हृदयकान्त दीवान का लेख गणित क्यों और कैसे? शिक्षकों के साथ हुए उनके संवाद पर आधारित है। लेख गणित शिक्षण से जुड़ी शिक्षकों की मान्यताओं और सवालों : गणित क्या है, गणितीय अवधारणाएँ कैसे विकसित हुईं, गणित के इतिहास की समझ गणित शिक्षण को कैसे प्रभावित कर सकती है, और गणित में ठोस का उपयोग, मूर्तता और अमूर्तता को कैसे समझें? इन सभी के सन्दर्भ में विचार रखता है।

रजनी द्विवेदी अपने लेख गणित से क्यूँ डरना? में शुरुआती उम्र के बच्चों के साथ गणित सीखने-सिखाने के अनुभवों को रखती हैं। वे बताती हैं कि कैसे गणित के प्रति असहजता और डर निर्मित किया जाता है।

पुस्तक / फ़िल्म चर्चा स्तम्भ के तहत इस अंक में दो लेख हैं। पहला पुस्तक सब मज़ेदारी है! कथा नीलगढ़ पर चर्चा और दूसरा द बुक थीफ़ फ़िल्म पर चर्चा। साक्षात्कार स्तम्भ में, मध्यप्रदेश के शिक्षक लालारामजी का साक्षात्कार है, शिक्षक से बातचीत अंजना त्रिवेदी ने की है।

इस अंक का संवाद गणित सीखने में भाषा, संवाद और शिक्षक व विद्यार्थी के बीच बातचीत का महत्त्व विषय पर है। संवाद में हुई चर्चा बताती है कि पहले गणित को एक कौशल के रूप में देखा जाता है लेकिन धीरे-धीरे गणित के ज्ञान का दायरा काफ़ी बढ़ गया है, साथ ही सीखने-सिखाने के तरीक़ों को लेकर भी बदलाव आया है। इन बदलावों के मद्देनज़र भाषा की भूमिका और भी अहम हो जाती है।

कोविड के कारण दो साल स्कूल नहीं खुले। बच्चे पढ़ नहीं पाए और वे एक दूसरे से मिल भी नहीं पाए और खेल भी नहीं पाए। इसके अलावा, घरों में हर प्रकार के अन्य तनावों के कारण भी उनपर कई तरह का असर हुआ है जिसका अन्दाज़ा अभी पूरी तरह से नहीं लगा है। सीखने के सम्बन्ध में कई अध्ययन हुए हैं जिनसे यह समझ आता है कि इस दौरान स्कूल में पढ़ाई जाने वाली सामग्री के सन्दर्भ में बच्चे काफ़ी पिछड़े हैं। यह हर विषय में हुआ है, किन्तु गणित में व पढ़ पाने की क्षमता के विकास में इसका सबसे अधिक असर पड़ा है। गणित एक ऐसा विषय है जिसमें अवधारणाओं का विकास एक दूसरे पर लगभग क्रमबद्ध रूप से निर्भर है। अतः इस अन्तराल में सबसे ज़्यादा नुक़सान इसी विषय में होने की आशंका है। हालाँकि सामान्य जीवन में गणित का उपयोग होता है, लेकिन उसका सामान्यीकरण व औपचारिक अमूर्तिकरण स्कूल की कक्षाओं में साथियों, शिक्षकों व उपयुक्त सामग्री के साथ कार्य कर पाने से ही होता है। अतः स्कूल बन्द रहने के दौरान आए गैप को ध्यान में रखते हुए ही आगे के शिक्षण के बारे में सोचना है। इस अंक में शामिल लेखों में ऐसे मसलों पर भी लेख हैं। हमें उम्मीद है कि इस अंक में प्रस्तुत अनुभव व विचार आपको उपयोगी लगेंगे व आप इन्हें अपने सन्दर्भ में देख पाएँगे। हमारी यह भी उम्मीद है कि इन्हें पढ़कर आप भी अपने प्रयास व उससे मिले अनुभवों के बारे में सोचेंगे व उनमें से उन मसलों को साझा करेंगे जो औरों के लिए भी उपयोगी और महत्त्वपूर्ण हैं।

सम्पादक मण्डल

जीवन में गणित

रुबीना ख़ान और महेश झरबड़े

यह लेख गणित और संस्कृति के जुड़ाव के बारे में है। लेखक विभिन्न समुदायों में रहने वाले बच्चों और किशोरों के साथ काम करने के दौरान उनसे हुई बातचीत और अपने अवलोकनों के आधार पर बताते हैं कि गणित की कई अवधारणाएँ उनके रोज़ के जीवन का काफ़ी अहम हिस्सा होती हैं। वे इन अवधारणाओं के ठोस उदाहरण देते हैं और साथ ही यह भी बताते हैं कि बच्चे और किशोर कहाँ-कहाँ और कैसे इन्हें काम में लेते हैं। लेख रेखांकित करता है कि स्कूल में गणित सीखते समय बच्चों की इन अवधारणाओं की समझ को ध्यान में रखते हुए काम करना बेहतर होगा। सं.

गणित हमारे जीवन का अहम अंग है। हमने अपने काम के तहत अलग-अलग समुदायों के युवाओं और बच्चों के साथ शैक्षिक चर्चाओं एवं गतिविधियों के दौरान अनुभव किया कि इन समुदायों में रहने वाले बच्चों के गणित का शुरुआती स्तर अन्य विषयों की तुलना में बेहतर होता है।

बच्चों व युवाओं से बातचीत और उनकी दिनचर्या में हमने गणित के कई पहलुओं को देखा व समझा। इनमें पैटर्न बनाना या पैटर्न की समझ होना, जोड़ना या मिलाना, घटाना या कम करना, संख्या या वस्तुओं को दोगुना, तीन गुना या चार गुना करना और सबको बराबर बाँटना या भाग करना आदि शामिल था। जिन बस्तियों में हम काम कर रहे हैं, वहाँ गणित की इन सभी अवधारणाओं को सीखने और समझने में रुपए-पैसों की मुख्य भूमिका है। रोज़-रोज़ के छोटे-छोटे लेन-देन बच्चों में कम-ज़्यादा, छोटी या बड़ी संख्या मान, विस्तारित रूप, स्थानीय मान जैसी अवधारणाओं को हर दिन पोषित कर रहे होते हैं। उनके जीवन में चल रहा यह गणित कई बार स्कूल के गणित से काफ़ी जुदा होता है। जो बच्चा स्कूल के ब्लैकबोर्ड पर 27 नहीं लिख पाता; वही बाज़ार में 5 रुपए प्रति कुप्पी पानी बेचकर 80 रुपए की सब्ज़ी अपने घर लेकर आता है। स्कूल के गणित और जीवन के गणित में अकसर आँख मिचौली चलती रहती है।

लोगों के जीवन में चलने वाले गणित को समझने के लिए हमने कुछ चुनिन्दा समुदायों की दिनचर्या और उनके द्वारा किए जाने वाले कामों और उसमें निहित गणितीय अवधारणाओं

चित्र : महेश झरबड़े

को बातचीत के माध्यम से समझने की कोशिश की और साथ में यह भी देखने का प्रयास किया कि उनके द्वारा किए जा रहे काम उनके बच्चों और उनकी गणितीय क्षमता पर किस तरह असर करते हैं।

हमने मुख्य रूप से बाग़मुगालिया और बापूनगर में समुदाय के लोगों, बच्चों व युवाओं से बातचीत की। ये दोनों ही समुदाय क्रमशः गोंड और अगरिया समुदाय से सम्बन्धित हैं और इनके पारम्परिक एवं वर्तमान काम काफ़ी अलग-अलग हैं। बाग़मुगालिया की पहली और बापूनगर की दूसरी पीढ़ी अब स्कूल जा रही है। इनके कामों को हमने गणितीय चश्मे से देखने और समझने की कोशिश की।

दोनों ही बस्तियों में अवलोकन एवं चर्चा के बाद कुछ बातें समझ आईं और ये दोनों ही बस्तियों के लिए कॉमन थीं।

1. ज़्यादातर लोग शून्यान्त संख्याओं जैसे– 10, 20, 30, 40, ..., 100, 200, 500, 1000, 2000, 5000 आदि को याद रखते हैं और इसी आधार पर गणित करते हैं। उदाहरण के लिए, यदि उन्होंने 96 रुपए का सामान ख़रीदा तो वे बताते हैं 4 कम सौ रुपए का सामान लिया। यदि 80 का सामान ख़रीदा तो कहेंगे 20 कम सौ रुपए का हिसाब हुआ। या फिर अमुक इंसान को 100 के ऊपर 28 रुपए देने हैं या 2 कम 130 देने हैं, आदि। रोज़गार माँगने में, बँटवारे के काम और हिसाब रखने में भी यह तरीक़ा काम में लिया जाता है और बच्चे भी समुदाय से यह सीख लेते हैं। हम सब भी अकसर हिसाब याद रखने या ठीक से हिसाब करने के लिए शून्यान्त के सिद्धान्त का उपयोग करते हैं। मैंने कई लोगों को कहते सुना है, ‘राउण्ड फिगर में 1000 मान लो’ अर्थात 1000 से थोड़ा कम या ज़्यादा होने पर 1000 के क़रीब मान लेना।

2. इन समुदायों में ज़रूरत की चीज़ें रोज़ ख़रीदनी पड़ती हैं और छोटे-छोटे सामान ख़रीदने के लिए बच्चों को ही भेजा जाता है। 8 वर्षीय कुमुद बताती है, “मेरे पापा काम से आते हैं तो मुझको 50 रुपए देते हैं। मैं 10 का तेल, 30 का चावल लाती हूँ और 10 रख लेती हूँ। कभी-कभी 5 का डमडम ख़रीदती हूँ और 5 भाई को दे देती हूँ।” ये रोज़ के छोटे-छोटे काम बच्चों को हिसाब-किताब तो सिखाते ही हैं, उनकी गणितीय क्षमता और दुनिया की समझ को भी मज़बूत करते हैं।

3. हमने चर्चा में काफ़ी स्पष्टता से यह भी समझा कि बस्तियों में आधा, डेढ़ गुना, दोगुना, तीन गुना की अवधारणा भी सबको बहुत स्पष्ट रहती है। लता दीदी बताती हैं, “हम घास काटने वन विहार जाते हैं। घर में काम रहता है तो कभी दो दिन काम करते हैं तो कभी ढाई दिन काम करके छुट्टी लेते हैं, तब 2 दिन का पूरा और एक दिन का आधा पैसा मिलता है। घर में ज़्यादा लोग होते हैं और खाने का कम सामान रहता है तब कभी आधा-आधा तो कभी डेढ़-डेढ़ मिलकर बाँटते हैं। ये सब काम बच्चों में डेढ़ गुना, साढ़े तीन गुना की अवधारणा को मज़बूत करते हैं। इसके विपरीत, अन्य परिवारों की परिस्थितियों में डेढ़ गुना या साढ़े तीन गुना की अवधारणा ही कम होती है, इसलिए ये अवधारणाएँ उनके जीवन से भी कम जुड़ती हैं।

4. हमने देखा कि बस्ती के बच्चों का अनुमान वास्तविकता के काफ़ी क़रीब होता है। इसकी वजह है कि बच्चे और बड़े सामूहिकता में काम करते हैं और जो भुगतान होता है वह भी एकमुश्त मिलता है और फिर एक-एक को बँटता है। 13 साल का जवान बताता है, “जब हम काम माँगने जाते हैं तो लोग बोलते हैं इस मैदान से घास हटाना है कुल 800 देंगे। तब हम सोच लेते हैं कि 4 लोगों

को 200–200 रुपए मिलेंगे। हम बोलते हैं 900 दे देना नहीं तो 50 बढ़ा देना। कभी–कभी वो मान जाते हैं कभी नहीं। जितना ज़्यादा मिलता है उससे हम चाय–नाश्ता कर लेते हैं और बचा हुआ बराबर बाँट लेते हैं और हमारा हिसाब भी सही रहता है।" बाग़मुगालिया जैसी बस्ती में तो लोग पानी भी ख़रीदकर पीते हैं। 10 साल की वैष्णवी बताती है, "मैं 5 कुप्पे पानी लाती हूँ तब हमारी टंकी भरती है फिर इससे 3 लोग नहाते हैं।"

चित्र : मोंटी धुर्वे

बाग़मुगालिया बस्ती में लोगों के काम और गणित

इस बस्ती में गोंड समुदाय के लोग रहते हैं। ये कई दशकों से काम की तलाश में इस शहर से उस शहर जाकर ठहरते आए हैं। काम ख़त्म होने पर अगली काम की जगह पर डेरा डाला और फिर अगली जगह। पिछले कुछ 30–40 सालों से ये अपनी स्थाई झुग्गियों में रहने लगे हैं।

इस बस्ती में तीन तरह के काम प्रमुखता से दिखाई देते हैं। पहला, गड्ढे खोदना– कंस्ट्रक्शन साइट पर घर बनाने, बाँध या तालाब निर्माण, पेड़ लगाने और पाइपलाइन या इलेक्ट्रिक लाइन बिछाने के काम। दूसरा, पेड़ों की कटाई, छँटाई और पेड़ काटकर गिराना एवं तीसरा साइट पर जाना, मतलब शादी, पार्टियों में भोजन की व्यवस्था सँभालना।

गड्ढे खोदना : विश्वकर्मा बताते हैं कि जो लोग गड्ढे खोदने जाते हैं उनके पास गैंती,

चित्र : मोंटी धुर्वे

फावड़ा, तसला और इंची टेप (inch tape) रहता है। गड्ढे खोदने वालों को मीटर, फ़ीट, इंच अच्छे से मालूम होते हैं। लम्बाई, चौड़ाई और गहराई नापने के लिए वे इसका इस्तेमाल करते हैं। उनको लिखना नहीं आता, पर वे सारी नपाई अच्छे से जानते हैं। एक दूसरे को देख–देखकर सीख गए हैं। जो लोग ये काम करते हैं उन्होंने अपने हाथ की लम्बाई, कमर तक की गहराई और नाक तक की ऊँचाई नापकर रखी है। जब कोई बोलता है कि 3 बाय 3 का गड्ढा खोदना है तो वो समझ जाते हैं और बता देते हैं कि

ये फ़ीट में कितना होगा और इंच में कितना? उनकी टीम में हर नाप के साथी रहते हैं; वो उनको नापकर भी सही साइज़ का गड्ढा खोद लेते हैं। उन्हें भी शुरू में नहीं समझ आता था, पर साथ काम करते-करते सीख गए।

पेड़ काटना : पेड़ काटने का काम सीधे-सीधे गणितीय अवधारणा से नहीं जुड़ता, पर इसमें बहुत ज़्यादा अनुमान का गणित चलता है। कामगार साथियों ने बताया कि पेड़ काटने का काम बहुत रिस्की होता है। पेड़ काटकर गिराने से ज़्यादा पेड़ की छँटाई में वक़्त लगता है, क्योंकि पेड़ की छँटाई के लिए हर बड़ी डाल पर जाकर छोटी डालियाँ हटानी होती हैं और इसमें दो-तीन लोगों को पेड़ पर चढ़ना होता है तो काम जल्दी हो जाता है। इसलिए इस काम के हम ज़्यादा पैसे माँगते हैं, पेड़ ऊँचा और सीधा हो तो और ज़्यादा रिस्क रहता है। इस काम के लिए टँगिया (कुल्हाड़ी) और रस्सी का इस्तेमाल करते हैं। पेड़ की ऊँचाई और रिस्क देखकर भी हम पैसे तय करते हैं।

चित्र : मोंटी धुर्वे

जब हम कोई बड़ा पेड़ काटकर गिराने का काम लेते हैं तो ये ध्यान रखना होता है कि पेड़ किसी के घर पर न गिरे, रास्ते पर गिर गया तो रास्ता बन्द होने का भी ख़तरा रहता है। मोन्टी बताता है, "भैया, फिर हम बैठकर गणित लगाते हैं कि पेड़ कितने मीटर ऊँचा होगा, नीचे गिरेगा तो कहाँ तक जाएगा। सब तय करने के बाद हम पेड़ को तीन या चार अलग-अलग जगहों से काटकर गिराते हैं। पहले ऊपर वाला हिस्सा, फिर उसके बाद वाला और फिर नीचे से काटते हैं। पेड़ किसी के घर पर नहीं गिरे इसलिए पहले रस्सी से बाँध देते हैं और फिर घर बचाकर नीचे खींच लेते हैं।

चित्र : मोंटी धुर्वे

साइट पर जाना : किसी शादी या समारोह में जाकर भोजन की व्यवस्था सँभालने के काम को बस्तियों में 'साइट' के नाम से जाना जाता है। इसमें ज़्यादातर युवा साथी ही जाते हैं क्योंकि यह देर रात शुरू होता है और सुबह तक चलता है। दीपक बताता है कि जब वह साइट पर होता

है तो 15 से 20 लोग एक साथ जाते हैं। प्लेट, रोटी, पूड़ी, चावल, खीर, चाउमीन, हलवा और पानी आदि के काउण्टर इन सब जगहों पर एक-एक व्यक्ति को खड़ा होना पड़ता है। हम सबको पहले से पता रहता है कि पार्टी या शादी में ज़्यादा-से-ज़्यादा कितने लोग आ सकते हैं। उसी हिसाब से हम काउण्टर में सामान रखते हैं। साइट पर जाते-जाते हमको ये पता चल गया है कि एक पैकेट में 100 चम्मच आते हैं, एक पैकेट में 75-80 बाउल होते हैं और एक क्रेट में 900 बाउल जमा सकते हैं। प्लेट 25-25 की छल्ली में जमाते हैं। 50 डिस्पोजल का एक पैकेट रहता है। जब हमको बोला जाता है कि 550 लोगों का खाना है तब हम अपने-अपने काउण्टर के हिसाब से सामान उठाते और काउण्टर पर जमाने लग जाते हैं। प्लेट वाला 22 छल्ली प्लेट और डिस्पोजल वाला 11 पैकेट उठाता है। ऐसे ही सब अपने-अपने काम में लग जाते हैं। जब हम ये करते हैं तब हमारी नज़र बड़े सामान पर भी रहती है। पार्टी के बाद प्लेट धोकर, पोंछकर, जमाकर, गिनकर वापिस करना रहती है। स्टैण्ड, लैम्प, पानी के कंटेनर सबका हिसाब रखते हैं और गिनकर लौटाते हैं। पूरा हिसाब करने के बाद हमारा हिसाब होता है और फिर टीम के नाम पर किसी एक को टिप मिलती है और मज़दूरी अलग से। अच्छे से काम करते हैं तो ज़्यादा टिप मिलती है नहीं तो कम। फिर हम सब खाना खाते, आपस में पैसे बाँटते और घर आ जाते हैं। अंगद, राज और परतीप बताते हैं कि ये सब करते-करते हमको जोड़ना, घटाना भी आ जाता है और हम नए-नए शब्द भी सीखते हैं।

यदि लिखने के कौशल को छोड़ दिया जाए तो काम करते हुए ये सब साथी जीवन का वो गणित रोज़ ही सीख रहे होते हैं जिसकी उनके जीवन में नितान्त आवश्यकता है।

बापूनगर बस्ती के बच्चे और गणित

भोपाल शहर के बीचों-बीच अगरिया समुदाय के लोगों की एक छोटी बस्ती है, बापूनगर। यहाँ के लोगों के प्रमुख कामों में वन विहार में घास कटाई करना, नर्सरी में पौधे लगाना, वेल्डिंग करना और लोहे से जुड़े औज़ार बनाना है। इसके अलावा बस्ती के ठीक सामने लगने वाला बाज़ार भी इस समुदाय में गणितीय क्षमता बढ़ाने में मुख्य भूमिका अदा करता है। लोहा इनकी ज़िन्दगी में एक सदी से जुड़ा हुआ है, इसलिए लोहे से जुड़े काम जैसे– छलनी, झारा, खिड़की, दरवाज़े, शटर, चौखट बनाना, बाउण्ड्रीगेट, पान की गुमठी, हाथ ठेला, चाकू, तलवार, आमकटना, सिगड़ी या चूल्हा बनाना और वेल्डिंग करना, इस बस्ती के लोगों के पारम्परिक काम माने जा सकते हैं। लोहे से जुड़े संसाधन बनाने के दौरान इसमें लगने वाले लोहे की मात्रा को यह समुदाय भली-भाँति जानता है। विभिन्न वैरायटी के टीन, लोहे की क्वालिटी, कच्चा लोहा, ठोस लोहा, और इसकी क़ीमत माता-पिता से होते हुए बच्चों तक पहुँचती है। प्रकाश भैया कहते हैं, "जो काम हम करते हैं उनमें लोहे को ठीक आकार देना, मज़बूत एवं टिकाऊ सामान बनना और सबसे अहम है उसकी ठीक से नपाई होना। ग़लत नाप चीज़ों के महत्त्व और बाज़ार की माँग दोनों को ही प्रभावित करता है, इसलिए हमें इसका बहुत ध्यान रखना होता है। पर काम करते-करते हमने अपने बुज़ुर्गों से ये सब आराम से सीख लिया है और इसमें अब कभी ग़लती नहीं होती है।"
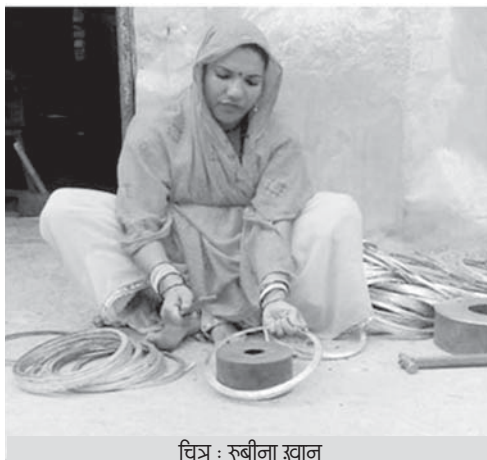
चित्र : रुबीना ख़ान

20 वर्षीय रोशन लोहे से जुड़े लगभग सभी हुनर जानता है। वह बताता है, "मैं 10 साल का था तब से पापा के साथ काम करते हुए मैंने ये सब सीखा है।" उसने बताया, "दोनों अँगूठों को सिरे से जोड़ते हुए एक फुट का नाप लेना पापा से ही सीखा है; मेरा एक बित्ता 7 इंच के बराबर है। इसी के आधार पर मैं चूल्हा, चाक़ू, आमकटना, आदि बनाने की शुरुआत करता हूँ। झारा बनाते समय उसके डण्डे की लम्बाई को मैं बित्ते से ही नापता हूँ।"

रोशन व भँवरलाल भैया अपने अनुभव के आधार पर बताते हैं कि फ्रिज के पीछे लगी लोहे की चादर का इस्तेमाल ख़ासकर बर्तन बनाने में करते हैं। यह 22 से 23 इंच की मोटी चादर कबाड़ख़ाने में आसानी से मिल जाती है। ज़्यादा मात्रा में ख़रीदने पर यह 45 की बजाय 35 रुपए प्रति किलो के दाम से मिल जाती है। हम पहले इसे तपाते हैं फिर ग्लेंडर मशीन से घिसते हैं और पॉलिश करके नया बना लेते हैं।

वे कहते हैं, "चाक़ू, आमकटना, बुगदा आदि में लगने वाला लोहा हमें 80 से 105 रुपए किलो के रेट पर मिल जाता है। इसकी मोटाई गेज में नापते हैं। इस काम के लिए 16, 22 और 26 गेज का लोहा ठीक रहता है। जितना कम गेज उतनी मोटी चादर।"

वेल्डिंग के काम को बख़ूबी करने वाले सुनील भैया बताते हैं, "अमूमन खिड़की का साइज़ 2 बाय 3 और दरवाज़े का 6 बाय 3 होता है, लेकिन कुछ घरों की हाइट देखते हुए इसे घटाया-बढ़ाया जाता है। बहुत ज़रूरत होने पर या कोई नया डिज़ाइन मिलने पर हम इंची टेप का इस्तेमाल करते हैं, नहीं तो बाक़ी सब नाप देखकर ही समझ आ जाते हैं।" सुनील भैया की 10 साल की बेटी का नपाई का अनुमान भी इसीलिए बहुत पक्का है क्योंकि वो पापा के साथ कई चीज़ों को इंची टेप से नापती है और आसपास के लोगों को नपाई करते हुए भी देखती है।

साप्ताहिक बाज़ार : बापूनगर की बस्ती में बच्चों की गणितीय क्षमता को निखारने में बस्ती के सामने लगने वाले साप्ताहिक बाज़ार की भी अहम भूमिका है। 8 साल के बच्चे से लेकर 50 साल तक की महिलाओं को बाज़ार ने गणित सीखने-सिखाने के कई मौक़े दिए हैं। बाज़ार में छोटे बच्चे सब्ज़ी वालों, मछली वालों, फल वालों को पानी बेचते हैं। इस काम में 5 लीटर पानी की कुप्पी के 5 और 15 लीटर कुप्पी के 10 रुपए मिलते हैं। किस व्यक्ति को, कौन-सी कुप्पी से, कितनी बार पानी दिया गया; इसका पूरा हिसाब बच्चे रखते हैं और बाद में दुकानदार से पैसे लेते हैं। सोहिल बताता है, "इस काम से हम हर सप्ताह 100 से 150 रुपए तक कमा लेते हैं। दुकानों पर सब्ज़ियाँ जमाने के बदले भी बच्चे सब्ज़ियों के वज़न व मात्रा के हिसाब से 80-90 रुपए तक की कमाई कर लेते हैं। बाद में इन्हीं पैसों से घर और ख़ुद के लिए सामान भी ख़रीदकर लाते हैं। महिलाएँ सब्ज़ियों की दुकान पर बैठकर साइज़ के हिसाब से आलू, प्याज़, टमाटर का वर्गीकरण करती हैं, जिसके बदले उन्हें 80-100 रुपए और सब्ज़ियाँ मिल जाती हैं।" जीवन के गणित में 'बचत' और 'वर्गीकरण' दो महत्त्वपूर्ण अवधारणाएँ हैं जिनकी प्रैक्टिस महिलाएँ यहाँ बैठकर करती हैं। लोहे और टीन से बनी सामग्री बेचने के लिए महिलाएँ और बच्चे दुकान लगाते हैं। ग्राहकों से डील करना, सामग्री की उपयोगिता बताना और उसे बेच पाने का हुनर बच्चे यहीं सीखते हैं। वे बताते हैं कि लोहे की क़ीमत और हमारी मेहनत को ध्यान में रखकर हम ग्राहक को क़ीमत बताते हैं।

अन्त में

गणित हम सबकी ज़िन्दगी का ज़रूरी हिस्सा है। अपने आसपास के माहौल और घर पर चलने वाले कामों से भी हम कई गणितीय अवधारणाओं को सीखते हैं और इस सीख को ताउम्र इस्तेमाल भी करते हैं। जैसा कि रवि सुब्रह्मण्यम अपने पर्चे में कहते हैं, "रोज़मर्रा के गणित में संस्कृति और संज्ञान मिलकर काम करते हुए प्रतीत होते

हैं जिससे उपयुक्त प्रतिरूप गढ़ने का मज़बूत आधार बोध पैदा होता है। जब बच्चे को उनको समझ में आने लायक़ सवाल दिया जाता है और उसे हल करने के लिए अपना तरीक़ा ढूँढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है तो हम देखते हैं कि उनकी हल करने की विधियाँ अकसर रोज़मर्रा के गणित जैसी होती हैं।"

गणित इन बच्चों की संस्कृति का अहम हिस्सा है। उनके परिवारों और उनके द्वारा किए जाने वाले कामों में यह अनायास ही सही, पर उनके द्वारा रोज़ महसूस किया जाता है। लेकिन स्कूल में इस गणित का कोई सन्दर्भ नहीं लिया जाता होता। ज़रूरी यह है कि हम और स्कूल भी इस बात का ध्यान रख सकें कि आसपास के माहौल से जीवन का जो गणित बच्चे सीख रहे हैं उसे स्कूल में भी जगह मिल पाए। *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* में शिक्षा के लक्ष्य के अन्तर्गत भी यही बात बहुत स्पष्टता से कही गई है, "स्कूल के अनुभव और बच्चे के बाहर की दुनिया के अनुभवों को कल्पनापूर्ण ढंग से जोड़कर हम स्कूली वातावरण के अजनबीपन को कम करके अधिगम के लिए और सुगम बना सकते हैं।"

सन्दर्भ

1. रवि के सुब्रह्मण्यम, 'गणित सीखने में संस्कृति का योगदान,' लर्निंग कर्व, मई11, 2015

रुबीना ख़ान, मुस्कान संस्था, भोपाल के साथ जुड़कर पिछले 10 सालों से बच्चों व युवाओं के मुद्दों पर काम कर रही हैं। बच्चों के साथ काम करके ख़ुशी महसूस करती हैं।

सम्पर्क : khanrubina89@gmail.com

महेश झरबड़े, पिछले 15 सालों से बच्चों व युवाओं के साथ शिक्षा से जुड़े कामों से जुड़े रहे हैं। एकलव्य के शिक्षा प्रोत्साहन केन्द्र और मुस्कान के जीवन शिक्षा पहल स्कूल में बच्चों व युवाओं के विभिन्न मुद्दों को शिक्षा के साथ जोड़कर देखने का प्रयास किया है। आदिवासी और वंचित तबक़ों के लिए किस तरह की शिक्षा हो, ये समझने का प्रयास जारी है। वर्तमान में सिनर्जी संस्थान, हरदा के साथ जुड़कर इस मुद्दे को गहराई से समझने की कोशिश कर रहे हैं। बच्चों, युवाओं व ग्रामीण विकास के मुद्दों पर पढ़ने और लिखने में रुचि है।

सम्पर्क : mjharbade@gmail.com

कौन बड़ी-कौन छोटी
भिन्नात्मक संख्याओं की तुलना

अंशुल राजुरकर

भिन्नात्मक संख्याएँ, प्राथमिक कक्षाओं में गणित शिक्षण का एक अभिन्न हिस्सा हैं। सामान्य तौर पर भिन्नात्मक संख्याओं को बहुत कठिन विषयवस्तु समझा जाता है पर ऐसा है नहीं। असल बात यह है कि इस विषयवस्तु पर कक्षा में ठीक से कार्य नहीं होने के कारण यह कठिन लगने लगती है। भिन्नात्मक संख्याओं की विषयवस्तु पर कार्य करने के दौरान यह देखने में आता है कि इसकी शुरुआत अकसर चित्रात्मक निरूपण जैसे– वृत्ताकार और आयताकार आकृति बनाकर उसके किसी भाग को छायांकित कर की जाती है। और फिर उसी के इर्द-गिर्द भिन्नात्मक संख्याओं का अध्यापन घूमता रहता है। इस आलेख में, मैंने प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों के साथ भिन्नात्मक संख्याओं पर किए गए काम के दौरान हुए अनुभवों को लिखा है, ख़ासकर, बच्चे भिन्नात्मक संख्याओं को कैसे समझते हैं, उनकी तुलना कैसे करते हैं, उसमें उनको क्या-क्या समस्याएँ आती हैं, आदि। मैंने यह भी पाया कि बच्चे इन संख्याओं को एक संख्या के रूप में न समझकर दो अलग-अलग पूर्ण संख्या समझते हैं और भिन्नात्मक संख्याओं पर भी पूर्ण संख्याओं की तरह ही कार्य भी करते हैं और उनमें तुलना भी पूर्ण संख्या के समान ही करते हैं। जैसे– जब उनको 3/4 + 2/4 हल करने को कहा गया और उन्होंने इसका उत्तर 5/8 दिया। इन समस्याओं (भिन्नात्मक संख्याओं की तुलना) पर मैंने बच्चों के साथ कार्य किया। इसमें अवधारणा से सम्बन्धित बच्चों के पूर्व ज्ञान पर कार्य करना, भिन्नात्मक संख्या की तुलना करने के अनुभव देना व सबसे ज़रूरी, इस अवधारणा का दैनिक जीवन के सन्दर्भ में कैसे व कहाँ उपयोग होता है, आदि को अलग-अलग मॉडल, तरीक़ों व गतिविधियों का उपयोग कर सामने रखना।

मेरा यह अनुभव एक विद्यालय की कक्षा पाँचवीं का है जिसमें 5 बालक और 5 बालिकाएँ मिलाकर कुल दस बच्चे थे। मैंने बच्चों के साथ उन्हें पढ़ाई जा रही विषयवस्तु पर ही बातचीत करना शुरू किया। शुरुआत कुछ सामान्य बातचीत से हुई, फिर मैं बच्चों के साथ भिन्नात्मक संख्याओं की तुलना पर चर्चा करने लगा। मुझे लगा कि बच्चे भिन्नात्मक संख्याएँ और उनकी तुलना कुछ-कुछ समझते हैं, क्योंकि पिछले कुछ दिनों से गणित की इस कक्षा में भिन्न की तुलना पर काम हो रहा था। मैंने एक प्रश्न से शुरुआत की जिसमें बच्चों को यह बताना था कि दो तिहाई और तीन चौथाई में से कौन-सी संख्या बड़ी होती है? बच्चों ने बताया

कि तीन चौथाई बड़ी होती है। मुझे ख़ुशी हुई कि बच्चों ने सही उत्तर दिया। मैंने बच्चों को कुछ और प्रश्न दिए, जैसे– एक आधा और दो चौथाई में कौन-सी संख्या बड़ी है? बच्चों ने झट से बताया कि दो चौथाई बड़ी है। मुझे लगा कि शायद वे सवाल को समझे नहीं हैं तो मैंने कुछ प्रश्नों को श्यामपट्ट पर लिख दिया और बोला कि चित्र बनाकर दर्शा सकते हो तो वह भी ठीक है, और चित्र आपके अनुभव से भी आ सकते हैं, जैसे– किसी को आधी रोटी दी और किसी को एक तिहाई, तो किसको ज़्यादा मिलेगी और तब तुलना करो। सवाल कुछ इस प्रकार थे :

1. $\frac{1}{2}$ व $\frac{1}{3}$ 2. $\frac{2}{5}$ व $\frac{2}{5}$

3. $\frac{1}{2}$ व $\frac{2}{4}$ 4. $\frac{3}{4}$ व $\frac{4}{5}$

कक्षा में उपस्थित 10 बच्चों में से केवल 3 ने सवालों के सही उत्तर दिए, परन्तु भिन्नात्मक संख्याओं का चित्रात्मक प्रस्तुतिकरण उनका भी ठीक नहीं था। अब मैंने बच्चों के साथ प्रत्येक प्रश्न पर विस्तार से चर्चा की, ताकि वे भिन्न को कैसे समझते हैं, कैसे देखते हैं, आदि को मैं स्वयं भी समझ सकूँ। बातचीत की शुरुआत उन बच्चों से हुई, जिन्होंने सवाल के सही उत्तर दिए, पर वे अपने उत्तर के तर्क नहीं रख पाए। एक विद्यार्थी ने कहा कि चित्र को देखकर उत्तर निकाला है। फिर उन बच्चों के साथ भी चर्चा की, जिन्होंने सवाल के सही उत्तर नहीं दिए थे। लगभग सभी बच्चों के द्वारा दिए गए तर्क एक ही प्रकार के मिले, जो निम्न हैं :

- पहले सवाल, 1/2 व 1/3, में संख्या 1/3 बड़ी है। बच्चों ने यह तर्क दिया कि दोनों भिन्नात्मक संख्याओं (1/2 व 1/3) के अंश में समान संख्या 1 है। अब हर देखते हैं। पहली संख्या 1/2 के हर में 2 है और दूसरी संख्या 1/3 के हर में 3 है। चूँकि 2 से बड़ा 3 है इसलिए 1/2 व 1/3 में, 1/3 भिन्नात्मक संख्या बड़ी है।
- दूसरे सवाल, 2/5 व 3/5, में 3/5 संख्या बड़ी है। बच्चों द्वारा तर्क दिया गया कि दोनों भिन्नात्मक संख्याओं (2/5 व 3/5) के हर में समान संख्या 5 है। अब अंश देखते हैं। पहली संख्या 2/5 के अंश में 2 है और दूसरी संख्या 3/5 के अंश में 3 है। चूँकि 2 से बड़ा 3 है इसलिए 2/5 व 3/5 में, 3/5 संख्या बड़ी है।
- तीसरे सवाल, 1/2 व 2/4, में 2/4 संख्या बड़ी है। यहाँ पर बच्चों ने पहले दोनों भिन्नात्मक संख्याओं के अंश और फिर हर की तुलना की और बताया कि 2/4 बड़ी है।
- इसी प्रकार चौथे सवाल, 3/4 व 4/5, में संख्या 4/5 बड़ी है। यहाँ पर भी बच्चों द्वारा पहले दोनों भिन्नात्मक संख्याओं के अंशों और फिर हरों की तुलना की गई और बताया कि 4/5 बड़ी है।

बच्चों के साथ हुई चर्चा व उनके द्वारा दिए गए सवालों के जवाबों का विश्लेषण किया, जिसमें कुछ कारण निकलकर आए :

- बच्चे भिन्नात्मक संख्या के मायने नहीं समझते हैं। वे भिन्नात्मक संख्या को एक संख्या के रूप में न देखकर दो अलग-अलग पूर्ण संख्याओं के रूप में देखते हैं।
- बच्चे भिन्नात्मक संख्या की तुलना भी पूर्ण संख्या के समान ही करते हैं।
- बच्चे उस भिन्नात्मक संख्या को दूसरी की तुलना में बड़ी कहते हैं जिसके अंश या हर में कोई बड़ी संख्या होती है। वे अंश और हर के संख्यात्मक मान के आधार पर बड़ी या छोटी भिन्नात्मक संख्या तय करते हैं।
- बच्चों द्वारा नोटबुक में बनाए गए चित्रों (चित्र 1) को देखने पर समझ आया कि तुलना के दौरान बच्चे अलग-अलग इकाई

ले रहे हैं, जैसे— सवाल 1/6 व 5/6 में 1/6 संख्या दर्शाने के लिए वृत्ताकार एवं 5/6 के लिए आयताकार, और इकाई में किए जाने वाले हिस्सों के क्षेत्रफल भी बराबर नहीं हैं।
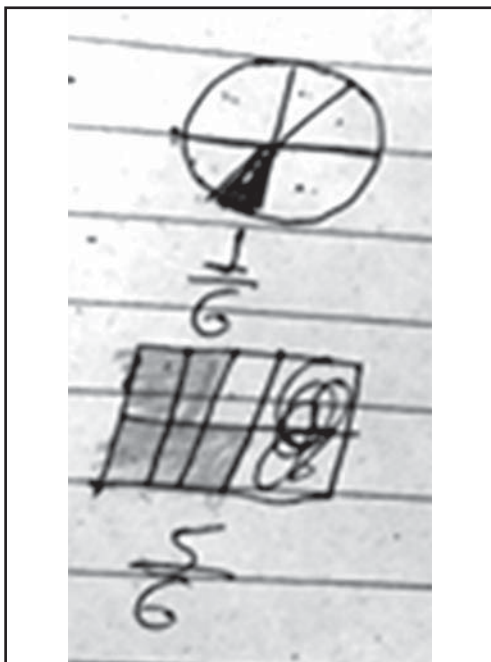
चित्र 1 : तुलना के दौरान इकाई एवं इकाई के हिस्से अलग-अलग लेना

ग़लतियाँ क्यों हुई होंगी ?

भिन्नात्मक संख्याओं की तुलना के दौरान बच्चों द्वारा की जाने वाली ग़लतियों और उनके तर्कों का विश्लेषण करने, कक्षा प्रक्रिया, आदि को समझने से की गई ग़लतियों के सन्दर्भ में कुछ मुख्य बातें निकलकर आती हैं। जैसे— कई बार कक्षा-कक्ष में बच्चों का जुड़ाव नहीं होना, नई अवधारणा पर समझ बनाने में पूर्व ज्ञान का उपयोग न हो पाना, ठोस वस्तु के अनुभव नहीं मिल पाना, अवधारणा में वास्तविक जीवन के सन्दर्भ की कमी, अवधारणात्मक ग़लतफ़हमियाँ, आदि। यहाँ इन कारणों पर विस्तार से चर्चा की गई है :

पूर्व ज्ञान का अभाव : गणित शिक्षण में पूर्व ज्ञान का विशेष महत्त्व है। किसी भी अवधारणा या विषयवस्तु को सीखने में पूर्व ज्ञान अहम भूमिका अदा करता है। जिस प्रकार गिनना सीखने के पहले हम संख्या-पूर्व अवधारणा पर कार्य करते हैं, ठीक वैसे ही हमें भिन्नात्मक संख्या की तुलना सीखने के पहले अपेक्षित पूर्व ज्ञान, जैसे— भिन्नात्मक संख्या के मायने व समतुल्य भिन्नात्मक संख्या, पर कार्य करना होता है।

स्वयं करके देखने के अवसर की कमी : अकसर पाठ्यक्रम को निर्धारित समय सीमा में पूरा कराने के चक्कर में बच्चों को पर्याप्त अवसर नहीं मिल पाते हैं जिसके कारण वे केवल पाठ्यपुस्तक की बातों को रट लेते हैं। कुछ स्थानों पर अवधारणा को समझाने के लिए शिक्षण अधिगम सामग्री (TLM) का भी उपयोग होता है पर बच्चे उस सामग्री को केवल देख पाते हैं, उनको इसका स्वयं से उपयोग नहीं करने दिया जाता है। साथ ही, बच्चे कैसे सीखते हैं?, अवधारणा को कैसे समझ रहे हैं?, आदि को लेकर उनके साथ बातचीत न होना। ज़्यादातर बच्चे यह नहीं मानते हैं कि 1/2 एवं 2/4 का मान एक ही है। इस प्रकार की ग़लती का एक मुख्य कारण बच्चों को पर्याप्त मौक़े नहीं मिल पाना है। वे सवाल को केवल यांत्रिक रूप से करते हैं और सोच ही नहीं पाते कि 1/2 व 2/4 बराबर हैं।

सन्दर्भ से न जोड़ पाना : केवल सैद्धान्तिक रूप से पढ़ाया जाना अर्थात पूर्ण रूप से पाठ्यपुस्तक केन्द्रित होकर शिक्षण करना, जिससे बच्चे रटन्त शिक्षा की ओर आगे बढ़ने लगते हैं। इसका नतीजा यह होता है कि वे 1/2 व 1/3 में 1/3 संख्या को बड़ी बताते हैं। बच्चों के लिए यह समझना मुश्किल है कि 1/2 व 1/3 में 1/2 संख्या बड़ी है, क्योंकि इसके साथ न तो किसी सन्दर्भ को जोड़ा जाता है, न ही ऐसे उदाहरण व स्थितियाँ रखी जाती हैं कि बच्चे इसको अपने परिवेश में अनुभव कर पाएँ।

अवधारणात्मक ग़लतफ़हमियाँ : शिक्षण के दौरान कुछ ग़लतफ़हमियाँ भी बन जाती हैं, जैसे— जब हम कहते हैं कि यह ज़रूरी नहीं कि पूर्ण के हिस्से भी सर्वांगसम हों, तब बच्चे यह भी समझ लेते हैं कि हिस्से अलग-अलग आकार के

होते हैं तो उनके क्षेत्रफल भी अलग-अलग होते हैं। हर समान होने पर बड़े अंश वाली भिन्नात्मक संख्या बड़ी होती है, बच्चे इसको तो समझे पर इसी के जैसे वे यह भी समझ रहे हैं कि अंश समान होने पर बड़े हर वाली भिन्नात्मक संख्या बड़ी होती है, और भिन्नात्मक संख्याओं की तुलना के लिए दो अलग-अलग प्रकार की आकृतियों का उपयोग करना।

बच्चों के साथ कार्य

मैंने कक्षा पाँचवीं के विद्यार्थियों के साथ भिन्नात्मक संख्या की समझ पर योजना बनाकर कार्य किया। बच्चों के साथ हुई चर्चा में मुझे यह जानकारी मिल गई थी कि बच्चों को क्या-क्या आता है और भिन्नात्मक संख्या की उनकी समझ कितनी है। किसी भी नई अवधारणा पर कार्य करने के पहले हमें उस अवधारणा से सम्बन्धित आवश्यक पूर्व ज्ञान/ अवधारणा पर कार्य करना चाहिए। इसलिए सबसे पहले मैंने यह जानने की कोशिश की कि उनकी मौजूदा भिन्नात्मक संख्या की समझ क्या है। कक्षा 2, 3 के बच्चे भी आधा, पौना, पाव, डेढ़, ढाई आदि की समझ रखते हैं। मैंने दैनिक जीवन में उनके द्वारा काम में ली जाने वाली इन भिन्नात्मक संख्याओं से ही शुरुआत की। मैंने पाया कि बच्चे इन शब्दों को समझते थे और वे विभिन्न उदाहरण देकर भी बता पा रहे थे कि वे इन शब्दों को कहाँ-कहाँ उपयोग में लेते हैं। जैसा कि मैंने पहले कहा एक दिक़्क़त गणित की अवधारणाओं के शिक्षण में यह है कि अकसर आसपास मौजूद गणित को हम महसूस नहीं कर पाते और उसका कक्षा में उपयोग नहीं कर पाते। बच्चों के साथ इन शब्दों पर इस तरह से बातचीत के बाद इन भिन्नात्मक संख्याओं को बोर्ड पर लिखा गया।
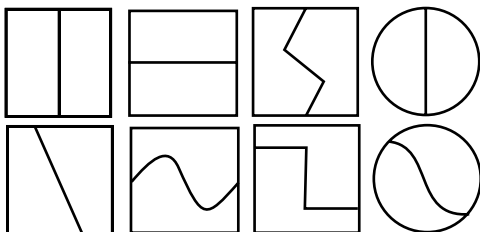
चित्र 2 : इकाई / पूर्ण के दो बराबर-बराबर हिस्से करना

मुझे यह भी लगा कि भिन्नात्मक संख्या को समझने के लिए पेपर फ़ोल्डिंग एक अच्छा और आसानी से उपलब्ध साधन है। पेपर फ़ोल्डिंग में हम क्षेत्रफल को आधार मानकर इकाई के बराबर हिस्से करते हैं। इसी तरह :

- डॉट्स शीट या गणित की वर्गाकार खानों वाली नोटबुक का इस्तेमाल भिन्नात्मक संख्या को समझाने के लिए एक सरलता से उपलब्ध होने वाला साधन है। मैंने इसकी सहायता से ही बच्चों को इकाई बनाना, उसके बराबर-बराबर हिस्से करना, अर्थात भिन्नात्मक संख्या के चित्रात्मक निरूपण पर कार्य किया।
- **भिन्नात्मक संख्या के मायने पर कार्य करना:** यह भी समझने की ज़रूरत होती है कि
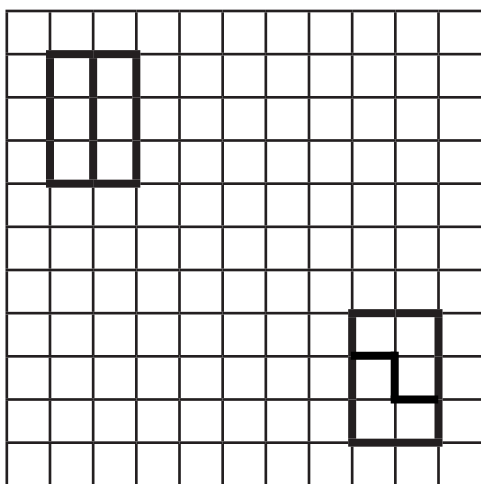
चित्र 3 : गणित की नोटबुक का उपयोग करते हुए इकाई का निर्माण व बराबर-बराबर हिस्से करना

अंश में लिए गए हिस्से (छायांकित या अछायांकित दोनों ही हो सकते हैं) को और हर में कुल बराबर हिस्से की संख्या को रखते हैं। अवधारणा पर कार्य करने के दौरान बच्चों के मस्तिष्क में यह धारणा बन जाती है कि भिन्नात्मक संख्या के अंश में इकाई के केवल छायांकित हिस्से को ही लिया जाता है, इसीलिए इस भ्रान्ति पर भी कार्य किया जाना आवश्यक है।

- भिन्नात्मक संख्याओं की तुलना करने के लिए एक ही प्रकार की आकृति, जैसे– आयताकार या वृत्ताकार, ली और उसका क्षेत्रफल भी समान रखा। साथ ही जब भिन्नात्मक संख्या को व्यवहारिक जीवन से जोड़कर बताते हैं और बच्चे स्वयं करके देखते हैं, तब वे भिन्नात्मक संख्या को बहुत अच्छे से समझते हैं और उनकी समझ भी पुख़्ता होती है। बच्चे को जितना अधिक अनुभव दिया जाता है, वह अवधारणा को आसपास के परिवेश में उतना ही अधिक देख पाता है, जैसे– एक रोटी को दो व्यक्तियों में बराबर-बराबर बाँटने पर प्रत्येक व्यक्ति को मिलने वाला हिस्सा, इसी प्रकार एक रोटी को तीन व्यक्तियों में बराबर-बराबर बाँटने पर प्रत्येक व्यक्ति को मिलने वाला हिस्सा, किस स्थिति में रोटी का हिस्सा बड़ा होगा?, इस प्रकार के उदाहरण रखने पर बच्चे आसानी से उत्तर बता देते हैं। फिर वे यह भी सोच पाते हैं कि 1/2 व 1/3 में 1/2 भिन्नात्मक संख्या बड़ी होती है।

भिन्नात्मक संख्या की तुलना

प्राथमिक कक्षाओं के पाठ्यक्रम की यह अपेक्षा है कि कक्षा पाँचवीं तक बच्चों को भिन्न की तुलना करना आ जाना चाहिए। भिन्नात्मक संख्या की तुलना के दौरान हमें तीन स्थितियाँ प्राप्त होती हैं। पहली स्थिति : जब भिन्नात्मक संख्याओं के हर समान हों और अंश असमान। दूसरी स्थिति: जब भिन्नात्मक संख्याओं के अंश समान हों और हर असमान। तीसरी स्थिति : जब भिन्नात्मक संख्याओं के हर एवं अंश दोनों ही असमान हों।

जब भिन्नात्मक संख्याओं के हर समान हों और अंश असमान

कक्षा में अलग-अलग उदाहरणों के माध्यम से इस पर कार्य किया और बच्चों के साथ बातचीत की गई।

$\frac{2}{5}$ व $\frac{3}{5}$ $\frac{4}{6}$ व $\frac{5}{6}$ $\frac{8}{13}$ व $\frac{11}{13}$

उपरोक्त पर एक-एक कर बातचीत की गई। 2/5 एवं 3/5 में हमें पूर्ण को पाँच बराबर हिस्सों में बाँटकर दो हिस्से लेने हैं। इसी प्रकार, 3/5 में हमें पूर्ण को पाँच बराबर हिस्सों में बाँटकर तीन हिस्से लेने हैं। इसपर बातचीत करते-करते व कई उदाहरणों के बाद धीरे-धीरे यह स्पष्ट हो गया कि पाँच में से तीन हिस्से बड़ी संख्या है। इसी प्रकार, सवाल 4/6 एवं 5/6 और सवाल 8/13 एवं 11/13 पर बच्चों के साथ कार्य किया एवं बातचीत की गई। इसमें बच्चों के द्वारा 5/6 और 11/13 को तुलना में बड़ी संख्याओं के रूप में बताया गया। बच्चों से इन्हें चित्रात्मक रूप में प्रस्तुत करने को कहने पर वे इसे कर पाए।
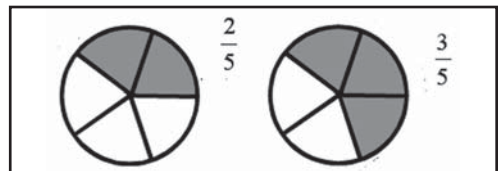
चित्र 4 : 2/5 एवं 3/5 का चित्रात्मक निरूपण

$\frac{4}{6}$ व $\frac{5}{6}$ $\frac{8}{13}$ व $\frac{11}{13}$
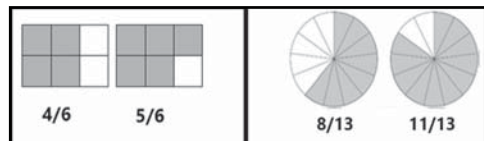
चित्र 5 : 4/6 व 5/6 और 8/13 व 11/13 का चित्रात्मक निरूपण

	1 WHOLE				
$\frac{2}{5}$	$\frac{1}{5}$	$\frac{1}{5}$			
$\frac{3}{5}$	$\frac{1}{5}$	$\frac{1}{5}$	$\frac{1}{5}$		
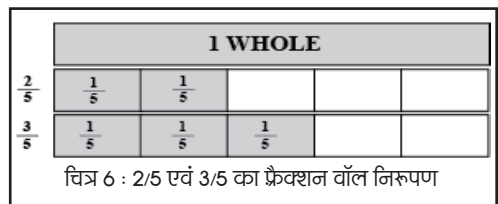
चित्र 6 : 2/5 एवं 3/5 का फ्रैक्शन वॉल निरूपण

	1 WHOLE					
$\frac{4}{6}$	$\frac{1}{6}$	$\frac{1}{6}$	$\frac{1}{6}$	$\frac{1}{6}$		
$\frac{5}{6}$	$\frac{1}{6}$	$\frac{1}{6}$	$\frac{1}{6}$	$\frac{1}{6}$	$\frac{1}{6}$	
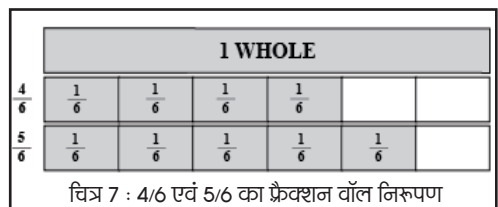
चित्र 7 : 4/6 एवं 5/6 का फ्रैक्शन वॉल निरूपण

	1 WHOLE												
8/13	1/13	1/13	1/13	1/13	1/13	1/13	1/13	1/13					
11/13	1/13	1/13	1/13	1/13	1/13	1/13	1/13	1/13	1/13	1/13	1/13		

चित्र 8 : 8/13 एवं 11/13 का फ्रैक्शन वॉल निरूपण

चित्र 9 : 1/2 एवं 1/3 का चित्रात्मक निरूपण

चित्र 10 : 3/4 व 3/6 एवं 4/10 व 4/7 का चित्रात्मक निरूपण

चित्र 11 : 1/2 व 1/3 का फ्रैक्शन वॉल निरूपण

चित्र 12 : 3/4 एवं 3/6 का फ्रैक्शन वॉल निरूपण

चित्र 13 : 4/7 एवं 4/10 का फ्रैक्शन वॉल निरूपण
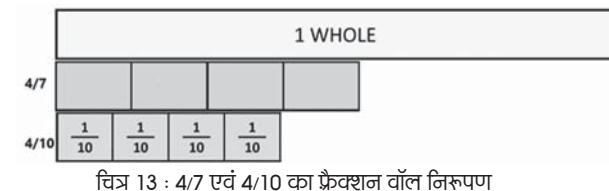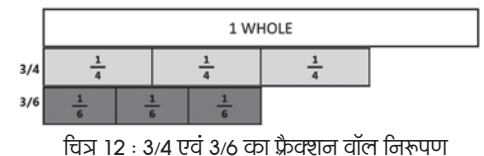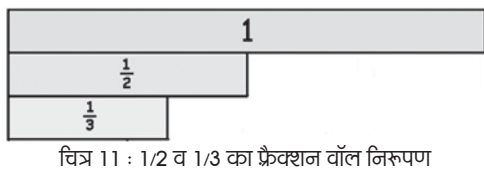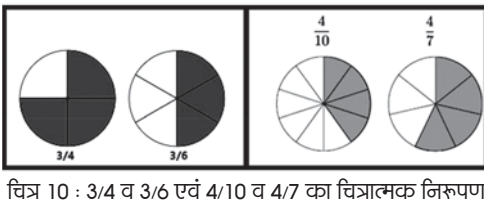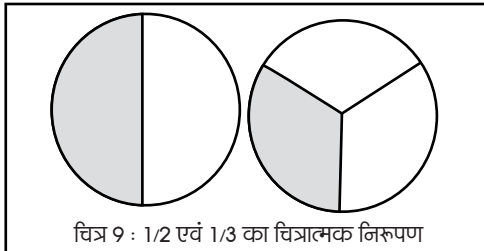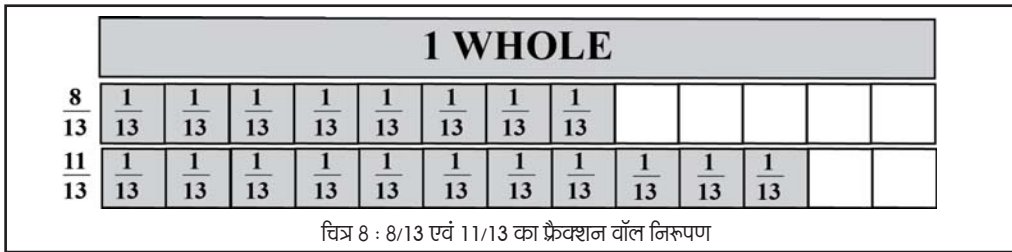
मेरा अनुभव व कार्य के दौरान बनी समझ

'भिन्नात्मक संख्या की अवधारणा पर कार्य करते हुए मेरा यह अनुभव रहा कि किसी भी अवधारणा को सिखाने के लिए कक्षा में योजनाबद्ध तरीक़े से कार्य करना और प्रतिदिन अपने कार्यों की समीक्षा करना अत्यावश्यक है। यह भी समझ बनी कि जब सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में सभी बच्चे शामिल होते हैं तो वे एक दूसरे से भी बहुत कुछ सीखते हैं, अर्थात साथ-साथ सीखना (peer learning) देखने को मिला। इसमें उनके जीवन के अनुभव व उससे मिली अवधारणात्मक समझ के उपयोग से भी बहुत फ़ायदा होता है।

कक्षा शिक्षण के दौरान बच्चों के साथ बातचीत की भूमिका व उसके महत्त्व को समझ पाया, इससे मुझे अवधारणात्मक व प्रक्रियात्मक ग़लतफ़हमियों को समझने में मदद मिली। वास्तव में, बच्चों के साथ कार्य करते समय उनकी प्रतिक्रियाओं को लेना बहुत ज़रूरी है, चाहे वे सवालों के सही उत्तर दे रहे हों या ग़लत। इससे यह हुआ कि मैं उनके तर्कों व भिन्नात्मक संख्या को सोचने के नज़रिए को समझ पाया, जिससे मुझे आगे की योजना बनाने व कक्षा में कार्य करने में सरलता हुई।

अंशुल राजुरकर पिछले 8 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में काम कर रहे हैं। गणित शिक्षण एवं प्रशिक्षण में विशेष रुचि है। वर्ष 2014 से 2016 तक रूम टू रीड के बालिका शिक्षा कार्यक्रम में बैतूल (मध्य प्रदेश) एवं धमतरी (छत्तीसगढ़) में कार्य किया और वर्ष 2017 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, धमतरी, छत्तीसगढ़ में गणित एवं भाषा के स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।
सम्पर्क : anshul.rajurkar@azimpremjifoundation.org

सन्दर्भों में निहित गणितीय सम्भावनाएँ

अशोक प्रसाद

गणितीय अवधारणाओं को सिखाने में सन्दर्भ चयन व भूमिका पर केन्द्रित यह लेख गणितीयकरण व समस्या हल करने के अर्थ को खँगालता है। आसपास उपलब्ध उदाहरणों में कौन-से स्वाभाविक, सटीक और अर्थपूर्ण सन्दर्भ हैं इनकी पहचान सन्दर्भ और अवधारणाओं के सम्बन्ध को उभारेगी। इसी तरह सीखने वाले व जानकार व्यक्ति के बीच खुला संवाद आवश्यक है। लेख गणितीय अवधारणा को समझने की यात्रा को तीन पड़ावों में बाँटता है : 1) सन्दर्भों में निहित अमूर्त विचारों का निरूपण; 2) निरूपण पर सार्थक बातचीत और बदलाव करते हुए सम्बन्ध खोजना; और 3) पुराने सम्बन्धों के आधार पर कुछ सार्थक नए पैटर्न या सम्बन्ध बनाना। लेख सन्दर्भ पर बहुत केन्द्रित हो जाने से आने वाली दिक़्क़तों की भी चर्चा करता है। सं.

अपूर्वी 7 साल की है और अभी कक्षा 2 में पढ़ रही है। एक बार मैंने सहज ही उससे पूछ लिया कि अपूर्वी "अगर एक बाल्टी 8 मग पानी से और एक मग 3 गिलास पानी से पूरा भर जाता है, तो वह बाल्टी कितने गिलास पानी से भर जाएगी?" मध्यम वर्गीय भारतीय परिवार में पल-बढ़ रही अपूर्वी की पढ़ाई, कोविड-19 की वजह से स्कूल बन्द होने के कारण घर पर ही हो रही है। वह इस तरह की समस्याओं पर बात करने के लिए ख़ूब उत्सुक रहती है। लेकिन इस प्रश्न को थोड़ा ठिठककर सोचने के बाद उसने नज़रअन्दाज़ कर दिया। अपूर्वी का इस तरह से रुचि न लेना मेरे लिए थोड़ा अप्रत्याशित था क्योंकि गणित की अलग-अलग अवधारणाओं पर मैं उससे बातचीत करता रहता था और यह उसके व मेरे लिए कुछ नए विचारों को बनाने में मददगार होता। बाक़ी इधर-उधर की, उसके दोस्तों, परिवार आदि के बारे में वह हमेशा की तरह सामान्य रूप से बातचीत कर रही थी। फिर उसने बाल्टी, गिलास और मग वाले सवाल की चर्चा में रुचि क्यों नहीं ली? यह जानने के लिए मैंने इस प्रश्न की प्रकृति और संरचना पर सोचना शुरू किया। प्रश्न था, "अगर एक बाल्टी 8 मग पानी से और एक मग 3 गिलास पानी से पूरा भर जाता है, तो वह बाल्टी कितने गिलास पानी से भर जाएगी?" इस प्रश्न की संरचना कुछ इस तरह की है-

चित्र 1
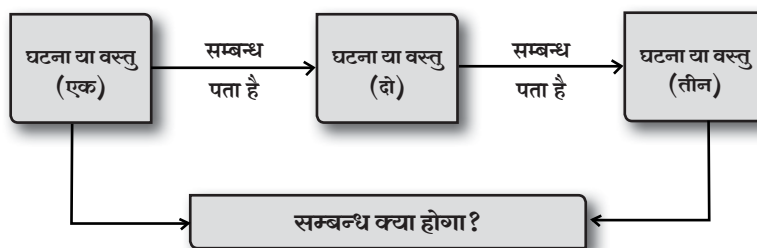
मुझे लगता है कि आम ज़िन्दगी के अनुभवों पर बने इस संरचना के साधारण-से प्रश्न में, गणित पढ़ाने के नज़रिए से बहुत-सी विचार करने वाली बातें निहित हैं। यह गणितीयकरण की प्रक्रिया की ओर बढ़ने का तरीक़ा है। आम जीवन में हमें कई मौक़ों पर इस तरह के प्रश्नों से जूझना होता है। ये प्रश्न यहाँ दिए उदाहरण जैसे भी हो सकते हैं और फ़र्क़ भी, जिनमें कई तरह के अन्य सम्बन्ध व अलग परिस्थितियाँ भी हो सकती हैं।

पर ऐसे सन्दर्भ स्वाभाविक तौर पर सामने आते रहते हैं। स्वाभाविक सन्दर्भों में धीरे-धीरे इस तरह से प्रश्नों की संरचना को भी अमूर्त रूप में रख पाना व ज़रूरत पड़ने पर अपने अनुभवों को ऐसे सम्बन्धों से जोड़ पाना, इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाता है। इसके निहितार्थों के बारे में सोचने पर यह बिन्दु सामने आते हैं :

1. इस संरचना जैसी बहुत-सी परिस्थितियों का निर्माण किया जा सकता है। अपनी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में हम पानी, दूध, तेल, दवाई जैसी चीज़ों का इस्तेमाल करने के लिए अलग-अलग आकार के बर्तनों को प्रयोग में लेते हैं। इन बर्तनों की धारिता, आयतन जैसे सम्बन्ध बदलते रहते हैं। बच्चों के खिलौने, डिब्बे, चद्दरें जैसी आसपास की चीज़ों में क्षेत्रफल, लम्बाई, आयतन, आकार आदि के आसानी से देखे और पहचाने जा सकने वाले मात्रात्मक सम्बन्ध होते हैं। इन सम्बन्धों पर आधारित आम ज़िन्दगी की साधारण-सी परिस्थितियों पर सार्थक बातचीत शिक्षक और शिक्षार्थी के लिए कभी-कभी सुन्दर गणितीय विचारों तक पहुँचने, जोड़-तोड़ करके सम्बन्ध खोजने की सहयात्रा बन जाती है। इन सन्दर्भों पर बातचीत बच्चे के गणित सीखने की असीमित सम्भावनाओं के नज़रिए को पुष्ट करती है और साथ-ही-साथ अपने पढ़ाने के तौर-तरीक़ों पर नए सिरे से विचार करने के अवसर देती है।

2. जग, लोटे और गिलास जैसे बर्तनों की धारिता के अन्तर्सम्बन्धों पर लिखी समस्या परिस्थितियों को वास्तविक रूप से करके देखा जा सकता है। ये बर्तन जुटाए जा सकते हैं और पानी से बर्तनों को भरने की गतिविधियाँ करवाई जा सकती हैं। उदाहरण के लिए, बच्चे को गिलास से पहले लोटे को भरने के लिए कहना, फिर लोटे से जग भरने के लिए कहना, स्वयं करके दिखाना या अवलोकन कर बताने के लिए कहना कि एक बर्तन को भरने के लिए दूसरे बर्तन को कितनी बार इस्तेमाल करना पड़ रहा है।

3. यहाँ पर लिखी हुई समस्या परिस्थिति में 'बाल्टी और मग' के बीच का 'भरने का' सम्बन्ध दिया गया और फिर 'मग और गिलास' के बीच का 'भरने का' सम्बन्ध। इन दो सम्बन्धों के आधार पर 'बाल्टी और गिलास' के बीच 'भरने के' तीसरे सम्बन्ध की खोज करनी है। यह प्रश्न "यदि A इंगित करता है B को और B इंगित करता है C को, तो A इंगित करेगा C को" (if A implies B and B implies C, then A implies C) के ढाँचे की तार्किकता पर आधारित है।

अ. एक जग 2 लोटे पानी से पूरा भर जाता है। (A इंगित करता है B को)

b. एक लोटा 2 गिलास पानी से पूरा भर जाता है। (B इंगित करता है C)

c. जग कितने गिलास पानी से भर जाएगा? (क्या A इंगित करेगा C को?)

4. गणित, तर्क के आधार पर खोजे गए निष्कर्षों का विषय है। इस संरचना वाली परिस्थितियाँ गणित की आगमनात्मक तर्कशीलता को विकसित करने में मददगार होंगी क्योंकि इनमें कुछ शुरुआती सम्बन्धों की जाँच-पड़ताल करते हुए उत्तर व परिणामों तक पहुँचने की सम्भावना है। गणितीय निष्कर्षों तक पहुँचने में पैटर्न और नियमों को पहचानना, इसके आधार पर अपने लिए गणित के कथन बनाना, बनाए गए कथनों की जाँच-परख करना और इसके लिए इस तरह के तर्क लिखना, कहना, कि साबित हो जाए कि बनाया गया कथन सही है

या ग़लत, गणितीय तरीक़े से सोचने के कुछ ज़रूरी क़दम हैं। लेकिन क्या यह बातें छह साल के बच्चों के लिए भी प्रासंगिक हैं? क्या इस तरह से सोचने के लिए प्राथमिक कक्षाओं में कुछ परिस्थितियाँ बनाई जा सकती हैं? निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए आगमन तर्क का इस्तेमाल किस तरह से हो सकता है और समस्या समाधान के दौरान गणितीय संवाद का प्रकार क्या होगा? आगे इस तरह के कुछ प्रश्नों पर बात करेंगे।

मैंने अपूर्वी की हिचकिचाहट के बावजूद उसके साथ इस संरचना के प्रश्नों पर कुछ दिनों तक लगातार बातचीत की। धीरे-धीरे इसमें उसकी रुचि बढ़ी और इसको करते-करते उसने अपने तरीक़े सोचे।

मेरी बातचीत के कुछ अंश

मेरे लिए सन्दर्भों पर बातचीत की शुरुआत करने में कुछ प्रश्न, जैसे कि एक बार प्रश्न को पढ़कर मुझे समझाओ?, प्रश्न से हमें किन-किन चीज़ों का पता चल रहा है?, हमें प्रश्न में क्या पता करना है?, आदि हमेशा ही मदद करने वाले रहे हैं। अपूर्वी ने जब इन तीन प्रश्नों पर अपनी प्रतिक्रिया दे दी तो मैंने पूछा, “बताओ, फिर कैसे पता करें कि एक मग को भरने के लिए हमें कितने गिलास पानी की ज़रूरत पड़ेगी?” थोड़ा सोचने के बाद अपूर्वी ने तेज़ी
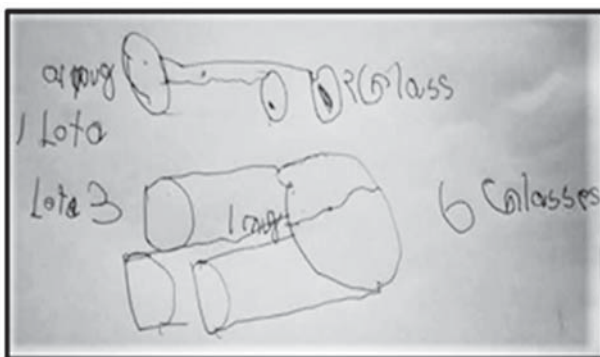
चित्र 2

से गोले जैसी लगभग समान आकार की 2 आकृतियाँ और एक बड़ी आकृति बना दी (चित्र 2)। इसके साथ छोटे गोले जैसी आकृति को बड़े गोले के साथ जोड़ दिया। मैंने प्रश्न किया, “आपने यह क्या बनाया है?” उसने छोटे गोलों की तरफ़ इशारा करते हुए कहा, “ये गिलास हैं और बड़ा गोला लोटा है। (प्रश्न को दिखाते हुए) ये लिखा है न कि 2 गिलास एक लोटे को भरते हैं, मैंने इसी का चित्र बनाया है।” मैंने कहा, “चलो ठीक है, अब आप आगे क्या करोगी?” मेरे सवाल पर बिना कुछ बोले एक पहले से बड़ी गोल आकृति और तीन मध्यम आकार के गोले बना देती है। “अच्छा, मुझे समझा तो दो कि अब आपने क्या बनाया है?” मेरी बात पर थोड़े अविश्वास के भाव के साथ अपूर्वी ने कहा, “देखो प्रश्न में क्या लिखा है? 3 लोटे से एक मग भर जाता है। (बड़े वाले गोले जैसी आकृति की तरफ़ इशारा करते हुए) यह मग है और (बाईं ओर बने छोटे गोले जैसी आकृति के लिए) ये तीन लोटे हैं।” मग और लोटे को मिलाती हुई रेखाओं की तरफ़ इशारा करते हुए अपूर्वी ने फिर दोहराया, “इन तीन लोटों से ये एक मग भर जाएगा।” बातचीत को आगे बढ़ाते हुए मैंने पूछा, “अब आगे क्या करना है?” अपूर्वी प्रश्न को समझ चुकी थी तो उसने कह दिया, “अब पता करना है कि यह मग कितने गिलास से भरेगा?” वह मग के ऊपर रेखा खींचते हुए कहती है, “2 गिलास से तो यहाँ तक भर जाएगा। फिर 2 गिलास से यहाँ तक भर जाएगा।” ऐसा कहने के बाद वह चुप हो गई तो मैंने चुप्पी तोड़ने के लिए पूछ दिया, “आपको कैसे पता चल रहा है कि 2 गिलास से यहीं तक भरेगा? हो सकता है थोड़ा ऊपर तक भर जाए?” थोड़ा सोचने के बाद उसने कहा, “6 गिलास।” अपूर्वी का जवाब (6 गिलास) तो ठीक था लेकिन उसके उत्तर तक पहुँचने की प्रक्रिया को समझने के लिए मैंने पूछा, “आपको कैसे पता चला कि 6 गिलास से ही यह मग भर जाएगा।” अपूर्वी ने अपने बनाए चित्र को साथ में दिखाते हुए कहा, “3 लोटे से एक मग भरता है। 2 गिलास से एक लोटा भरता है। 2 गिलास से एक

लोटा भरता है। 2 गिलास से एक लोटा भरता है (एक ही वाक्य तीन बार)। फिर ये लोटे का पानी डालते हैं मग में। ऐसे पता चलता है कि 6 गिलास से मग भर जाता है।"

अगले प्रश्न "एक बाल्टी 5 मग पानी से और एक मग 4 गिलास पानी से पूरा भर जाता है, तो वह बाल्टी कितने गिलास पानी से भर जाएगी" पर उसने कुछ चित्र नहीं बनाए। मैंने पूछा, "अच्छा, ये बताओ कि सवाल के शुरू में भी तो कुछ लिखा हुआ है। आपने उसका चित्र नहीं बनाया और बीच से पढ़कर उसका ही चित्र क्यों बनाया (चित्र 3)?" ऐसा करने के पीछे अपूर्वी का तर्क था, "सवाल के बाद वाले हिस्से में संख्या छोटी है इसलिए यह आसान है।" इसी तरह एक और प्रश्न पर बात करते हुए मैंने पूछा, "अपूर्वी,
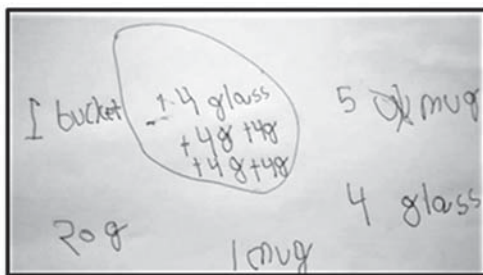
चित्र 3

अब इस प्रश्न से हमें किन-किन चीज़ों का पता चल रहा है? और इस प्रश्न में हमें क्या पता करना है?" इस बार भी अपूर्वी ने प्रश्न को अपने शब्दों में बता दिया। उसने यह भी कहा कि यह सवाल ग़लत है क्योंकि 6 गिलास से एक मग भर जाता है और यहाँ पर 4 गिलास लिखा है। रसोई में रखे अलग-अलग आकार के मग पर थोड़ी बात करके मैंने पूछा, "बताओ, फिर हम कैसे पता करें कि एक बाल्टी को भरने के लिए हमें कितने गिलासों की ज़रूरत पड़ेगी?" पिछले प्रश्न में तो वह तुरन्त ही उत्तर तक पहुँचने का प्रयास करने लगी थी, लेकिन इस बार उसने बिना प्रयास के ही कह दिया, "यह मुश्किल है।" जब मैंने कोशिश करने का आग्रह किया तो कहने लगी, "आप बताओ कि बाल्टी को भरने के लिए कितने गिलास की ज़रूरत होगी। आपने यह सवाल लिखा है तो आपको जवाब ज़रूर पता होगा।" यह मेरे लिए हमेशा मुश्किल स्थिति होती है क्योंकि प्रश्न तो मैंने बनाया है न कि किसी परिस्थिति से वह हमारे सामने आया है। तो उसका कहना ठीक ही है कि ये तो मेरा प्रश्न है। कुछ प्रयास करने पर वह इस प्रश्न पर सोचने के लिए तैयार हो गई।

लेकिन जैसे पिछली बार उसने चित्र बनाए थे, इस बार वैसा तरीक़ा न अपनाकर उसने एक गोला बनाया और बताया कि यह बाल्टी है। फिर कहने लगी, "मुझे अब बार-बार चित्र बनाने की ज़रूरत नहीं है इसलिए मैं अब मग लिखूँगी।" इसके बाद उसने लिखा, 'एक मग और 4 गिलास' जोकि प्रश्न के अनुसार था। मैंने फिर पूछा, "एक बाल्टी कितने गिलास से भर जाएगी यह जानने के लिए क्या करना पड़ेगा?" थोड़ा सोचने और अंगुलियों पर गिनने के बाद अपूर्वी ने जवाब दिया, "8 गिलास से भर जाएगी।" इस उत्तर पर उसका ध्यान दिलाने के लिए मैंने पूछा, "आपको कैसे पता चला कि 8 गिलास से बाल्टी भर जाएगी?" अपूर्वी ने अंगुलियों पर कुछ गिनते हुए बताने की कोशिश की कि एक मग के 4 गिलास, दूसरे मग के भी 4 गिलास, लेकिन उसे भी इस बात का आभास था कि वह कुछ उलझ गई है। इसलिए मैंने प्रस्ताव रखा कि वह जो कह रही है उसे साथ में नोट भी करें तो कैसा रहेगा? उसने उस प्रस्ताव को यह कहकर स्वीकार कर लिया मैं लिख लूँगी लेकिन गिलास पूरा न लिखकर उसका केवल 'g' ही लिखूँगी।

गिलास के लिए 'g' लिखने की बात मेरी पहले भी उससे हुई थी (चित्र 4), तब लगा था कि इस आयु वर्ग में इस तरह के संकेतों का इस्तेमाल नहीं करना चाहिए। काफ़ी दिन पहले की बात का इस तरह से प्रयोग होना सुखद अनुभव था कि जटिल विचारों पर अगर सार्थक बातचीत होती है तो वह मस्तिष्क के किसी कोने में रहते हैं। बात आगे बढ़ाते हुए चित्र पाँच की परिस्थिति पर हमारी बातचीत हुई। उससे पूछा, "प्रश्न मुझे समझा सकती हो और इसका चित्र भी बना सकती हो?" अपूर्वी ने प्रश्न को अपने

शब्दों में बता दिया और थोड़ी देर के बाद उसने चित्र बना दिया (चित्र 5)। चित्र पर बोलते हुए उसने कहा, "मैंने पहले बनाया है कि दो लोटे से एक मग भर रहा है और फिर बनाया है तीन गिलास से एक लोटा भर रहा है।" इस प्रश्न पर कि जग कितने लोटे से भरेगा, उसने कहा, "पहले एक लोटे को भरेंगे तो तीन गिलास पानी डालेंगे। फिर दूसरा लोटा पानी डालेंगे तो जग भर जाएगा। इसलिए 6 गिलास पानी से जग भरेगा।" इस तरह की परिस्थितियों पर बातचीत करना अब हमारे लिए कुछ सहज लग रहा था।

सन्दर्भों के अर्थ निर्माण का ढाँचा
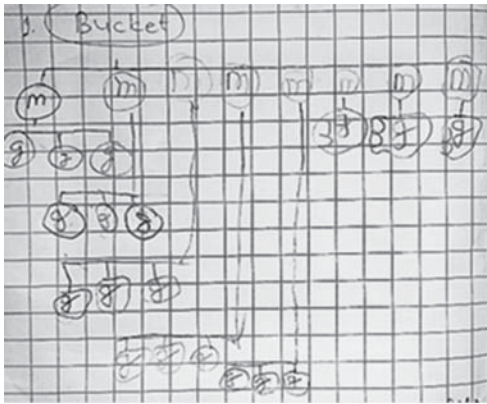
चित्र 4
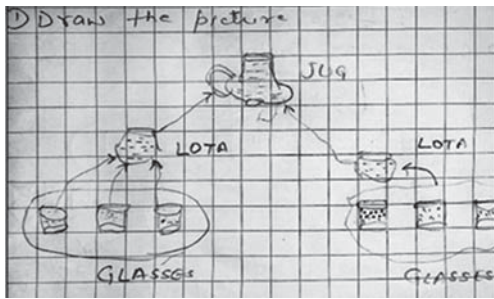
चित्र 5

अपूर्वी के साथ काम करने के अलावा विविध आयु वर्ग, अनुभव क्षेत्र के व्यक्तियों और समूह के साथ किए गए काम के अनुभव आधार पर कह सकते हैं कि सन्दर्भों में मौजूद अमूर्त गणितीय विचारों को जानने-समझने की यात्रा के तीन महत्त्वपूर्ण पड़ाव होते हैं, जिनमें सबसे पहला पड़ाव, सन्दर्भों में निहित अमूर्त विचारों का निरूपण करना; दूसरा, निरूपण पर सार्थक बातचीत और बदलाव करते हुए सम्बन्धों को खोजना; और तीसरा पड़ाव, पुराने सम्बन्धों के आधार पर कुछ सार्थक नए पैटर्न या सम्बन्धों को कहना है। यह बात ध्यान देने की है कि सन्दर्भ क्या हैं, किस तरह के सन्दर्भ कारगर हो सकते हैं, इसकी सीमाएँ क्या होती हैं?, जैसे प्रश्नों पर भी विचार करना उपयोगी होगा।

पड़ाव एक : सन्दर्भों में निहित अमूर्त विचारों का निरूपण करना

अपूर्वी द्वारा बनाए चित्रों को देखकर हम सोच सकते हैं कि वह चित्र एक में दी गई संरचना के प्रश्नों पर एक स्तर की प्रतिक्रिया दे पा रही है। दैनिक जीवन से जुड़े इस तरह के प्रश्नों को सार्थक रूप से समझने के लिए सन्दर्भों पर बातचीत, और निरूपण का होना बहुत मददगार होता है। गणित की कक्षाओं में सार्थक सन्दर्भों के साथ गणित में काम करने की मंशा के साथ बच्चों के लिए एक-दो पंक्ति के प्रश्न बना दिए जाते हैं। और इन प्रश्नों को जीवन से जुड़ाव का तरीक़ा मान लिया जाता है। पाठ्यपुस्तकों में भी इस तरह के उदाहरण बहुतायत में लिखे होते हैं। उदाहरण के लिए, पाठ्यपुस्तक में लिखा एक प्रश्न है, "एक वर्गाकार बग़ीचे की बाड़ की लम्बाई 20 मीटर है। बग़ीचे की एक साइड कितनी लम्बी होगी?" इस आलेख में लिया गया प्रश्न भी ऐसा ही दो पंक्ति का है। एक बार इस प्रश्न पर अपूर्वी ने कहा था कि जब आपने सवाल लिखा है तो उत्तर भी आपको पता होगा। आप ही बता दो कि एक बाल्टी को भरने के लिए कितने गिलास की ज़रूरत होगी? वह ऐसा क्यूँ कह रही है? यदि मैं इस सवाल पर चर्चा शुरू नहीं करता और उसे यह दो पंक्ति का सवाल दिखाई देता, तो क्या वह इसका हल ढूँढ़ने को उत्सुक होती?

बच्चों के सीखने को लेकर इस प्रकार की परिस्थितियों की अपनी सीमाएँ होती हैं क्योंकि इसमें कुछ भी आगे-पीछे की बात किए बिना मूल समस्या लिख दी गई है। आगे-पीछे की बात का अर्थ ऐसे सवालों के जवाब होने से है कि आलेख में लिए गए प्रश्न में एक बाल्टी को 8 मग पानी से क्यों भरा जा रहा है? फिर मग को गिलास से क्यों भर रहे हैं? क्या जीवन में ऐसी घटना होती है जब इस तरह एक बर्तन को दूसरे बर्तन से भरने की ज़रूरत पड़ती है? क्या जीवन में वास्तविक रूप से ऐसी परिस्थिति होती है जहाँ पर कुछ पानी, दूध जैसी चीज़ों को भरने का काम होता है? अगर हाँ, तो क्या उस बात को सम्पूर्णता में लिखना इस सन्दर्भ को और अर्थपूर्ण नहीं बना देगा?

गणित में हम लगातार अवधारणाओं और सम्बन्धों पर काम करते हैं। एक शिक्षिका जब कक्षा में 2 पत्तियाँ, 2 कंकड़, 2 कटोरी, 2 पेंसिल आदि दिखाकर शिक्षार्थियों से बातचीत करती हैं तो वह उनकी 2 पत्तियाँ, 2 कंकड़, 2 कटोरी, 2 पेंसिल आदि में '2 होने का' अमूर्त गुण ढूँढ़ने में मदद कर रही होती हैं। दूसरे शब्दों में कहें तो, वह 2 की अवधारणा पर काम कर रही होती हैं जो कि मानवीय दिमाग़ की रचना है। वहीं दूसरी ओर, एक कंचे से शुरू करके उसमें एक और कंचा मिलाकर 2 कंचे, 2 में एक और कंचा मिलाकर 3 कंचे जैसी प्रक्रिया में संख्या की मात्रा के साथ '1 और 2 में 1 ज़्यादा होने' के सम्बन्ध पर भी काम हो रहा होता है। गिनती की संख्याओं में एक ज़्यादा होने का दैनिक जीवन का सन्दर्भ पानी की टोंटी से टपकती बूँदें हैं। लेकिन क्या ऐसा हमेशा सम्भव होगा कि हम गणित के सभी सम्बन्धों, हर अवधारणा के लिए वास्तविक जीवन की वास्तविक परिस्थिति गढ़ दें? उदाहरण के लिए, संख्या 123 में लिखे गए अंक 1, 2 और 3 का मूल्य इनके लिखने की जगह की वजह से बदल जाता है। इस संख्या में अंक 3 इकाई, 2 'दस-दस' का समूह और 1 सौ का समूह दर्शा रहे हैं। यानी, संख्या में जगह का मान बाईं तरफ़ 10 गुने बढ़ता जा रहा है। बच्चे के अनुभव क्षेत्र में ऐसी परिघटना होना मुश्किल है जो इतने सुसंगत और नियमबद्ध तरीक़े से 10 गुने में समूह बनाती जाए और हमेशा उसका पालन करे। इसलिए गणित के सन्दर्भ हर बार वास्तविक जीवन से हों, यह भी ज़रूरी नहीं है। बल्कि गणित के अर्थपूर्ण सीखने-सिखाने के लिए वास्तविक सन्दर्भों के आग्रह की बजाय बहुत बार सम्पूर्णता में लिखे वास्तविक लगने वाले सन्दर्भ ज़्यादा उपयोगी होते हैं। उदाहरण के लिए, संख्या के स्थानीय मान के नियम पर बातचीत करने के लिए एक बढ़ई के तख़्तों को सजाने का वास्तविक लगने वाला सन्दर्भ लिया जा सकता है कि बढ़ई अपने लकड़ी के तख़्तों को 10 के समूह में रखता है और बाज़ार ले जाने के लिए एक ट्रक में 100 तख़्ते, दस-दस के दस बण्डलों में रखता है।

> गणित की कक्षाओं में सार्थक सन्दर्भों के साथ गणित में काम करने की मंशा के साथ बच्चों के लिए एक-दो पंक्ति के प्रश्न बना दिए जाते हैं। और इन प्रश्नों को जीवन से जुड़ाव का तरीक़ा मान लिया जाता है। पाठ्यपुस्तकों में भी इस तरह के उदाहरण बहुतायत में लिखे होते हैं।

पड़ाव दो : निरूपण पर सार्थक बातचीत और बदलाव करते हुए सम्बन्धों को खोजना

सन्दर्भों पर बातचीत, विचारशील प्रश्न और निरूपण सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को अर्थपूर्ण बना देते हैं। इन प्रश्नों पर अपूर्वी बातचीत कर पा रही है, इसके पीछे एक कारण उसके द्वारा गोले जैसी बनाई गई आकृतियाँ हैं। सन्दर्भों पर लिखी समस्या परिस्थिति के मानसिक ख़ाके / छवि (मेंटल मॉडल) के चित्र बनाना, उस समस्या परिस्थिति में निहित अमूर्त गणितीय विचारों को

समझने में मदद करने वाला होता है। ये निरूपण गणित की कक्षा की चित्रकारी है। यह सृजनात्मक कला, स्कूली पाठ्यक्रम का अभिन्न हिस्सा होना चाहिए क्योंकि इन गतिविधियों में मानसिक कौशलों, शारीरिक दक्षताओं और भावनाओं की अभिव्यक्ति का समन्वय होता है। अपूर्वी द्वारा बनाई गई गोले जैसी आकृति उसके मेंटल मॉडल का एक रूप है। गणित के विचारों और सम्बन्धों के चित्र बनाने के लिए दिए अवसर स्वतंत्र अभिव्यक्ति को बढ़ावा देते हैं और सीखने वाले के दृष्टिकोण को समझने में मदद करने वाले होते हैं। उदाहरण के लिए, अपूर्वी के बनाए गए जग, लोटे और गिलास के चित्रों के आकार में अनुपात रखने की कोशिश तो की गई है लेकिन चित्र चार और पाँच में बर्तन की धारिता और आकार के बीच के सम्बन्ध पर बातचीत की ज़रूरत लगती है।

सार्थक संवाद में अच्छे प्रश्नों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। लेकिन कई बार सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में लगातार बातचीत करते हुए हमारे सवाल इस तरह के बन जाते हैं कि एक के बाद दूसरे सवाल का जवाब देते हुए सीखने वाला ख़ुद-ब-ख़ुद उत्तर तक पहुँच जाता है। लेकिन इस सवाल-जवाब में ज़रूरी नहीं कि सीखने वाले की पूरे सन्दर्भ की समझ बन रही हो। कई बार वह अवधारणाओं के बीच सभी ज़रूरी अन्तर्सम्बन्धों को नहीं जान पाता है और उस हिस्से का ही जवाब देता है। इसलिए आकलन में यदि वही सवाल दे दिया जाए तो वह स्वतंत्र रूप से उस प्रश्न का उत्तर नहीं ढूँढ़ पाता है जिसे वह इस आभासी स्केफ़फ़ोल्डिंग की प्रक्रिया में हल कर चुका होता है।

सन्दर्भों पर बातचीत और निरूपण में कुछ संकेतों का इस्तेमाल वयस्कों के लिए बहुत सामान्य लगता है लेकिन प्रारम्भिक स्तर पर सीखने वालों के लिए वह काफ़ी अमूर्त हो जाता है। उदाहरणार्थ, मग के लिए ‘m’ और गिलास के लिए ‘g’ लिखकर दी गई समस्या परिस्थिति पर काम करना अमूर्तता के अलग स्तर की माँग करता है। यदि शिक्षार्थी को, ‘8 मग से एक बाल्टी भर जाती है’, सम्बन्ध पर विचार करना है तो उसे लिखे हुए से हर बार डिकोड करना पड़ेगा कि ‘m’ और ‘g’ क्या है। सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में कई बार सुगमकर्ता को इस तरह की बातें साधारण-सी लगती हैं और उस तरफ़ उसका ध्यान नहीं जाता। शिक्षार्थी के अनुभव क्षेत्र का विचार न होने की वजह से, स्वतंत्र रूप से विचार रखने की परम्परागत लोकतांत्रिक कक्षा में भी वे उनको समझने में आ रही परेशानी पर कुछ कह नहीं पाएँगे। नतीजतन पठन-पाठन से यह समस्या पकड़ में नहीं आ पाती।

सार्थक संवाद में अच्छे प्रश्नों की भूमिका महत्त्वपूर्ण होती है। लेकिन कई बार सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में लगातार बातचीत करते हुए हमारे सवाल इस तरह के बन जाते हैं कि एक के बाद दूसरे सवाल का जवाब देते हुए सीखने वाला ख़ुद-ब-ख़ुद उत्तर तक पहुँच जाता है। लेकिन इस सवाल-जवाब में ज़रूरी नहीं कि सीखने वाले की पूरे सन्दर्भ की समझ बन रही हो।

इसके अलावा, दी गई समस्या परिस्थिति में सम्बन्धों को जानने के लिए जोड़ और गुणा की संक्रियाओं को अमल में लाने की ज़रूरत पड़ेगी। इन अन्तर्सम्बन्धों पर बातचीत करने के लिए विविध निरूपणों का उपयोग किया जा सकता है। संख्या 65, या संक्रिया 6 × 5 का चित्र कैसे बना सकते हैं? इस तरह के सवाल सुनने वाले को चौंका देते हैं क्योंकि कम-से-कम अंकगणित में संख्याओं और उनके सम्बन्धों के निरूपण की प्रक्रियाएँ सामान्य रूप से कक्षाओं में नहीं होती हैं। लेकिन गणित के सभी क्षेत्रों में जैसे कि संख्या 65 के निरूपण को 6 लम्बे आयताकार टाइल (जिसमें हर लम्बे आयताकार टाइल को 10 छोटे आयतों को मिलाकर बनाया गया) और 5 छोटे आयताकार टाइल बनाया जाना या संक्रिया 6 × 5 को दर्शाने

के लिए 6-6 वृत्तों के 5 समूह बनाना, अवधारणा की समझ का आकलन करने में मददगार तो होते ही हैं साथ-ही-साथ उस अवधारणा के अमूर्त पहलुओं को सामने लाने में मदद करने वाले होते हैं। इस दौरान उनके आपसी रिश्तों पर बातचीत के पर्याप्त अवसर हैं।

पड़ाव तीन : पुराने सम्बन्धों के आधार पर कुछ सार्थक नए पैटर्न या सम्बन्धों को कहना

सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में अपूर्वी के द्वारा बनाए गए चित्र को देखकर पूरे आत्मविश्वास से दिया गया जवाब कि, "सबसे पहले एक जग है और इस जग को इन दो लोटों से भर सकते हैं। फिर तीन गिलास से एक लोटा भर रहा है। दूसरा लोटा भी तीन गिलास से भरेगा। इसलिए जग को भरने के लिए 6 गिलास की ज़रूरत होगी", या "एक लोटा 3 गिलास से भर रहा है तो 2 लोटे 6 गिलास से, 3 लोटे 9 गिलास से, 5 लोटे 15 गिलास से..." गणितीय संवाद और नए पैटर्न को बनाए जाने की बानगी है।

एक बाल्टी को भरने के लिए 3 और 3 गिलास चाहिए। 3 और 3 गिलास को 3 + 3 लिखेंगे। क्या इसको गुणा के रूप में लिखने के प्रश्न पर यह कहना, कि 3 को दो बार जोड़ रहे हैं इसलिए इसे 3 × 2 लिख सकते हैं, इस बात का प्रमाण है कि सीखने वाले ने जोड़ को मिलाने की प्रक्रिया के रूप में समझा है, और इसी प्रक्रिया में दो समूह एक साथ रख रहे हैं इसलिए यहाँ पर गुणा भी हो रहा है। गणित की विविध अवधारणाएँ आपस में अन्तर्सम्बन्धित होती हैं। इसका एक छोटा-सा उदाहरण जोड़ की संक्रिया का गुणा की संक्रिया से सम्बन्ध है। बेहतर गणित सीखने में इन अन्तर्सम्बन्धों को जानना, इनकी खोज करना बहुत ज़रूरी है।

मुझे लगता है, दैनिक जीवन के सार्थक सन्दर्भों पर निरूपण करते हुए खोजबीन की प्रक्रिया से हर प्रकार के सम्बन्ध सीखने वाला खोज ले, यह भी ज़रूरी नहीं है। इस सन्दर्भ पर बातचीत करते हुए हम बराबर होने के सम्बन्ध पर बात कर रहे थे। ऐसा लगता है, यह निष्कर्ष निकालने के बाद, कि 'समूह एक', 'समूह दो' के बराबर है, ऐसा कहना कि 'समूह दो', 'समूह एक' के बराबर होगा, एक 6 से 7 साल आयु वर्ग के बच्चे के लिए बहुत स्वाभाविक नहीं होता है। उदाहरण के लिए, एक लोटे का 2 गिलास से भरना के आधार पर कहना कि 2 गिलास एक लोटे को भरेंगे।

अन्त में

आलेख में ली गई समस्या परिस्थिति में दिए कथन, कि "एक लोटा 2 गिलास पानी से पूरा भर जाता है", को A इंगित करता है B को, के दृष्टिकोण से भी समझ सकते हैं। यहाँ पर यह पड़ताल फिर दिलचस्प हो जाती है कि अगर A इंगित करता है B को, तो क्या हर बार B इंगित करेगा A को? दो बर्तनों में द्रव भरने के सन्दर्भ के लिए तो यह सम्बन्ध सच है, लेकिन सम्बन्ध बदलकर उसकी जगह पर 'चाचा होने' का सन्दर्भ कर दिया तो यह सम्बन्ध ठीक नहीं होगा। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि यह साधारण-सी परिस्थिति क्या बड़ी कक्षाओं में पढ़ाए जाने वाले अमूर्त अवधारणा तुल्यता सम्बन्ध के विमर्श को प्रारम्भ करने के लिए काफ़ी उपयोगी हो सकती है।

अशोक प्रसाद ने हेमवती नंदन बहुगुणा, गढ़वाल विश्वविद्यालय से गणित में स्नातकोत्तर किया है। वे बच्चों और शिक्षकों के साथ विगत 14 वर्षों से गणित शिक्षण पर कार्य कर रहे हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन पौड़ी गढ़वाल में गणित के स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : ashok.prasad@azimpremjifoundation.org

राजनीतिक प्रजातंत्र बनाम सामाजिक प्रजातंत्र

महमूद ख़ान

सामाजिक विज्ञान विषय का शिक्षण यह अवसर देता है कि सामाजिक-राजनीतिक परिघटनाओं का सन्दर्भ लेकर हम बच्चों के साथ संवैधानिक मूल्यों, लोकतांत्रिक मूल्यों व नागरिक दायित्वों की खुली चर्चा कर सकें, मत भिन्नताओं को आमंत्रित कर सकें और विविध दृष्टिकोण को जगह दे सकें। प्रस्तुत आलेख में महमूद ख़ान कहते हैं कि बच्चों के साथ उन सामाजिक मुद्‌दों पर कक्षा में अवश्य बात करनी चाहिए जो उनके और आसपास के समुदायों / क्षेत्रों में घटित होते हैं और बच्चे उनके भागीदार बन रहे होते हैं। यदि हमने अपनी कक्षाओं में इस तरह के अवसर नहीं बनाए तो हमारे देश के भावी नागरिक एकांगी दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ेंगे और इससे लोकतंत्र के सामने नई चुनौतियाँ उभरकर आएँगी। सं.

पिछले वर्षों में नागरिक अधिकारों को लेकर सत्ता प्रतिष्ठानों के साथ संघर्ष की घटनाएँ बहुतायत में रही हैं, जो एक तरह से लोकतंत्र में जनता की राजनीतिक चेतना और संवैधानिक अधिकारों की दावेदारी को पुष्ट करती हैं। लेकिन दूसरी तरफ़ ये सोचने पर मजबूर करती हैं कि क्या संघर्ष अपरिहार्य है? क्या संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों की बहाली का सांस्थानिक स्वरूप मज़बूत नहीं किया जा सकता जिसकी व्यवस्था संविधान में स्पष्ट तौर पर है और जिसके लिए सरकारें काम करती हैं?

संघर्ष एक रास्ता हो सकता है लेकिन जवाबदेह व्यवस्था बनाने की दिशा में और नागरिक शिक्षण की दिशा में क्या करना चाहिए कि हमारी भावी पीढ़ी एक बेहतर नागरिक के रूप में तैयार हो सके और देश की लोकतांत्रिक व्यवस्था व संवैधानिक मूल्यों के प्रति उनका सरोकार बन सके। इस मुद्‌दे पर काफ़ी विचार-विमर्श के बाद मेरे मन में सवाल आते हैं कि क्या इस तरह की घटनाओं को शैक्षिक विमर्श का मुद्‌दा नहीं बनाना चाहिए? सामाजिक विज्ञान विषय का शिक्षणशास्त्र क्या इस तरह के मुद्‌दों को कक्षा में डील करने के अवसर की ओर कुछ इशारा करता है? क्या इस तरह के शैक्षिक विमर्श समाज और देश की कुछ मदद कर सकते हैं? क्या स्कूलों में आने वाले बच्चों के साथ इस तरह के मुद्‌दों पर शैक्षिक विमर्श किया जाना चाहिए?

दरअसल जब हम अपने अतीत को देखते हैं तो पाते हैं कि हम लम्बे समय तक एक सामन्ती राज व्यवस्था में अनुशासित हुए लोग हैं। उस राज व्यवस्था और समाज व्यवस्था के अपने आदर्श एवं मूल्य रहे हैं, जिनको हमने पीढ़ी-दर-पीढ़ी जिया और परम्परा के रूप में आगे बढ़ाया। कालान्तर में हमने अपने देश में लोकतंत्रात्मक राज व्यवस्था की स्थापना की। चूँकि दोनों राज व्यवस्थाओं के आदर्श एवं मूल्य एक दूसरे के बिलकुल विपरीत हैं, ऐसे में बार-बार हमारे सामने यह चुनौती आ खड़ी होती है कि सदियों से चली आ रही परम्पराओं, जिनमें हम पूर्वजों से प्रशिक्षित होते आए हैं और संवैधानिक आदर्श व मूल्यों के बीच जब टकराहट होती है तो किसे

अपनाएँ। अभी हाल ही के दौर में देश इस तरह के आदर्श और मूल्यों के बीच की टकराहट (सबरीमाला मन्दिर में महिलाओं के प्रवेश) को लेकर तनाव से गुज़र रहा है। एक तरफ़ सदियों की परम्परा और विश्वास है तो दूसरी तरफ़ आधुनिक लोकतंत्रात्मक व्यवस्था के संवैधानिक आदर्श व मूल्य और उनकी रक्षा के लिए सर्वोच्च न्यायालय का फ़ैसला।

इस तरह की दुविधा को ध्यान में रखते हुए ही डॉक्टर भीमराव अम्बेडकर ने संविधान सभा में बोलते हुए कहा था, "मात्र राजनीतिक प्रजातंत्र पर सन्तोष नहीं करना है। हमें हमारे राजनीतिक प्रजातंत्र को एक सामाजिक प्रजातंत्र भी बनाना चाहिए। जब तक उसे सामाजिक प्रजातंत्र का आधार न मिले, राजनीतिक प्रजातंत्र चल नहीं सकता। सामाजिक प्रजातंत्र का अर्थ क्या है? वह एक ऐसी जीवन-पद्धति है जो स्वतंत्रता, समानता और बन्धुत्व को जीवन के सिद्धान्तों के रूप में स्वीकार करती है।"
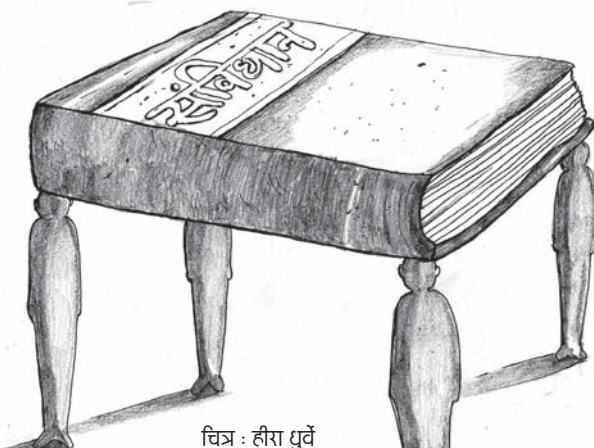
चित्र : हीरा धुर्वे

उक्त सन्दर्भ में मेरा विश्वास है कि हमें उन संस्थाओं को मज़बूत करने की ज़रूरत है जिनके माध्यम से अपनी भावी पीढ़ी को संवैधानिक आदर्श एवं मूल्यों में प्रशिक्षित किया जा सके। स्कूल एक ऐसी ही संस्था है। मैंने सरकारी स्कूलों में एक छोटा-सा प्रयास करके देखा है। उस प्रयास के दौरान हुए कक्षागत अनुभवों को इस आलेख के पहले भाग में रखना चाहता हूँ। ये अनुभव अनुसूचित जाति / अनुसूचित जनजाति अधिनियम पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिए गए फ़ैसले के विरुद्ध भारत बन्द के अगले दिन यानी 3 अप्रैल, 2018 को जयपुर के एक सरकारी स्कूल के 9वीं कक्षा के बच्चों के साथ किए गए विमर्श के हैं। स्कूल के बच्चों के साथ ऐसे विमर्श का अवसर तब बना जब सर्वोच्च न्यायालय के फ़ैसले के पक्ष में भारत बन्द करवाया गया। दूसरे भाग में सामाजिक विज्ञान विषय से जुड़े नीतिगत दस्तावेज़ों के आलोक में मेरे इस काम का विश्लेषण है।

कक्षा-कक्षीय अनुभव

मैंने बच्चों को अपना और अपनी संस्था का नाम बताया। बच्चों से सवाल किया कि कल स्कूल कौन-कौन आए थे? कक्षा में उपस्थित लगभग 18 बच्चों (6 लड़के और 12 लड़कियों) में से आधे ही स्कूल आए थे। जब पूछा गया कि इतने कम क्यों आए थे? तो जवाब मिला, "सर, कल भारत बन्द था।" दरअसल मैं तो सोचकर ही गया था कि मुझे भारत बन्द पर बच्चों से संवाद करना है। बातचीत को आगे बढ़ाते हुए मैंने कहा, "भारत बन्द की वजह से कल देशभर में क्या-क्या हुआ?" बच्चों ने एक-एक कर कई बातें बताईं, मसलन— बस और रेलों को रोका गया, छोटी गाड़ियों को तोड़ा गया, थाने में आग लगाई गई, बसों को जलाया गया, दुकानों में लूटपाट और तोड़फोड़ की गई, इसकी वजह से जयपुर शहर में लगभग 2500 करोड़ रुपए का व्यापारिक नुक़सान हुआ, आदि। मैंने इन सबको श्यामपट्ट पर लिख लिया। मेरा अगला सवाल था, "इतनी सारी बातें तुम्हें कहाँ से पता चलीं?" जवाब मिला, "सर, आज के अख़बार से।"

फिर बच्चों से पूछा, "भारत बन्द किसने करवाया था और वो भारत को बन्द क्यों करवाना चाहते थे?" जवाब मिला, "अनुसूचित

जाति एवं अनुसूचित जनजाति समुदाय ने बन्द करवाया था।" लेकिन क्यों करवाया था इसकी स्पष्टता बच्चों को नहीं थी। मैंने बात बढ़ाने के लिए कहा, "अच्छा, कल मैं भारत बन्द करने के लिए कहूँगा तो भारत बन्द हो जाएगा?" जवाब मिला, "आपके अकेले के कहने से नहीं होगा।" "तो इसका क्या मतलब हुआ?" बच्चे एकदम चुप हो गए। मैंने फिर से कहा, "भारत बन्द कराने से एससी एवं एसटी समुदाय को क्या मिला?" बच्चों में से कोमल नाम की लड़की ने कहा, "सर, उनकी माँग सरकार तक पहुँच गई।" कक्षा में उपस्थित शिक्षिका ने पूछा, "माँग पहुँचाने के लिए भारत बन्द करना ज़रूरी था क्या?" बच्चों ने कहा, "अपने अधिकार जब छीने जाते हैं तो ऐसे ही लड़ना पड़ता है।" मैंने पूछा, "कौन-सा अधिकार छीना गया और किसने छीना?" कक्षा में एक बार फिर से सन्नाटा था।

बात आगे बढ़ाने के लिए मैंने कहा कि मुझे आप लोगों की बातचीत से दो-तीन बातें समझ में आई हैं। पहली बात यह कि अपने अधिकारों के लिए लड़ना पड़ता है। दूसरी बात कि माँग मनवाने या सरकार तक अपनी बात पहुँचाने के लिए रैली, प्रदर्शन और भारत बन्द जैसे क़दम उठाने पड़ते हैं और तीसरी बात, कि अकेले की बात कोई नहीं सुनता।

लेकिन ये बताओ कि भारत बन्द जैसे क़दमों का हमारे समाज पर किस तरह का प्रभाव पड़ता है? बच्चे एक साथ बोले, "सर, इस तरह के बन्द से जनता की परेशानी बढ़ जाती है। आपस में भी दंगे-फ़साद हो जाते हैं जिनमें कई बार लोग मर जाते हैं। जैसे, कल की हिंसा में ही 10 लोग मर गए।" मैंने पूछा, "लोग आपस में क्यों झगड़ा करते होंगे?" सोनी नाम की बालिका बोली, "सर, जिन लोगों की माँग होती है वो अपने समर्थन में भीड़ बढ़ाने और बन्द को सफल बनाने के लिए कई बार लोगों से ज़बरदस्ती बन्द में शामिल होने का दबाव डालते हैं जिसकी वजह से आपस में झगड़ा हो जाता है।" मैंने कहा, "किसी उदाहरण से बताओ।" सोनी एवं कोमल ने कहा, "सर, बाज़ार में हरिजनों की दुकान तो बहुत कम होती हैं सिर्फ़ उनकी दुकानों के बन्द रहने से सरकार पर क्या फ़र्क़ पड़ने वाला था, इसलिए अपने समर्थन में ज़बरदस्ती दूसरी दुकानों को बन्द करवाया गया, और जो बन्द नहीं कर रहे थे उनके साथ भीड़ ने लूटपाट कर ली।"

मैंने एक बार फिर से पूछा, "आख़िर एससी / एसटी का मुद्दा क्या था जिसके लिए भारत बन्द बुलाना पड़ा।" कोमल ने कहा, "सर, मैं बताती हूँ कि मुद्दा क्या था। अभी कुछ दिन पहले सर्वोच्च न्यायालय का एक फ़ैसला आया था, जिसमें कहा गया कि एससी / एसटी एक्ट के अनुसार यदि किसी व्यक्ति के ख़िलाफ़ शिकायत दर्ज होती है तो उसकी

चित्र : हीरा धुर्वे

जाँच होगी और जाँच में शिकायत सही पाई जाने के बाद ही गिरफ़्तारी होगी। जबकि पहले यह था कि यदि किसी एससी / एसटी समुदाय के व्यक्ति को जाति सूचक शब्दों से बुलाया या अपमानित किया जाता था तो शिकायत के साथ ही उसकी गिरफ़्तारी ज़रूरी होती थी, और किसी को भी अग्रिम जमानत नहीं मिल सकती थी।"

कक्षा के कई बच्चों ने कहा, “सर, हमें यह समझ नहीं आ रहा है कि एससी / एसटी एक्ट से सम्बन्धित पहले के क़ानून एवं नए क़ानून में फ़र्क़ क्या है?” मैंने एससी / एसटी एक्ट के प्रावधानों पर बात करते हुए बताया कि पूर्व क़ानून में किस तरह के बदलाव आए हैं, और इसके किस-किस तरह के प्रभाव हो सकते हैं। मैंने दोनों समुदायों के पक्षों को रखने का प्रयास किया कि दोनों ओर से किस-किस तरह के तर्क दिए जा रहे हैं। ये बात करते हुए मुझे समझ में आया कि दरअसल बच्चों को हाई कोर्ट एवं सुप्रीम कोर्ट के बारे में कोई ख़ास जानकारी नहीं है। अतः यहाँ पर मेरे द्वारा न्याय व्यवस्था के ढाँचों पर बच्चों के साथ संक्षिप्त बातचीत ही की गई।

मैंने सवाल उठाया, “यदि देश की सर्वोच्च अदालत ने कोई फ़ैसला दे दिया है तो फिर क्या किया जा सकता है?” बच्चों का जवाब था, “सरकार उसको बदल सकती है।” मैंने पूछा, “कैसे?”, तो कक्षा में सन्नाटा था। कोमल ने कहा, “सर, ये तो नहीं पता लेकिन अंकल कह रहे थे कि पहले भी हमारी सरकार ने सर्वोच्च अदालत का फ़ैसला बदला है।” इससे आगे उसकी जानकारी नहीं थी। मुझे समझ में आ गया कि यह शाहबानो केस की बात कर रही है। यहाँ पर संक्षेप में शासन के तीनों अंगों की जानकारी दी गई और बताया गया कि क़ानून बनाने का काम संसद करती है। क़ानून संवैधानिक है या नहीं ये देखने का काम न्यायालय करता है, और क़ानूनों का पालन हो रहा है या नहीं ये कार्यपालिका की ज़िम्मेदारी होती है।

इसके बाद संविधान में व्यक्ति को किस-किस तरह की स्वतंत्रता दी गई है, इसपर बात की गई। स्वतंत्रता को समझाते हुए बताया गया कि संविधान में किसी को नुक़सान पहुँचाकर अपनी बात मनवाने का कोई प्रावधान नहीं है, चाहे व्यक्तिगत नुक़सान हो या फिर सरकारी सम्पत्ति का। जब सरकारी सम्पत्ति को नुक़सान पहुँचाते हैं तो उसको पुनः ठीक करने का सारा भार जनता पर ही आता है। इस तरह की तोड़फोड़ की वजह से टैक्स और महँगाई बढ़ती है। हम सबको अपने आसपास हमेशा नज़र रखनी चाहिए। यदि कोई ग़लत काम हो रहा है या हमें कोई ग़लत काम में शामिल होने के लिए उकसा रहा है तो उससे सवाल ज़रूर पूछने चाहिए। कई बार सवाल पूछने भर से आप उस समस्या से बच सकते हैं। घटना चाहे घर में घटित हो या समाज में या फिर अपने स्कूल में, हमें उसे समझने का प्रयास करना चाहिए और अपने विवेक से अपना निर्णय करना आना चाहिए। केवल किसी के कहने से किसी काम में शामिल नहीं होना चाहिए।

सामाजिक विज्ञान से जुड़े दस्तावेज़ों के आलोक में मेरा विश्लेषण

सामाजिक विज्ञान का शिक्षण : राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र कहता है, “एक सार्थक सामाजिक विज्ञान पाठ्यचर्या अपनी पाठ्य सामग्री के चयन व गठन द्वारा विद्यार्थियों में समाज की आलोचनात्मक समझ विकसित करने में समर्थ होती है, अतः यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य है। नए आयामों और सरोकारों को शामिल किए जाने की अपार सम्भावनाएँ हैं, विशेषत: विद्यार्थियों के जीवन के निजी अनुभवों से।”

वर्तमान समाज और राजनीति में हड़ताल, धरना-प्रदर्शन, आदि आम घटनाएँ हैं, जिनसे समाज प्रभावित होता है। हमारी कक्षा में दो तरह के बच्चों का समूह था— एक, इन घटनाओं के दर्शक या इनसे प्रभावित लोगों का, और दूसरा, इसमें भागीदारी करने वाला। दोनों के अपने अनुभव और अपना विश्लेषण था।

लोकतंत्र, संवैधानिक मूल्य जैसे सैद्धान्तिक मसलों पर बच्चों की राय का विश्लेषण करें तो कई व्यवहारिक पहलू खुलकर आते हैं। जैसे— ‘क़ानूनी तरीक़े से अधिकार हासिल किए जा सकते हैं।’ ‘अपने अधिकारों की लड़ाई के लिए दूसरे का अधिकार छीनना अन्याय है।’ ‘दबाव बढ़ाने के लिए बन्द या हिंसा को हथियार के रूप में इस्तेमाल करना।’ चर्चा के ऐसे कई सारे पहलू कक्षा में उभरकर आए जिनपर ठहरकर

विस्तार से बात करने की ज़रूरत महसूस हुई। लोकतांत्रिक प्रक्रिया में विरोध या आन्दोलन का स्थान क्या है, अगर स्थान है तो उसका स्वरूप क्या हो, क्या लोकतांत्रिक संरचना में हिंसा स्वीकार्य है, अगर हिंसा होगी तो लोकतांत्रिक ढाँचा कमज़ोर होगा या मज़बूत, आदि।

सामाजिक विज्ञान स्वतंत्रता, विश्वास, पारस्परिक सम्मान और विविधता के प्रति सम्मान जैसे मानवीय गुणों के लिए एक जनाधार का निर्माण करने और उसका विस्तार करने की नियामक ज़िम्मेदारी का वहन करता है। अतः सामाजिक विज्ञान शिक्षण का ध्येय बच्चों को एक नैतिक और मानसिक ऊर्जा प्रदान करना होना चाहिए, ताकि वे स्वतंत्र रूप से सोच सकें और अपनी विशिष्टता खोए बिना उन सामाजिक बलों का सामना कर सकें जिनसे इन मूल्यों को ख़तरा है। सामाजिक विज्ञान शिक्षण द्वारा इस उद्देश्य की प्राप्ति बच्चों में उन सामाजिक विषयों पर विवेचनात्मक चिन्तन की योग्यता को बढ़ावा देकर की जा सकती है, जो व्यक्तिगत और सामाजिक हितों के बीच मौलिक सहभाव का वहन करते हैं।

चित्र : हीरा धुर्वे

आलोचनात्मक चिन्तन के मद्देनज़र शिक्षकों और विद्यार्थियों दोनों के लिए एक ऐसी व्यापक पाठ्यचर्या की कल्पना की गई है, जिसमें ज्ञान प्राप्ति में बिना किसी दबाव के विद्यार्थियों और शिक्षकों की भागीदारी हो। ऐसी सहजता और सहभागिता के द्वारा ही विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए पठन-पाठन रुचिपूर्ण और आनन्ददायक बनाया जा सकता है। समाज में घट रही घटनाओं के उदाहरण से पाठ्यचर्या के विषय को जोड़ेंगे तो बच्चों को उसे विभिन्न तरीक़ों से समझने और विश्लेषित करने के मौक़े मिलेंगे। जैसा कि मेरी कक्षा में एससी / एसटी से सम्बन्धित विवाद कार्यपालिका, विधायिका और न्यायपालिका के सम्बन्धों और कार्य पद्धति को समझने तक गया। इस तरह यह एकतरफ़ा सूचनाओं का हस्तान्तरण नहीं रहा बल्कि विचार-विमर्श का माध्यम बन गया।

अकसर शिक्षक अपनी बात में कहते हैं कि सर, पाठ्यक्रम पूरा हो जाए यही काफ़ी है। पुस्तक के बाहर के मुद्दों पर कब और कैसे बात करें, समय ही नहीं मिलता। स्कूलों में आमतौर पर इस तरह के मुद्दों से बचने की कोशिश होती है। इसके दो कारण हो सकते हैं और दोनों ही उचित प्रतीत नहीं होते। या तो हमारे स्वयं के विचार इन मुद्दों के बारे में ऐसे हैं जिन्हें हम सार्वजनिक रूप से साझा नहीं करना चाहते, क्योंकि वो तर्कपूर्ण और संविधान सम्मत नहीं हैं। या हम छात्रों की मानसिक परिपक्वता को लेकर आश्वस्त नहीं हैं कि वो उन मुद्दों पर विचार कर पाएँगे। समकालीन मुद्दों में हमारी भावनाएँ गुँथी होती हैं और उन्हें अलग कर तर्कपूर्ण चर्चा करना हमारे लिए सहज और आसान नहीं है। इसलिए अकसर हम उन्हीं मुद्दों की बात करना चाहते हैं जो देश और काल दोनों में विस्थापित हों।

जबकि मेरा अनुभव कहता है कि बच्चे काफ़ी अच्छी तरह से ऐसे मुद्दों पर न सिर्फ़ चर्चा करते हैं बल्कि अपने विवेक से घटनाओं का विश्लेषण भी करते हैं। उदाहरण के लिए, जब मैं बच्चों से भारत बन्द के सामाजिक प्रभावों

पर चर्चा कर रहा था तो उन्होंने कहा कि सर, जब हम ग़ैर-क़ानूनी तरीक़ों से अपने अधिकारों की पैरवी करते हैं तो समाज में आपसी टकराहट बढ़ जाती है। इसी का नतीजा अभी भारत बन्द के दौरान देखने को मिला कि कितनी जान माल की हानि समाज को उठानी पड़ी। उन्होंने यह भी बताया कि क्यों आवश्यक सेवाओं को बन्द से अलग रखा गया, मसलन– ऐम्बुलेंस, अस्पताल और दवाओं की दुकान, आदि। इस बातचीत से स्पष्ट हो जाता है कि 14-15 साल के बच्चे बहुत अच्छे-से अपने आसपास की घटनाओं का न सिर्फ़ अवलोकन करते हैं, बल्कि उनपर अपने अभिमत भी तैयार करते हैं।

अतः बच्चों के साथ उन सामाजिक मुद्दों पर कक्षा-कक्ष में अवश्य बात करनी चाहिए जो उनके और आसपास के समुदायों / क्षेत्रों में घटित होते हैं और बच्चे उनके भागीदार बन रहे होते हैं। यदि हमने अपनी कक्षाओं में इस तरह के अवसर नहीं बनाए तो हमारे देश के भावी नागरिक एकांगी दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ेंगे और इससे लोकतंत्र के सामने नई चुनौतियाँ उभरकर आएँगी।

सन्दर्भ

1. *सामाजिक विज्ञान का शिक्षण : राष्ट्रीय फ़ोकस समूह का आधार पत्र*
2. प्रभात प्रकाशन, दिल्ली से प्रकाशित और रुद्रांक्षु मुखर्जी द्वारा सम्पादित *भारत के महान भाषण*
3. जयपुर शहर के सरकारी स्कूलों में हुए कक्षा-कक्ष के अनुभव।

महमूद ख़ान पिछले दो दशक से शिक्षा के क्षेत्र में अध्यापन एवं प्रशिक्षण कार्य में सक्रिय रहे हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, जयपुर में बतौर सामाजिक विज्ञान रिसोर्स पर्सन कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mahmood.khan@azimpremjifoundation.org

प्राथमिक स्तर से गणितीय सोच का विकास

तान्या सक्सेना

प्रमेय सिद्ध करना, निगमनात्मक तर्क करना गणित शिक्षा का केन्द्र माना जाता है। परन्तु अकसर शिक्षक इसे कक्षा-कक्ष की सीखने-सिखाने की प्रक्रिया से जोड़ नहीं पाते एवं विद्यार्थी प्रायः प्रमेय को महज़ परीक्षा हेतु याद कर लेते हैं। इस समस्या की विवेचना करते हुए हम प्रस्तुत आलेख में गणितीय तर्क के आयामों को समझेंगे जिससे गणितीय तर्क के विकास के लिए प्राथमिक स्तर से ही गणित सीखने-सिखाने में जगह बनाई जा सके। यह आलेख देश-विदेश में किए गए शोध के आधार पर गणितीय तर्क विकास के लिए कुछ पेडागॉजिकल तरीक़े प्रस्तुत करता है। साथ में एनसीईआरटी और छत्तीसगढ़ की गणित की पाठ्यपुस्तकों में प्राथमिक स्तर पर किए गए प्रयत्नों को भी प्रस्तुत करता

विद्यार्थियों / बच्चों में तार्किक चिन्तन विकसित करना गणित शिक्षा का एक मुख्य उद्देश्य है। यह बात *एनसीएफ़ 2005* एवं *गणित शिक्षा के पोजीशन पेपर 2006* में गणित के लक्ष्यों में शामिल है। भारत में गणित की पाठ्यपुस्तकों में माध्यमिक-उच्च माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थी कथन (प्रमेय) को सिद्ध करने की प्रक्रिया स्वयं करना व समझना आरम्भ करते हैं। किन्तु साथी शिक्षकों के कक्षा अनुभव यह बताते हैं कि तार्किक चिन्तन के उद्देश्य से किए गए यह प्रयत्न शायद पर्याप्त नहीं हैं। मैंने भी यह पाया कि अकसर विद्यार्थी प्रमेय सिद्ध करना, या निगमनात्मक तर्क (deductive reasoning) को समझ नहीं पाते और केवल परीक्षा हेतु उसे याद कर लेते हैं।

गणित शिक्षण के द्वारा तार्किक चिन्तन को विकसित करने पर भारत के शिक्षाविदों के साथ-साथ दूसरे देशों के गणितज्ञ भी चर्चा कर रहे हैं। सिद्ध करना या तार्किक चिन्तन को गणित शिक्षा का केन्द्र मानते हुए वे इस बात पर चर्चा और शोध कर रहे हैं कि तार्किक चिन्तन गणित सीखने-सिखाने (कक्षा में) के दौरान कैसे विकसित करें? यह बड़ा सवाल कुछ मूल सवालों से जुड़ता है— गणित में तार्किक चिन्तन से क्या अर्थ है, किस प्रकार की गणितीय अवधारणाओं या सवालों के द्वारा तार्किक चिन्तन विकसित कर सकते हैं, और कैसे प्राथमिक और उच्च प्राथमिक स्तर पर विद्यार्थियों को ऐसे मौक़े दिए जा सकते हैं? इस सन्दर्भ में बॉल एवं उनके साथियों द्वारा लिखा गया एक पर्चा उल्लेखनीय है।

सन् 2002 में प्रकाशित बॉल एवं उनके चार साथियों द्वारा लिखित *टीचिंग ऑफ़ प्रूफ़्स,* प्रूफ़्स यानी उपपत्ति पर किए गए शोधों का एक संकलन है। यह शोध प्राथमिक, उच्च-माध्यमिक और उच्चतर माध्यमिक स्तरों के विद्यार्थियों के साथ किए गए हैं। इस संकलन में लेखक उपपत्ति (प्रूफ़्स) को गणित शिक्षा का एक मुख्य लक्ष्य मानते हुए उपपत्ति सीखने के मूल बिन्दु, उन बिन्दुओं को विकसित करने के तरीक़े एवं उनसे जुड़ी चुनौतियों पर चर्चा करते हैं। साथ ही प्राथमिक कक्षा से ही तार्किक चिन्तन के विकास को प्रोत्साहित करते हैं। प्रस्तुत लेख में हम बॉल एवं उनके साथियों द्वारा किए गए शोध को आधार बनाकर तार्किक चिन्तन के विकास

से जुड़े उपरोक्त बिन्दुओं और सवालों पर चर्चा करेंगे। साथ ही एनसीईआरटी और छत्तीसगढ़ की पाठ्यपुस्तकों में इस दिशा में किए गए प्रयत्नों का विवेचन करेंगे।

गणित में तार्किक चिन्तन से क्या अभिप्राय है?

जैसा कि बॉल एवं अन्य (2002) कहते हैं कि गणितीय तार्किक चिन्तन (मेथेमेटिकल रीज़निंग) कोई एकमात्र कौशल नहीं, अपितु गणित के कुछ मूल कौशलों का संकलन (set) है। गणितीय रीज़निंग, पड़ताल (enquiry) का एक सम्भव साधन है जिसके द्वारा विद्यार्थी गणित में नए विचारों / वस्तुओं की खोज (discovery) और अन्वेषण (exploration) कर सकते हैं। इसमें अपने अनुसार परिभाषा बनाना या बीजगणित के किसी सवाल को नए तरीक़े से हल करना जैसी बातें भी शामिल हैं। इसके अतिरिक्त, गणितीय रीज़निंग विद्यार्थियों में गणितीय कथन, दावे या किसी गणितीय प्रक्रिया को सिद्ध करने में भी मददगार हो सकती है। आख़िर कैसे?

शोधकर्ता कहते हैं कि सिद्ध (प्रूव) करना ‘दिमाग़ की आदतों’ (habits of mind) से जुड़ा है एवं विश्वास (belief), सहज-बोध (intuition), सामाजिक नियम (social norms), दृढ़ता (conviction) या किसी प्राधिकारी का परिप्रेक्ष्य (perception of authority) जैसे कारक उसे प्रभावित करते हैं– {क्लीमेन्ट्स एवं बातिस्ता (1992); हीली एवं होयल्स (2000)}। अकसर जब किसी विद्यार्थी से कक्षा में यह सवाल पूछा जाता है कि क्या आप कथन P को सत्य सिद्ध कर सकते हैं? यह सवाल असल में दो सवालों को जोड़कर बना है– पहला, क्या आप कथन P पर विश्वास करते हैं? और अगर हाँ तो दूसरा सवाल, आप कथन P पर क्यों विश्वास करते हैं?

यहाँ पर विद्यार्थी अपने सहज-बोध, पुराने अनुभवजन्य साक्ष्य, उदाहरण, या परिभाषा टटोलते हुए कथन P को जाँचते हैं, अथवा कई बार बाह्य जानकार (external authority) के कहे को मानते हुए आगे बढ़ जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, यह गणितीय कथन लें कि किन्हीं दो सम संख्याओं का जोड़ एक सम संख्या होती है। इसकी सत्यता या असत्यता को जाँचने हेतु अथवा अपने विश्वास या सहज-बोध को तार्किक तथ्यों से जोड़ने हेतु शायद वे कुछ अनुभवजन्य साक्ष्य, जैसे– 8 + 4 = 12, का उपयोग करेंगे, सम संख्या की परिभाषा, उसके गुणों को जाँचेंगे, आदि।

उपरोक्त चर्चा के आधार पर मैं यह रेखांकित करना चाहती हूँ कि गणित में रीज़निंग का विकास या सिद्ध करना एक जटिल प्रक्रिया है जिसे सहजता और क्रमात्मक ढंग से पढ़ाया जाना चाहिए। प्रूफ़्स शिक्षण के प्रयास की शैक्षिक असफलता दर्शाती है कि माध्यमिक और उच्च-माध्यमिक स्तर पर वर्तमान पाठ्यक्रम जिस प्रकार प्रूफ़्स से परिचय कराता व उसके विकास को समझाता है, वह शायद तार्किक चिन्तन के विकास हेतु पर्याप्त नहीं है। जैसे यह धारणा, कि गणितीय तर्क और प्रूफ़्स की समझ प्रमेय लिखते हुए ही विकसित हो सकती है और सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को बहुत सीमित कर देती है। अतः कक्षा में ऐसे मौक़े देने होंगे जहाँ विद्यार्थी खोजबीन करें, पैटर्न पर काम करें, कथनों को सिद्ध करने के लिए ख़ुद तर्क ढूँढ़ें और छोटे समूहों में एक दूसरे के तर्कों पर बात करें, ख़ुद सामान्यीकरण करें और दावे बनाएँ। ऐसे मौक़ों के लिए पर्याप्त समय और अवसर तभी मिल सकता है जब प्राथमिक शालाओं से प्रयत्न किया जाए। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि गणित पाठ्यक्रम में तार्किक सोच या मेथेमेटिकल रीज़निंग के मौक़े प्राथमिक स्तर से ही सम्मिलित किए जाएँ।

प्राथमिक स्तर पर तार्किक चिन्तन के विकास हेतु किए गए प्रयत्न

उपरोक्त चर्चानुसार, गणितीय तार्किक क्षमता और निगमनात्मक सोच के विकास हेतु प्राथमिक कक्षाओं से ही प्रयत्न करने होंगे। अतः प्राथमिक स्तर पर ऐसे अधिक-से-अधिक

अवसर दिए जा सकते हैं जहाँ विद्यार्थी संख्याओं के साथ खेलें, उनके स्वरूप, पैटर्न, आपसी सम्बन्धों को समझें और उनकी परिभाषा की व्याख्या करते हुए उनका उपयोग करें। आगे की कक्षाओं में इस समझ का स्थापन धीरे-धीरे औपचारिक प्रूफ़्स तक किया जा सकता है। ऐसे ही प्रयत्न एनसीईआरटी और छत्तीसगढ़ की पाठ्यपुस्तकों में देखे जा सकते हैं। प्रस्तुत खण्ड में इन पुस्तकों से हम कुछ बिन्दु एवं उदाहरण प्रस्तुत करेंगे।

एनसीईआरटी कक्षा 2 की पाठ्यपुस्तक से

प्राथमिक कक्षाओं में एक मुख्य कोशिश गणित को मज़ेदार और रुचिकर बनाने की होती है। अतः यह प्रयत्न किया जाता है कि आसपास की मूर्त वस्तुओं पर आधारित गतिविधियाँ दी जाएँ जिनसे बच्चों को तार्किक और अमूर्त चिन्तन करने या सोचने के लायक़ बनाया जा सके। इस स्तर पर कक्षा में खेल, पहेलियों, कथाओं के द्वारा संख्याओं को जोड़ा जा सकता है। पैटर्न की पहचान गणित में अहम है। पैटर्न पुनरावृत्ति को देखने और जाँचने के कौशल का विकास करते हैं, साथ ही यह ऐसी गणितीय सोच की नींव रखते हैं जो बीजगणित और सामान्यीकरण का आधार है। इसे आकारों, संख्याओं की आसान पुनरावृत्ति से शुरू करते हुए जटिल बनाया जा सकता है जिसके दौरान बच्चे पुनरावृत्ति के नियम को समझेंगे और नए पैटर्न बनाएँगे। चित्र 1 में संख्याओं के पैटर्न दिए गए हैं, जहाँ बच्चे संख्याओं के निम्न पैटर्न में निहित तार्किक नियम को पता करके उसे आगे बढ़ाएँगे। जैसे– 24, 27, 30, 33, 36, ... में बच्चे यह पता करेंगे कि हर संख्या पिछली संख्या से 3 अंक बड़ी है, और इसी तरह ठीक अगली संख्या लिखी जाएगी।

चित्र 1

जैसे– दस दशमलव आधारित संख्या पद्धति की समझ, अंक संक्रियाओं अर्थात जोड़ने, घटाने में गणितीय तर्क को खोजना और उस कौशल का दूसरी जगह उपयोग कर पाना। अकसर देखा जाता है कि बच्चे सवाल हल करके एक विशिष्ट जवाब पता कर लेते हैं, पर अनुमान लगाना उन्हें कठिन लगता है, जिसमें विभिन्न तरीक़ों / दिशाओं से सोचना व आकलन करना शामिल है, और यह कौशल गणितीय तार्किकता के लिए अहम है। इसलिए ऐसे अवसर भी दिए जा सकते हैं जो अनुमान लगाने, रणनीति या योजना बनाने को प्रोत्साहित करें। नीचे बॉक्स 1 का उदाहरण बच्चों को अनुमान लगाने और ऐसे तरीक़े खोजने के मौक़े देता है, जहाँ बच्चे अपने कक्षा-कक्ष की ऊँचाई की क़ुतुब मीनार की ऊँचाई से तुलना करते हुए एक संख्या के रूप में जवाब का अन्दाज़ा लगाएँगे।

एनसीईआरटी कक्षा 4 की पाठ्यपुस्तक से

गणितीय रूप से सोचने और तार्किक क्षमता के विकास के लिए गणित की बुनियादी अवधारणा में निहित तार्किकता को समझना और कौशल विकसित करना भी ज़रूरी है।

बॉक्स 1

एनसीईआरटी कक्षा 6 की पाठ्यपुस्तक से

एनसीईआरटी की कक्षा 6 में 'संख्याओं के साथ खेलना' पाठ सम्मिलित है, जिसमें मुख्यतः संख्याओं के प्रकार, जैसे– भाज्य-अभाज्य, सम-विषम; अथवा संख्याओं के गुण, जैसे– गुणनखण्ड, गुणज, आदि पर बात की गई। पहले पैटर्न के आधार पर परिभाषा बनाना, फिर परिभाषा के आधार पर दूसरी बड़ी संख्याओं को जाँचना। महत्त्वपूर्ण बात यह जानना है कि संख्याओं का हर अनन्त पैटर्न / सेट किसी नियम से बद्ध है। अंक 2 से विभाजित संख्याएँ एक अनन्त सेट बनाती हैं। ज़ाहिर बात है कि यह संख्याएँ 2 की गुणज भी हैं और पैटर्न का नियम 2 × 1, 2 × 2, 2 × 3, 2 × 4, ... है।

इसके अतिरिक्त पैटर्न देखकर विभाज्यता के नियम बनाना और फिर उन नियमों के आधार पर दी गई संख्या की विभाज्यता पता करने के अवसर दिए गए हैं।

ऐसे अवसर विद्यार्थियों में संख्याओं का अनुमान (conjecture) और उनसे जुड़े तथ्यों पर सोच विकसित करने में मदद करते हैं। इनके द्वारा ऐसी अनुभूति भी मिलती है कि गणित में केवल एक ही नहीं, बल्कि एक से अधिक या अनन्त जवाब भी हो सकते हैं। 9 के गुणनखण्ड सीमित हैं वहीं 9 के गुणज अनन्त हैं, जिनमें ऐसी / इतनी बड़ी संख्याएँ भी हैं जो शायद उन्होंने कभी पढ़ी, सुनी या देखी नहीं, पर उनका अस्तित्व है। उपरोक्त प्रकार के अनुभव सामान्यीकरण, जो कि गणितीय प्रूफ़्स और तार्किक सोच का एक अहम हिस्सा है, की समझ विकसित करने में सहयोगी होंगे। साथ ही पैटर्न को समझते हुए नियम बनाना और फिर नियम की जाँच भी की जा सकेगी, क्योंकि अकसर विद्यार्थी अनुभवजन्य तथ्यों अथवा सत्यापन को प्रूफ़्स मान लेते हैं। यह बहुत ज़रूरी है कि वे साक्ष्य एवं सत्यापन के बीच अन्तर को समझें। अतः प्रस्तुत मौक़ों के द्वारा चर्चा करते हुए शिक्षक कक्षा में गणितीय प्रूफ़्स और तार्किकता के विकास को प्रोत्साहित कर सकते हैं।

सम और विषम संख्याएँ

क्या आप संख्याओं 2, 4, 6, 8, 10, 12, 14, ... में कोई प्रतिरूप (pattern) देखते हैं? आप पाएँगे कि इनमें से प्रत्येक 2 का एक गुणज है।

ये संख्याएँ *सम* **संख्याएँ (even numbers)** कहलाती हैं। शेष बची सभी प्राकृत संख्याएँ 1, 3, 5, 7, 9, 11,... **विषम संख्याएँ (odd numbers)** कहलाती हैं।

आप आसानी से जाँच कर सकते हैं कि एक 2 या 3 अंकों वाली संख्या सम संख्या है या नहीं। आप यह कैसे ज्ञात करेंगे कि 756482 जैसी बड़ी संख्या एक सम संख्या है या नहीं? क्या 2 से भाग देकर? क्या यह प्रक्रिया जटिल नहीं होगी?

हम कहते हैं कि वह संख्या जिसके इकाई के स्थान पर 0, 2, 4, 6 या 8 अंक हों एक *सम संख्या* होगी। इसलिए संख्याएँ 350, 4862 और 59246 सम संख्याएँ हैं। संख्याएँ 457, 2359 और 8231 विषम संख्याएँ हैं। आइए, अब कुछ रोचक तथ्यों को ज्ञात करने का

बॉक्स 2

एनसीईआरटी कक्षा 8 की पाठ्यपुस्तक से

कक्षा 6 में संख्याओं और उनके सम्बन्ध पर की गई चर्चा का विस्तार करते हुए कक्षा 8 में भी 'संख्याओं के साथ खेलना' पाठ लिखा गया। चूँकि कक्षा 8 में गणित औपचारिकता की ओर अग्रसर हो रहा है, इसीलिए यहाँ गणितीय भाषा, चिह्न, प्रतीकों के इस्तेमाल के अवसर दिए गए हैं। इस पाठ में संख्या पद्धति और उनके गुणधर्मों को सामान्यीकरण के स्तर तक ले जाया गया है और पहले गणितीय भाषा और चिह्नों की मदद से संख्याओं को व्यापक रूप में लिखने के अवसर और सवाल दिए गए हैं। संख्याओं को व्यापक रूप में लिखते हुए अक्षरों का उपयोग संख्या की तरह किया जाता है। अक्षर संख्याओं का अनुभव न केवल बीजगणित में उपयोगी है, बल्कि गणितीय प्रूफ़्स में भी व्यापकता के कौशल से सहज होना विद्यार्थियों के लिए अति उपयोगी होगा। इसके अलावा, प्रस्तुत पाठ में विभाज्यता के नियमों की जाँच (test of divisibility) के औचित्य का विस्तार है।

इस प्रकार यह दोनों पाठ संख्या पद्धति की परिभाषा, गुणों, उनके सम्बन्धों को खोजने और

व्यापकता पर समझ बनाने में सहायक हैं, जोकि तार्किक सोच विकसित करने हेतु एक मज़बूत आधार प्रदान करेंगे।

16.2 व्यापक रूप में संख्याएँ

आइए एक संख्या 52 लें और उसे इस रूप में लिखें :

$$52 = 50 + 2 = 10 \times 5 + 2$$

इसी प्रकार, संख्या 37 को इस प्रकार लिखा जा सकता है :

$$37 = 10 \times 3 + 7$$

व्यापक रूप में, अंकों a और b से बनी किसी दो अंकों की संख्या ab को इस रूप में लिखा जा सकता है : $ab = 10 \times a + b = 10a + b$

ba के बारे में क्या कहा जा सकता है? $ba = 10 \times b + a = 10b + a$

आइए, अब संख्या 351 को लें। यह एक तीन अंकों की संख्या है। इस संख्या को भी इस रूप में लिखा जा सकता है:

बॉक्स 3

छत्तीसगढ़ पाठ्यपुस्तक कक्षा 10 से

गणित के तार्किक ढाँचे को समझना और कथनों को गणितीय ढंग से सिद्ध करना गणित सीखने-सिखाने का एक अहम पहलू है। माध्यमिक स्तर पर इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि विद्यार्थी गणितीय कथनों को ऐसे ही न मानें, बल्कि उन्हें तर्क के आधार पर सिद्ध करते हुए अपनी एक विस्तृत समझ बनाएँ। यह कथन संख्या, बीजगणित और ज्यामिति से जुड़े हो सकते हैं। माध्यमिक स्तर पर गणितीय भाषा का उपयोग और गहन एवं विस्तृत हो जाता है। साथ ही इस बात पर ज़ोर दिया जाता है कि विद्यार्थी स्वयंसिद्ध, परिभाषाओं, सिद्ध प्रमेय, अभिगृहीत के ज्ञान का भरपूर इस्तेमाल करें।

इस समझ एवं लक्ष्य के अनुसार छत्तीसगढ़ की कक्षा दसवीं की पाठ्यपुस्तक में 'गणितीय कथनों की जाँच' पाठ लिखा गया। यह माध्यमिक स्तर पर ख़ास प्रूफ़्स पर केन्द्रित पहली बार गणित के पाठ्यक्रम में सम्मिलित किया गया। चलिए, इस पाठ के अहम बिन्दुओं पर विस्तार से चर्चा करते हैं।

पाठ का ढाँचा

इस पाठ में उपपत्तियों को तीन मुख्य पहलुओं में बाँटा गया है, जिनसे विद्यार्थी उपपत्ति की समझ तीन चरणों में सहजता से बना पाएँ। इसे नीचे बॉक्स 4 में प्रस्तुत किया गया है। सबसे पहला है, किसी भी कथन को सिद्ध करने हेतु इस्तेमाल होने वाले स्वयंसिद्ध, सिद्ध प्रमेयों व परिभाषाओं का ज्ञान होना। जैसे– परिभाषा के अनुसार सम संख्याएँ पूर्णांक 2 का गुणज होती हैं, इसीलिए उसे b = 2k लिख सकते हैं।

दूसरा पहलू निगमनात्मक तार्किकता की बात करता है कि किस प्रकार उपपत्ति में दो क्रमात्मक कथन तर्क से जुड़े हैं। तीसरा और आख़िरी पहलू उपपत्ति के दौरान प्रतीक, चिह्नों के इस्तेमाल को प्रोत्साहित करता है जिससे गणितीय कथन संक्षिप्त और सटीक तरीक़े से लिखा जा सके। इन्हीं पहलुओं को उजागर करते हुए सम और विषम संख्याओं के जोड़ पर एक उपपत्ति नीचे दी गई है :

कथन 1 : एक विषम और एक सम संख्या का जोड़ हमेशा विषम संख्या होती है।

उपपत्ति : किसी भी सम पूर्णांक b को हम $b = 2k$ लिख सकते हैं, जहां k कोई पूर्णांक है।

(सम पूर्णांक की परिभाषा से, चूंकि b, 2 से विभाजित है) -------------- (1)

किसी भी विषम पूर्णांक a को हम $a = 2k_1 + 1$ लिख सकते हैं ,जहाँ k_1 भी पूर्णांक है।

(किसी भी सम संख्या में 1 जोड़ने पर विषम संख्या प्राप्त होती है) ------- (2)

अब (1) व (2) को जोड़ने पर

$a + b = 2k_1 + 1 + 2k = 2(k + k_1) + 1$

$= 2m + 1$ जहाँ $m = k + k_1$ है और m एक पूर्णांक है। (क्यों?)

चूँकि $2m$ एक सम संख्या है।

अतः $2m + 1$ एक विषम संख्या है।

यानी एक विषम और एक सम संख्या का जोड़ हमेशा विषम संख्या ही होगी।

आपने देखा कि यहाँ हमने सम और विषम पूर्णांक की परिभाषा के आधार पर इस कथन को सिद्ध किया है ।

बॉक्स 4

इस तरह निगमनात्मक तार्किक क्षमता, जोकि पेचीदा और अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, के विकास हेतु इस पाठ में अनेक मौक़े देने का प्रयत्न किया गया है, जहाँ सरल, जटिल कथनों पर उदाहरण एवं सवाल हैं जो ज्यामिति, अंकगणित या बीजगणित के हैं। पाठ में ख़ास निगमनात्मकता पर ऐसे उदाहरण भी दिए गए हैं जहाँ विद्यार्थी परिभाषाओं व अभिगृहीतों में

सही कथन का चुनाव करेंगे और उसके आधार पर तार्किक निष्कर्ष निकालेंगे। पाठ्यपुस्तक में इस प्रकार के केन्द्रित प्रयत्न एवं कक्षा में चर्चा औपचारिक उपपत्ति लिखने, समझने में मदद कर सकती है।

पाठ्यपुस्तक से कक्षा तक

यह सब उदाहरण दिखाते हैं कि कुछ महत्त्वपूर्ण पाठ्यपुस्तकों में तो अब ऐसे मौक़े देने की बात अलग-अलग ढंग से है। एनसीईआरटी की कक्षा 1 से लेकर कक्षा 8 तक की सभी पाठ्यपुस्तकों में इनकी झलक मिलती है। पर यह कहना मुश्किल है कि यह कक्षा तक किस रूप में पहुँचता है और विद्यार्थियों की प्रूफ़ करने के बारे में क्या समझ बनी है। शिक्षकों व बच्चों के साथ अन्तःक्रिया के अनुभवों में यह बात दिखती है कि वे एक-दो उदाहरण देने अथवा किसी एक आकृति में मापकर दिखा देने को सिद्ध करने के तुल्य मानते हैं। जैसे विद्यार्थी अकसर त्रिभुज के तीनों कोणों के माप को जोड़कर जाँचने को अथवा उनके कोनों को काटकर उन कोणों को एक साथ जोड़कर रखने को प्रूफ़्स मानते हैं। बहुत-से शिक्षक भी इसे ही सिद्ध करना मानते हैं। यहाँ तक कि कुछ अनुभवी शिक्षक जो एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकों से पढ़ा चुके हैं, त्रिभुज के तीनों कोणों को काटकर, जोड़कर उन्हें एक अर्ध-वृत्त या चतुर्भुज के कोणों को जोड़कर वृत्त का आकार दिखने को सिद्ध करने का एक आसान और असरदार तरीक़ा समझते हैं। कुछ शिक्षकों से बात करने पर हमने यह भी पाया कि शिक्षक अकसर समान्तर श्रेणी (arithmetic progressions) जैसी अवधारणाओं में गणितीय तार्किकता / सोच कैसे विकसित करना है, यह ढूँढ़ नहीं पाते और अन्ततः सूत्र याद करके सवाल हल करने तक ही सीमित रह जाते हैं।

एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तक में इस बात की ओर ध्यान भी दिलाया गया है और प्रूफ़्स से जुड़ी भ्रान्तियों पर उदाहरण सहित बात की गई है। जैसे, यदि आपको सिद्ध करना है कि 'त्रिभुज के तीनों कोणों का जोड़ 180° होता है', तो त्रिभुज के तीनों कोणों को काटकर एक रेखा में रखना और 180° कहना, क्या गणितीय सिद्ध है? अथवा त्रिभुज के तीन कोणों को नापना, फिर जोड़ना और 180° कहना, क्या गणितीय सिद्ध है? पाठ में एक बार फिर व्यापकता और गणितीय तर्क की भूमिका को स्थापित करने का प्रयत्न किया गया है।

कक्षा में गणितीय तर्क क्षमता का विकास

यह कहना उचित है कि कक्षा में गणितीय तर्क विकसित करने में बच्चों की विविधता एक महत्त्वपूर्ण पहलू है। इस सन्दर्भ में बॉल एवं अन्य (2002) द्वारा अपने लेख में प्राथमिक स्तर पर किए गए शोधों के कुछ अनुभव देखना उचित होगा। विद्यार्थियों में गणितीय रीज़निंग के विकास को समझने हेतु कुछ दीर्घकालीन अध्ययन (longitudinal study) किए गए, जिनमें कक्षा तीन (8 से 9 वर्ष आयु) के विद्यार्थियों की विस्तृत एवं व्यापक जानकारी एकत्रित की गई, प्रतिदिन पाठ के वीडियो बनाए गए, विद्यार्थियों की नोटबुक और टेस्ट का अध्ययन किया गया, विद्यार्थियों के इंटरव्यू लिए गए और शिक्षकों के शैक्षिक नोट्स एवं प्लान भी अभिलिखित किए गए। इस दौरान उपयुक्त गणितीय टास्क / सवाल देते हुए विद्यार्थियों में गणितीय तार्किक क्षमता को बारीक़ी से समझने का प्रयास किया गया।

शिक्षक ने कुछ इस प्रकार के सवाल कक्षा में दिए– 'मेरी जेब में एक सेंट, पाँच सेंट और दस सेंट के सिक्के हैं। यदि मैंने बिना देखे दो सिक्के जेब से निकाले तो मेरे हाथ में कितने पैसे हो सकते हैं?' इस पर काम करते हुए विद्यार्थियों ने कुछ जवाब निकाले, जो हैं– 2, 6, 10, 11, 15 और 20, जिसके पश्चात उनको इन जवाबों के इतर सम्भव जवाबों को ढूँढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया गया। एक तरफ़ तो कुछ विद्यार्थियों को सवाल ही समझ नहीं आ रहा था वहीं दूसरी ओर, कुछ विद्यार्थियों ने एक सूची बनाकर ये स्पष्ट किया कि उपरोक्त जवाबों के इतर और कोई सम्भावना नहीं होगी एवं नए सिक्के निकालने पर भी इन्हीं छह में से एक

जवाब मिलेगा, यानी 2, 6, 10, 11, 15 या 20 । शायद वे अपने अनुभवजन्य साक्ष्यों से सन्तुष्ट थे। और वैसे भी इस स्तर पर विद्यार्थियों से सीमित या अनन्त उत्तर समूह (finite or infinite answer set) की पूर्णता को जाँचने की गणितीय या तार्किक सोच और तरीक़ों की अपेक्षा नहीं की जाती।

उपरोक्त चर्चा के चार महीने बाद कक्षा में शिक्षक द्वारा एक और चर्चा की गई। चूँकि विद्यार्थियों ने चार महीने सम और विषम संख्याओं के जोड़-घटाव पर काफ़ी काम किया था, (जैसे– 4 + 8 = 12, 6 + 4 = 10 आदि), इसीलिए ऐसा माना गया कि उनके दिमाग़ में इन संख्याओं का अनुमान (conjecture) विकसित हो गया होगा। शिक्षक ने इस प्रकार के कुछ उदाहरण देते हुए अब यह कथन सिद्ध करने को कहा। कथन था : 'किन्हीं भी दो विषम संख्याओं का जोड़ एक सम संख्या होती है।' कुछ विद्यार्थी इस बात को ही नहीं समझे, तो कुछेक सूची बनाने लगे। इसी बीच शिक्षक ने कक्षा में सम और विषम संख्याओं की परिभाषा और स्वभाव को पुनः दोहराया। प्रयत्न करने के बाद कुछ विद्यार्थियों ने कहा कि इसे सिद्ध करना तो सम्भव ही नहीं है क्योंकि हमने इतनी बड़ी संख्या कभी देखी ही नहीं, और न ही हमें यह पता है कि इस संख्या का नाम क्या होगा। कुछ देर और जूझने के बाद विद्यार्थियों ने दो विषम संख्याओं के जोड़ को निम्न प्रकार से निरूपित किया :
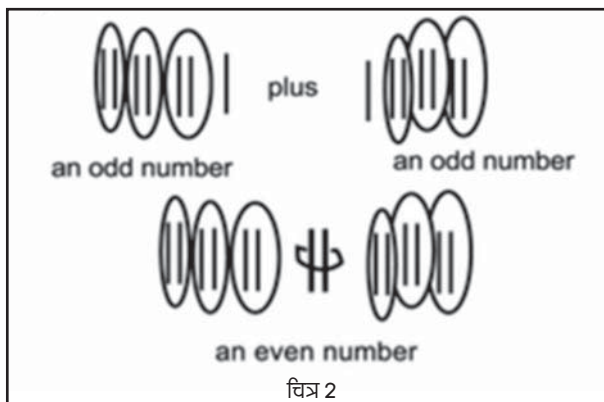
चित्र 2

विद्यार्थियों द्वारा उपरोक्त स्पष्टीकरण और प्रयत्न कक्षा में हो रही चर्चा की सार्थकता को बताता है। भले ही यह एक व्यवस्थित तार्किक प्रूफ़ नहीं है, पर एक अनन्त समूह की संख्याओं को सीमित संकेतों व शब्दों में सोचने और लिखने का उपयुक्त एवं सार्थक प्रयत्न दिखता है। इसपर पर्याप्त अभ्यास के पश्चात शिक्षक चर्चा को आगे ले जाते हुए गणितीय तर्क के विकास के नए आयाम खोल सकते हैं।

इससे यह लगता है कि इस क्षमता का विकास धीमी व लम्बी चलने वाली प्रक्रिया है और उसमें शिक्षक को बच्चों द्वारा ईजाद किए गए सिद्ध करने के नए तरीक़ों को समझना व परखना होगा और कक्षा में इस तरह के मौक़े कई बार अलग-अलग तरीक़े से देने की आवश्यकता है।

निष्कर्ष

गणितीय तर्क से कथन सिद्ध करना अत्यन्त आवश्यक होने के साथ-साथ पेचीदा भी है। अतः प्राथमिक कक्षाओं से ही इस दिशा में योजनाबद्ध और केन्द्रित प्रयत्न करने होंगे। पाठ्यपुस्तक व पाठ्यक्रम में किया गया बदलाव आवश्यक तो है, किन्तु पर्याप्त नहीं। इस बदलाव को कक्षा-कक्ष में सीखने-सिखाने का असरदार हिस्सा बनाने हेतु शिक्षकों की अहम भूमिका दिखती है।

यह अपेक्षित है कि शिक्षक गणितीय सोच के स्वरूप, स्वभाव और विकास के मार्ग को समझें और ध्यान दें। इसके अलावा, शोध के आधार पर गणितीय रीज़निंग के प्रचुर विकास के लिए बॉल एवं अन्य (2002) शिक्षकों के लिए तीन बिन्दु सुझाते हैं– पहला, ऐसे गणितीय टास्क देना जो तार्किक चिन्तन के मौक़े दें, जैसे– ऊपर चर्चित सिक्के वाला टास्क विद्यार्थियों को सम्भव जवाब खोजने के लिए प्रेरित करता है, पर सही या सटीक जवाब की अपेक्षा नहीं करता। दूसरा अहम बिन्दु है विद्यार्थियों

को गणितीय ज्ञान, जैसे– परिभाषा, अवधारणा, गणितीय भाषा, आदि, से अवगत कराना और फिर उनकी मदद करना ताकि वे इस गणितीय ज्ञान को सवालों, हल करने के तरीक़ों, गणित में नए विचारों और अवधारणाओं से जोड़ सकें। अन्त में, तीसरा अहम बिन्दु है कक्षा-कक्ष में तार्किक चर्चा और सवालों का एक ऐसा माहौल स्थापित करना जहाँ व्यक्तिगत सुझाव व सोच को सामूहिक चर्चा में जगह मिल सके एवं हर व्यक्ति एक दूसरे के सुझावों को सुने, रुचि ले, और उसपर प्रतिक्रियाओं के माध्यम से सम्मिलित हो सके। ज़ाहिर है, इसका असर पाठ्यक्रम की समझ व आकलन के तरीक़े पर भी पड़ेगा। और इस तरह के प्रयासों के लिए पर्याप्त समय व महत्त्व आवश्यक होगा।

सन्दर्भ

1. पाठ-5, 'पैटर्न', कक्षा 2, *गणित का जादू*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, प्रथम संस्करण 2007.
2. पाठ-2, 'लम्बा और छोटा', कक्षा 4, *गणित का जादू*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, प्रथम संस्करण 2007.
3. पाठ-3, 'संख्याओं के साथ खेलना', कक्षा 6, *गणित*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, प्रथम संस्करण 2006.
4. पाठ-16, 'संख्याओं के साथ खेलना', कक्षा 8, *गणित*, राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसन्धान और प्रशिक्षण परिषद्, प्रथम संस्करण 2008.
5. पाठ-6, 'गणितीय कथनों की जाँच', कक्षा 10, *गणित*, छत्तीसगढ़ पाठ्यपुस्तक निगम, रायपुर, 2021
6. Ball, D. L., Hoyles, C., Jahnke, H. N., & Movshovitz-Hadar, N. (2003). *The Teaching of proof*. arXiv preprint math/0305021.
7. Clements, D. H. & Battista, M. T. (1992). 'Geometry and Spatial Reasoning'. In D. Grouws, (Ed) Handbook of Research on Mathematics Teaching and Learning, 420–464. New York: Macmillan.
8. Healy, L. & Hoyles, C. (2000). 'From Explaining to Proving: A Study of Proof Conceptions in Algebra'. *Journal for Research in Mathematics Education*, 31,396–428.

तान्या सक्सेना शिक्षा में कार्यरत रही हैं। उन्होंने स्नातकोत्तर के दौरान शोध विज्ञान, तकनीकी, शिक्षा और गणित शिक्षण में शोध किया है। उनकी रुचि गणित शिक्षण और उसकी पेडागॉजी के शोध में है।

सम्पर्क : tanya.saxena26@gmail.com

उत्तर खोजना बनाम प्रश्न बनाना

सत्य नारायण

सवालों के उत्तर देना हमारी परम्परागत शिक्षा व्यवस्था और कक्षा शिक्षण का एक अभिन्न हिस्सा है। पाठ्यपुस्तकें इसके लिए योजनाबद्ध तरीक़े से गढ़ी और इस्तेमाल की जाती हैं। रटे-रटाए उत्तर देने के कौशल को आकलन और मूल्यांकन का आधार भी बनाया जाता है। और यही हमारी स्कूली शिक्षा का केन्द्र बिन्दु बना रहा है। किसी भी अवधारणा या मुद्दे को समझने, उसपर तर्क-वितर्क, उसे अन्य मुद्दों और अवधारणाओं के सन्दर्भ में समझने के लिए सिर्फ़ उत्तर खोज पाना, वो भी दिए गए प्रश्नों के लिए, काफ़ी नहीं है, बल्कि नए और तरह-तरह के प्रश्न गढ़ पाना भी ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया का अहम हिस्सा है। सत्य नारायण ने अपने इस आलेख में उत्तर खोजने की बजाय प्रश्न बनाने के कौशल पर किए गए कक्षा कार्य का अनुभव प्रस्तुत किया है। सं.

कक्षा में बच्चों के साथ शिक्षण कार्य करने के साथ-साथ मैं अलग-अलग स्कूल के शिक्षकों से भी मिलता हूँ। इस दौरान शिक्षकों के साथ बच्चों के बेहतर सीखने-सिखाने सम्बन्धी सम्भावनाओं पर चर्चा होती है। मैंने पाया कि ज़्यादातर शिक्षक बच्चों को डिकोडिंग (प्रिन्ट में लिखे हुए अक्षरों या शब्दों को ध्वनियों में बदलकर उच्चारित करने के कौशल) सिखाने पर ज़ोर देते हैं और जब बच्चा शब्दों या वाक्यों को सही तरीक़े से उच्चारित कर लेते हैं तो शिक्षक समेत हम सब ये मान लेते हैं कि बच्चे को पढ़ना आ गया, जबकि सही मायने में हम पढ़ना उसे कहते हैं जब बच्चा शब्दों या वाक्यों को उच्चारित करने के साथ-साथ उसका अर्थ भी समझ पाए। बच्चों के पढ़ना सीखने पर किए गए शोध, अर्थपूर्ण पढ़ना सिखाने के लिए मुख्यतः दो कौशलों पर ज़ोर देते हैं, यह दोनों कौशल साथ-साथ चलते हैं– पहला, डिकोडिंग या शब्दों की ध्वनियों को पहचान कर प्रवाहपूर्वक उच्चारित करने का कौशल; और दूसरा है, अर्थ निर्माण का कौशल अर्थात, अनुमान लगाना, अपने पूर्व अनुभवों को जोड़कर तथ्यों को देख पाना, किसी पाठ, पैराग्राफ़ या अलग-अलग वाक्य या हिस्से को देख-समझ कर नई अवधारणाएँ बना पाना। अधिकांश शाला अवलोकनों में हमने पाया है कि इस दूसरे कौशल को जो काफ़ी महत्त्वपूर्ण है शिक्षक टाल देते हैं और पहले कौशल पर

चित्र : हीरा धुर्वे

ज़रूरत से बहुत अधिक समय दिया जाता है, बल्कि यह कहना ज़्यादा सही होगा कि इसी पर ध्यान दिया जाता है। पढ़े हुए का अर्थ नहीं समझने के कारण कक्षा का माहौल काफ़ी उबाऊ और नीरस हो जाता है। अब प्रश्न ये उठता है कि उन बच्चों में अर्थ निर्माण का कौशल कैसे विकसित किया जाए, जो डिकोडिंग करना तो सीख गए हैं लेकिन अर्थ नहीं गढ़ पाते।

इस विचार को ज़मीनी स्तर पर देखने और प्रयोग करने के उद्देश्य से मार्च 2021 को मैं एक शासकीय प्राथमिक विद्यालय पहुँचा। यह विद्यालय रायपुर से बिलासपुर मार्ग पर लगभग 25 किलोमीटर दूर एक ग्रामीण अंचल में स्थित है और अधिकांश बच्चों के अभिभावक गाँव के ही समीप फ़ैक्ट्रियों में मज़दूरी करते हुए व कृषि कार्य कर अपने परिवार का भरण-पोषण करते हैं।

कक्षा में पहला दिन

मैंने चौथी कक्षा में प्रवेश किया जिसमें 22 छात्र-छात्राएँ बैठे हुए थे। मैंने बच्चों से उनके हाल-चाल पूछे। कुछ बच्चों ने उत्साह के साथ तो कुछ ने धीमी आवाज़ में मुझे जवाब दिया। तब मैंने बच्चों से पूछा कि क्या हम कोई गीत या कविता गाएँ? 4-5 बच्चों को छोड़कर सबने 'हाँ' कहा। मैंने सभी बच्चों के साथ कविता 'मालती के बच्चे को सर्दी लग गई' को हावभाव के साथ गाया और पूरा कक्षा-कक्ष ऊर्जा से भर गया। कविता गाते समय मेरा विशेष ध्यान उन बच्चों पर था, जो झिझक महसूस कर रहे थे। मैंने उन बच्चों को प्रोत्साहित किया"।

कविता पूरी हो जाने के बाद मैंने पूछा, "क्या आप लोगों के पास कक्षा चौथी की हिन्दी की पुस्तकें हैं?" सभी बच्चों ने एक स्वर में "हाँ" कहा। मैंने कहा, "पाठ्यपुस्तक से कोई भी एक पाठ खोल लीजिए।" कुछ बच्चों ने कक्षा चौथी का पाठ 4 'साहसी रूपा' खोला तो कुछ ने पाठ 11 'जीत खेल भावना की' तो अन्य दो-तीन बच्चों ने दूसरा पाठ खोला। अंजनी की ओर इशारा करते हुए मैंने पूछा, "मुझे बताओ कि पाठ के अन्त में कितने प्रश्न दिए गए हैं?"

चित्र : हीरा धुर्वे

अंजनी ने एक-दो पन्ने पलटने के बाद कहा, "सर, पाठ 4 में 7 प्रश्न दिए हुए हैं।" फिर मैंने योगिता से पूछा, "क्या तुम पहला प्रश्न पढ़ना चाहोगी?" योगिता ने पहला प्रश्न पढ़ा : 'कहानी पढ़कर रूपा के बारे में अपने शब्दों में लिखो?' दूसरा प्रश्न पढ़ने के लिए मैंने लक्ष्य को कहा। लक्ष्य ने दूसरा प्रश्न पढ़ा : 'रूपा को साहसी क्यों कहा गया है?' उसके बाद मैंने क्रमशः बच्चों से सभी सात प्रश्न पढ़ने के लिए कहा। फिर बच्चों से पूछा, "इस तरह किसी पाठ में दिए गए प्रश्नों के अलावा तुम लोग कितने प्रश्न बना सकते हो?" जवाब में केवल 3 बच्चों ने कहा, "सर, तीन-चार प्रश्न और बना सकते हैं।" मैंने बच्चों से कहा, "आप लोग एक ही पाठ से 20 से लेकर 100 से भी ज़्यादा प्रश्न बना सकते हो।" कक्षा के लगभग सभी बच्चे आश्चर्यचकित होकर मुझे देखने लगे कि ऐसे कैसे बना सकते हैं? मैंने कहा, "मैं अभी आपको करके दिखाता हूँ।"

सबसे पहले मैंने श्यामपट्ट पर लिखा : 'राम और रहीम दोनों अच्छे मित्र थे। आज सुबह 10:00 बजे दोनों ने गायत्री मन्दिर के सामने एक सफ़ेद घोड़ा देखा' (गायत्री मन्दिर इसलिए लिखा क्योंकि उनके गाँव के पास में ही गायत्री मन्दिर था)।

उसके बाद मैंने बच्चों से कहा, "अब मैं आप लोगों से उपर्युक्त वाक्यों से प्रश्न बनाकर पूछूँगा। जिनको पता होगा वो अपना हाथ ऊपर करेंगे और जिनसे पूछूँगा उत्तर केवल वही बताएँगे।" मैंने बच्चों से पहला प्रश्न पूछा, "राम और रहीम कौन थे?" प्रश्न सुनते ही एक के बाद एक कक्षा के सारे बच्चों ने अपना हाथ ऊपर किया। मैंने चेहरे पर मुस्कान के साथ सहज भाव से उस बच्चे को उत्तर बताने के लिए कहा जिसने सबसे आख़िरी में हाथ उठाया था। उस बच्चे ने धीमी आवाज़ में कहा, "राम और रहीम दोनों अच्छे मित्र थे।" मैंने सभी बच्चों को उसके लिए तालियाँ बजाने को कहा। दूसरा प्रश्न एक ऐसे बच्चे (राहुल) की ओर इशारा करते हुए पूछा, जो मुझे लगा कि कुछ कहना या बताना तो चाह रहा है, लेकिन बताने में अभी भी झिझक महसूस कर रहा है। मैंने उससे पूछा, "कौन अच्छे मित्र थे?" मैंने राहुल की तरफ़ मुस्कुराते हुए दोबारा पूछा, "राहुल, कौन अच्छे मित्र थे?" उसने धीरे से कहा, "राम और रहीम।" मैंने सभी बच्चों को उसके लिए भी तालियाँ बजाने को कहा। इसके बाद बच्चों से कहा कि श्यामपट्ट पर लिखे हुए वाक्यों से मैंने दो प्रश्न बनाकर बताए। इस वाक्य से और कौन-कौन से प्रश्न बन सकते हैं? तभी योगिता नाम की छात्रा ने कहा, "सर, इसमें एक और प्रश्न बन सकता है।" योगिता ने तीसरा प्रश्न बनाते हुए कहा, "10:00 बजे गायत्री मन्दिर के सामने राम और रहीम ने क्या देखा?" मैंने योगिता को कहा, आपने बहुत बढ़िया प्रश्न बनाया।" इसके बाद मैंने सारे बच्चों की हौसला अफ़ज़ाई करते हुए ज़्यादा-से-ज़्यादा प्रश्न बनाने के लिए प्रोत्साहित किया। तभी सामने बैठे लक्ष्य ने कहा, "सर, एक प्रश्न और बन सकता है।" उसने चौथा प्रश्न बनाते हुए कहा, "गायत्री मन्दिर के पास किस-किस ने घोड़ा देखा?" इसी तरह एक के बाद एक प्रश्न आने का सिलसिला जारी था। आकाश ने पाँचवाँ प्रश्न बनाते हुए कहा, "घोड़े के सामने क्या था?" आकाश का यह प्रश्न मुझे अजीब-सा

चित्र : हीरा धुर्वे

लगा क्योंकि प्रश्न का उत्तर मुझे ख़ुद समझ नहीं आ रहा था। इसलिए मैंने उसी बच्चे से पूछा, "बेटा, घोड़े के सामने क्या था? इस वाक्य में तो इस प्रश्न का उत्तर ही नहीं है।" तब बच्चे ने कहा, "गायत्री मन्दिर के सामने घोड़ा था तो घोड़े के सामने गायत्री मन्दिर हो सकता है।" वास्तव में यह बात मेरे लिए बहुत रोचक थी। आकाश के द्वारा उत्तर बताने पर कक्षा के सारे बच्चों ने तालियाँ बजाकर उसकी तार्किक सोच का सम्मान किया।

अल्का ने छठवाँ प्रश्न बनाते हुए कहा, "कौन-से मन्दिर के सामने दोनों मित्रों ने घोड़ा देखा?" इसी तरह सातवाँ प्रश्न आया कि गायत्री मन्दिर के सामने कौन-कौन थे? आठवाँ प्रश्न आया कि गायत्री मन्दिर के सामने कितने सफ़ेद रंग के घोड़े थे? नवाँ प्रश्न आया कि राम और रहीम ने कौन-से रंग का घोड़ा देखा? इस दौरान मैं हर बार नया प्रश्न आने पर बच्चों को प्रोत्साहित करता रहा। उनके लिए पूरी क्लास में तालियाँ बजने लगीं और इसी तरह दसवाँ प्रश्न आया, किसने सफ़ेद रंग का घोड़ा देखा? बच्चों द्वारा बनाए गए सभी प्रश्नों को हम एक-एक करके श्यामपट्ट पर लिखते गए। इसके बाद मुझे लगा कि बच्चे प्रश्न निर्माण सम्बन्धी कौशल पर अपनी समझ बना कर चुके हैं। कक्षा के सारे बच्चे बहुत ही सक्रिय और उत्साहित नज़र आने लगे। उनको कक्षा-कक्ष का यह वातावरण बहुत सहज लगने लगा, क्योंकि उनकी भावनाओं और अनुभवों को यहाँ पूर्णतः स्वीकृति मिल रही थी।

बच्चों के सामने अगली चुनौती रखना

अब मैंने बच्चों को चौथी कक्षा का पाठ 11 'जीत खेल भावना की' निकालने के लिए कहा। बच्चों ने फटाफट पन्ने पलटते हुए पाठ खोल लिया। मैंने बच्चों से पूछा, "पाठ के अन्त में दिए गए इन सातों प्रश्नों के अलावा भी क्या हम इसी तरह के अन्य प्रश्न बना सकते हैं?" अब लगभग सभी बच्चों ने कहा, "हाँ सर, हम कई प्रश्न बना सकते हैं", तब मैंने बच्चों से एक-एक करके पूछना शुरू किया। लक्ष्य तुम कितने प्रश्न बना सकते हो? लक्ष्य ने कहा, "सर, मैं इसी पाठ से 40-50 से भी ज़्यादा प्रश्न बना सकता हूँ।" इसी दौरान प्रभा ने पूर्व में अभ्यास कराए गए वाक्य की ओर इशारा करते हुए कहा, "सर, अभी हम लोग जिस प्रकार प्रश्न बना रहे थे, क्या उसी प्रकार से प्रश्न बनाने हैं?" मैंने कहा, "बिलकुल प्रभा! उसी तरह प्रश्न बनाने हैं।" तब मैंने देखा बच्चों के अन्दर उत्साह भर गया था और उन्होंने एक के बाद एक प्रश्न बनाना शुरू कर दिया, परन्तु इतने में छुट्टी का समय हो गया था। बच्चों ने जो सवाल बनाए उनके कुछ उदाहरण बॉक्स में दिए गए हैं। इन सवालों के प्रकार और पूछने के उद्देश्य अलग-अलग हैं।

- किसके ऑफ़िस के आगे भीड़ लगी हुई थी?
- सुरेश को पट्टी लगवाने कहाँ ले जाया गया?
- सुरेश का सिर कैसे फूटा?
- सुरेश और महेश के बीच झगड़ा कब हुआ था?
- सुरेश किसमें हमेशा फ़र्स्ट आता था?
- किसको अस्पताल ले जाकर पट्टी कराई गई?
- महेश की आँखों से आँसू क्यों निकल पड़े?
- महेश ने सुरेश को क्यों मारा होगा?
- सुरेश ने प्रधानाध्यापक से महेश की शिकायत क्यों नहीं की, इसके पीछे क्या कारण हो सकता है?
- सुरेश का महेश के प्रति व्यवहार आपको कैसा लगा?
- कहानी का सारांश बताइए ?
- क्या सुरेश ने महेश को माफ़ करके सही किया?
- यदि आप सुरेश की जगह होते तो क्या करते?

कुछ सवाल तथ्य या जानकारी पाने के लिए हैं, तो कुछ अनुमान लगाकर जवाब देने के लिए हैं, तो कुछ सवाल तार्किक आधार पर जवाब देने से जुड़े हैं, तो कुछ समझाने और कहानी का सार संक्षेप बताने आदि पर आधारित हैं।

छुट्टी की घण्टी बजने से पहले हमने बच्चों के बीच यह प्रस्ताव रखा कि कल जब आप लोग स्कूल आएँगे तो क्या स्वयं ज़्यादा-से-ज़्यादा प्रश्न बनाकर लाना चाहेंगे? लगभग सभी बच्चों ने उत्साह के साथ एक स्वर में कहा, "हाँ सर, हम लोग घर से प्रश्न बनाकर लाएँगे।" मैंने बच्चों को चुनौती देते हुए कहा, "देखते हैं सबसे ज़्यादा प्रश्न कौन और कितने बनाकर लाता है।" और इस तरह हमने छुट्टी की घण्टी बजा दी। लगभग सभी बच्चे बहुत ही उत्साह से यह कहते हुए, कि मैं 70 से भी ज़्यादा प्रश्न बना दूँगा, कि मैं तो 100 से भी ज़्यादा प्रश्न बना दूँगा, घर की तरफ़ चल पड़े।

कक्षा में दूसरा दिन

दूसरे दिन जब लगभग सारे विद्यार्थी कक्षा में आए तो वे एक दूसरे को अपने-अपने प्रश्न बताने लगे। कक्षा की शुरुआत *'मेरे मामा जी के घर में इक छोटी सी बिलैया रे'* नामक कविता को हावभाव के साथ गाते हुए, की गई। बच्चों का उत्साह और आपस में बातचीत ये समझने के लिए काफ़ी था कि बच्चों ने प्रश्न बनाए हैं और बनाते समय उनको काफ़ी मज़ा भी आया है।

पलक ने 280 प्रश्न बनाए और यशोदा ने 164 प्रश्न बनाए थे। इन दोनों के अलावा 4 अन्य बच्चे भी एक ही पाठ से 100 से अधिक प्रश्न बनाकर लाए थे। मंजू ने 36 प्रश्न बनाए थे। पर यहाँ यह महत्त्वपूर्ण नहीं था कि किसने कितने प्रश्न बनाए। मुख्य बात यह थी कि सभी बच्चों ने ख़ुद के प्रयासों से बनाए थे, और ये पाठ्यपुस्तक के प्रश्नों से अलग भी थे। इस दौरान कक्षा का माहौल भी काफ़ी सहज और सकारात्मक ऊर्जा से भरा हुआ था।

बच्चों को दो समूहों में बाँटना

इसके बाद हमने कक्षा के बच्चों को दो समूहों में बाँट दिया और कहा कि अब आप एक दूसरे समूह से आपके द्वारा बनाए गए प्रश्नों को बिना देखे पूछेंगे। पहला समूह एक प्रश्न दूसरे समूह से पूछेगा और दूसरा समूह एक प्रश्न पहले से। इस प्रकार पहले समूह ने दूसरे से और दूसरे ने पहले समूह से 3 राउण्ड प्रश्न पूछे। उसके बाद छात्रा प्रिया ने सुझाव दिया

चित्र : हीरा धुर्वे

कि सर, ऐसा करते हैं हम लोग पहले 5 प्रश्न समूह 'बी' से पूछेंगे, उसके बाद समूह 'बी' पाँच प्रश्न हम समूह 'ए' वालों से पूछेगा। यहाँ मैंने देखा कि बच्चों के अन्दर डर, भय या झिझक की जगह सक्रियता, उत्साह और स्वयं करके सीखने की भावना एवं आत्मविश्वास ने ले ली थी। प्रिया द्वारा दिए गए सुझाव को सबके सामने रखते हुए मैंने पूछा कि क्या हमें प्रिया का सुझाव मान लेना चाहिए? लगभग सारे बच्चों ने एक स्वर में हामी भर दी। फिर समूह 'ए' के बच्चों ने लगातार पाँच प्रश्न समूह 'बी' से पूछे और समूह 'बी' ने भी वही किया। इस दौरान इस

बात का विशेष ध्यान रखा कि समूह के सभी बच्चों को प्रश्न पूछने एवं उत्तर देने के बराबर अवसर मिलें।

इसी तरह एक दूसरे के समूह से जब प्रश्न पूछने और उत्तर देने की प्रक्रिया पूरी हो गई तब बच्चे बहुत उत्साह के साथ बोलने लगे कि सर, अब हम पाठ 12 'कुकू और भूरी' से इसी तरह प्रश्न बनाएँगे और समूह में बैठकर एक दूसरे से प्रश्न करेंगे। एक अन्य बच्चे ने कहा कि सर, इस बार हम पहले से भी ज़्यादा प्रश्न बनाएँगे।

हम देख सकते हैं कि इन पूरी प्रक्रियाओं में बच्चे काफ़ी उत्साहित और आत्मविश्वास से लबरेज़ दिख रहे हैं। हर एक बच्चा अपनी क्षमतानुसार सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का अभिन्न हिस्सा बना हुआ है।

हम सब यह अच्छी तरह से जानते हैं कि वाक्य या अनुच्छेद को बिना समझे प्रश्न निर्माण नहीं किया जा सकता। अतः उपर्युक्त गतिविधि में बच्चों के द्वारा अपनी क्षमतानुसार पूरे पाठ से प्रश्नों का निर्माण करना दिखाता है कि बच्चों ने इस प्रक्रिया में वाक्य या अनुच्छेद को डिकोड मात्र नहीं किया है, बल्कि एक ही वाक्य को कई तरह से देखने व समझने के साथ ही अर्थ निर्माण के कौशलों का भी प्रयोग किया है। यहाँ हमने बच्चों को स्वयं करके सीखने के लिए प्रेरित किया और ज़रूरत पड़ने पर एक मार्गदर्शक, सुविधादाता या मित्र की तरह काम किया, जिसकी पैरवी *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* भी करती है। इसके अलावा, एक और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि इस कक्षा में बच्चे स्वयं चुनौती ले रहे हैं और उसको पूरा करने के लिए योजना बना रहे हैं। कक्षा के संचालन के लिए बच्चे नियम बना रहे हैं व उसका पालन कर भी रहे हैं।

क्या इस प्रकार की गतिविधि से बच्चे के अन्दर स्वयं करके सीखने का कौशल विकसित नहीं होगा? क्या यह बाल-केन्द्रित और प्रजातांत्रिक कक्षा-कक्ष का एक अच्छा उदाहरण नहीं है, जिसकी पैरवी हमेशा शिक्षाविद् एवं शिक्षा मनोवैज्ञानिक भी करते हैं? शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 के अनुसार हरेक बच्चे को गुणवत्तापूर्ण शिक्षा पाने का अधिकार है। ऐसे में क्या हमें कक्षा के कुछ होशियार बच्चों पर ही ध्यान देने की बजाय अपनी शिक्षण प्रक्रिया में बदलाव लाकर ऐसी प्रक्रिया का चुनाव नहीं करना चाहिए, जिसमें हर एक बच्चे की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित हो? क्या हमें बच्चों को एक-एक चीज़ बताने की बजाय स्वयं करके सीखने के लिए प्रेरित और सहज वातावरण निर्मित नहीं करना चाहिए, जहाँ शिक्षक की भूमिका केवल और केवल एक सहजकर्ता, मार्गदर्शक या मित्र की हो? क्या बच्चों को गृहकार्य देने की बजाय चुनौती नहीं देना चाहिए क्योंकि गृहकार्य बच्चों पर शिक्षकों के द्वारा थोपा गया एक काम होता है, जिसे ज़्यादातर बच्चे समस्या के रूप में लेते हैं, जबकि चुनौती बच्चे के द्वारा स्वयं स्वीकार किया हुआ अवसर होता है, जिसे पूरा करने के लिए वह अपनी पूरी ऊर्जा लगा देता है? मेरी आधारभूत समझ ये कहती है कि इसपर हमें ज़रूर विचार करना चाहिए।

सत्य नारायण यादव आठ वर्ष से शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। आपने सहायक प्राध्यापक के रूप में अटल बिहारी वाजपेयी विश्वविद्यालय, बिलासपुर (छत्तीसगढ़) में शिक्षा मनोविज्ञान का अध्यापन कार्य किया है। विगत तीन वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, रायपुर में भाषा के रिसोर्स पर्सन के रूप में कार्य कर रहे हैं।

सम्पर्क : satya.yadav@azimpremjifoundation.org

मैडम, मेरा जवाब सही है!

मीनू पालीवाल

यह लेख बच्चों के सवालों के प्रति वयस्कों के नज़रिए के बारे में बात करता है। लेखिका भाषा और गणित की कक्षा के कुछ ठोस उदाहरण देते हुए बताती हैं कि वयस्क बच्चों के सवालों, उनके विचारों को तवज्जो नहीं देते हैं। बच्चों के सवाल उनके अनुभवों और अवलोकनों को भी बयान करते हैं। लेकिन कक्षा में इन सब की अनदेखी ही होती है। वे रेखांकित करती हैं कि सवाल पूछना सीखने-सिखाने की प्रक्रिया और ज्ञान निर्माण की प्रक्रिया का स्वाभाविक और अहम हिस्सा है और कक्षा में इनकी जगह होनी ही चाहिए। सं.

कई बार बच्चे कुछ सवालों के ऐसे जवाब देते हैं जो शिक्षक के दृष्टिकोण से सही नहीं होते। शिक्षक और बच्चों के दृष्टिकोण के द्वन्द्व में जीत शिक्षक के दृष्टिकोण की होती है। मैं कई बार प्रशिक्षणों में कहती हूँ कि बच्चों ने यदि ग़लत जवाब भी दिया है तो उसे तुरन्त ग़लत करार मत दीजिए। क्या आपके अनुभव में आपने आमतौर पर ये देखा है कि ग़लती होते ही तुरन्त रोक कर सुधार करवाया जाता है? बचपन से ही हम इस सोच के आदी हो जाते हैं कि बड़े हमेशा सही बोलते हैं। उन्हें ज़्यादा पता होता है। बड़ों से वाद-विवाद करना तहज़ीब के विरुद्ध है। इस तरह की सोच से दो तरफ़ा नुक़सान होता है। एक तरफ़, बच्चे ये समझने लगते हैं कि उन्होंने सवाल सही हल किया है या नहीं, इसकी जाँच के लिए शिक्षक के पास ही जाना होगा। दूसरा, शिक्षक भी बिना बच्चों के उत्तरों पर विचार किए उन्हें ग़लत कह देते हैं क्योंकि हम बड़े हैं, हम तो बच्चों से कहीं ज़्यादा जानते हैं, यह सोच हमारे अन्दर बहुत गहरी हो जाती है।

ये सोच हम सभी के अन्दर कितनी गहराई से बस गई है और इसने सीखने-सिखाने की प्रक्रिया का कितना नुक़सान किया है उसके लिए मैं कुछ उदाहरण रख रही हूँ।

उदाहरण 1

मैं कक्षा 5वीं में लोमड़ी और कछुए की कहानी सुना रही थी। कहानी में कछुआ और लोमड़ी जंगल में टहल रहे होते हैं। अचानक शेर आ जाता है। शेर को देखते ही लोमड़ी भागकर छुप जाती है, पर कछुआ भाग नहीं पाता और अपने खोल के अन्दर चला जाता है। शेर कछुए की खोल पर अपने पंजे से बार-बार वार करता है, पर कछुए की खोल पर कोई असर नहीं होता। लोमड़ी दूर से यह देख रही होती है। लोमड़ी कछुए की जान बचाने के लिए शेर के पास आती है और कहती है कि अरे शेर साहब, इस जानवर का खोल बहुत मोटा है आप इसे पानी में डाल दीजिए, थोड़ी देर में खोल नरम हो जाएगा, फिर आप आराम से इसे खा लीजिएगा। शेर मान जाता है और जैसे ही कछुए को पानी में डालता है, कछुआ जल्दी से तैरकर दूर निकल जाता है।

इस कहानी के बाद मैंने बच्चों से प्रश्न पूछा। कछुए को शेर से बचाने का और क्या तरीक़ा हो

सकता था? एक बच्चा बोला कि मैडम, लोमड़ी शेर के पास जाती और कहती कि अरे, यह कोई खाने की चीज़ थोड़ी न है, यह तो खेलने की चीज़ है। चलो, हम इससे खेलते हैं। बच्चे के इस उत्तर पर मैंने कहा कि अरे, यह कैसा उत्तर है। यदि लोमड़ी शेर से इतनी देर बातचीत करेगी तो वो लोमड़ी को ही खा जाएगा। इतना ही नहीं, मैंने कक्षा के बच्चों से पूछा कि शेर लोमड़ी को खा जाएगा या नहीं? सभी बच्चे बोले, हाँ, खा जाएगा। अब सवाल ही ऐसा पूछा था मैंने, जिसमें उत्तर 'हाँ' ही स्वीकारा जाएगा। बच्चे शिक्षक के सवाल पूछने के तरीक़े से ही समझ जाते हैं कि कहाँ 'हाँ' बोलना है कहाँ 'नहीं'।

अब यदि ध्यान दिया जाए तो आप देख सकते हैं कि जो कहानी मैंने सुनाई थी उसमें भी लोमड़ी शेर से बातचीत करती है और कछुए को पानी में डालने का सुझाव देती है। कहानी में भी लोमड़ी शेर से बातचीत कर रही है! इसके बावजूद मैंने बच्चे को 'उसका उत्तर ग़लत है' कहा और उसके लिए अपना तर्क भी दिया। काश, कक्षा में कोई बच्चा खड़ा होकर कहता कि मैडम, कहानी में भी तो लोमड़ी शेर से बात कर रही है तो मेरे दोस्त का उत्तर ग़लत कैसे हो सकता है? काश, हम बड़े, बच्चों को 'बड़ों की बात मानें' पर ज़ोर देने की बजाय सुनी और पढ़ी गई बातों को बिना विचारे स्वीकार नहीं करने के लिए कहते आए होते और बच्चों में उनका अपना तर्क रखने का आत्मविश्वास जगा पाते!

स्कूल से लौटने के बाद मेरे मन में ऊपर लिखी बातें आईं और मुझे बच्चे के उत्तर को ग़लत करार देने पर ग्लानि हुई। यह क़िस्सा जो मेरे साथ हुआ, ऐसा बहुत-से मौक़ों पर कई और शिक्षकों व बच्चों के साथ ज़रूर होता होगा। हमें इसके प्रति सचेत रहने की ज़रूरत है।

उदाहरण 2

परीक्षा पत्र में 5 पालतू जानवरों के नाम लिखने को कहा गया था। एक बच्ची ने पालतू जानवरों के नाम में बिल्ली लिखा था। शिक्षिका ने उससे कहा कि बिल्ली पालतू जानवर में नहीं आती और बात वहीं ख़त्म हो गई। किसी बच्चे ने यह भी नहीं पूछा कि बिल्ली पालतू जानवर क्यों नहीं है? वह बच्ची चुप हो गई और अपनी बग़ल में बैठी दोस्त से बोली कि मेरे पास तो घर में बिल्ली है। बच्चे अपने परिवेश और अनुभव के आधार पर उत्तर देते हैं। हम बच्चों को शिक्षा के द्वारा सोचना सिखा रहे हैं। और यह हम अच्छी तरह जानते हैं कि अपने अनुभव से बिलकुल अलग विषयवस्तु के द्वारा सीखना सम्भव नहीं है। हमें यहाँ बच्ची को अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर दिए गए उत्तर पर प्रोत्साहित करना चाहिए और उससे पूछना चाहिए कि उसे क्यों लगता है कि बिल्ली एक पालतू जानवर है। इससे उस बच्ची को अपनी बात के लिए तर्क देने का मौक़ा मिलेगा। जब बच्ची अपने तर्क देगी तो कक्षा के दूसरे बच्चे उन तर्कों को सही मानते हैं या ग़लत, इसपर चिन्तन होगा और यह असल मायने में सीखना हो रहा होगा क्योंकि हमारा उद्देश्य केवल पालतू जानवरों के नाम याद करवाना नहीं है। लेकिन दुःख की बात है कि परीक्षा में प्रश्न यही आता है कि 4 पालतू जानवरों के नाम लिखिए। हमें सचेत रहना होगा कि पालतू जानवर सिर्फ़ एक विषयवस्तु है, जिसके द्वारा हम बच्चों में तर्क, सम्प्रेषण, अनुमान और सुनने के कौशल का विकास करना चाहते हैं। हमें कक्षा प्रक्रिया को हमेशा शिक्षा के लक्ष्यों के साथ जोड़कर देखने की ज़रूरत है। हमें लोकतंत्र में ऐसे नागरिक चाहिए जो अपना स्वतंत्र मत बना पाएँ। यदि कक्षा में शिक्षक द्वारा दिए गए उत्तर को अन्तिम उत्तर के तौर पर बच्चों द्वारा स्वीकारने की पद्धति लागू रहेगी तो हम कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि आगे चलकर हमारे बच्चे एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में योगदान दे पाएँगे।

उदाहरण 3

परीक्षा पत्र में 5 पालतू जानवरों के नाम लिखने को कहा गया था। एक बच्ची ने उसके

उत्तर में मछली लिखा। शिक्षिका ने उससे कहा कि मछली पालतू जानवर नहीं होती। शिक्षिका ने अपना तर्क दिया कि मेरे घर में भी कछुआ है, परन्तु मछली, कछुआ ये पालतू जानवर की श्रेणी में नहीं आते क्योंकि ये ज़िन्दा रहने के लिए इंसानों पर निर्भर नहीं हैं। गाय और कुत्ता, इनको अगर जंगल में छोड़ देंगे तो ये जानवर मर जाएँगे। ये जानवर अपने जीवन के लिए मनुष्यों पर निर्भर होते हैं इसीलिए इनको पालतू जानवर कहते हैं।

शिक्षिका ने अपने उत्तर के लिए तर्क दिया, ये अच्छी बात है। एक नज़रिए से बात सही भी लगती है, परन्तु तर्क पर और सोच-विचार करने की ज़रूरत है। मैं भी सोचती हूँ कि लोग घर में एक्वेरियम (aquarium) क्यों रखते हैं। न तो मछलियाँ आवाज़ निकालती हैं, न हमारी तरफ़ देखती हैं। हाँ, सुन्दर ज़रूर दिखती हैं। पर सुन्दर सजावट की वस्तु तो और भी बहुत कुछ हो सकती हैं, फिर जीवित चीज़ क्यों रखना जिसको खिलाना पड़े, पानी बदलने का काम करना पड़े।

हमारे समाज में 'बड़े लोग सब जानते हैं' यह सोच गहरी है, जिसमें यदि वह व्यक्ति शिक्षक है तो फिर उसे सब पता होना ही चाहिए। इसी वजह से शिक्षकों की या समाज में उम्र में बड़े लोगों की ज्ञान सत्ता स्थापित हुई है और उसपर सवाल करने को बदतमीज़ी समझा जाता है। यह सोच दो तरफ़ा नुक़सान करती है। बच्चे, बड़ों की बातों पर प्रश्न नहीं करते और बड़े, बच्चों द्वारा किए गए प्रश्नों पर विचार नहीं करते। बच्चों के प्रश्नों के उत्तर न पता होना एक शर्मिन्दगी की बात समझी जाती है और इससे बचने के लिए हम बड़े कई बार कई तरीक़े भी अपनाते हैं, जैसे– अभी तुम नहीं समझ पाओगे, आगे की कक्षा में इस बात को पढ़ेंगे, ये कैसा अजीब सवाल है, अभी समय नहीं है, या सवालों पर ध्यान ही नहीं देना, उन्हें दरकिनार करना। हमें अब इस सोच पर भी काम करना है कि शिक्षक इस बात को स्वयं भी और बच्चों के सामने भी सहज रूप से स्वीकार करें कि ज़रूरी नहीं है कि उन्हें (शिक्षक) हर सवाल का जवाब पता हो। ऐसे प्रश्न जिनके उत्तर शिक्षक को भी नहीं पता, उनपर शिक्षक ये प्रति-उत्तर दे सकें कि इस प्रश्न का उत्तर तो मुझे भी नहीं पता! चलो, हम सब मिलकर इसका उत्तर ढूँढ़ते हैं। इस प्रक्रिया को आम सहमति में लाना होगा।

कक्षा के बाद

मैंने मैडम से कहा कि मुझे लगता है मछली और कछुआ भी पालतू जानवर हो सकते हैं। हम बाज़ार में पालतू जानवर की दुकान (पेट शॉप) में मछली देखते हैं। आपने अपने कछुए के बारे में बताया था कि जब आप कुछ दिन घर पर नहीं होते और बाद में लौटते हैं तो कछुआ ज़ोर-ज़ोर से कुछ आवाज़ निकालता है। इसका मतलब शायद वो आपके लौटने पर ख़ुश हो रहा होता होगा। आपने पालतू जानवर होने की जो परिभाषा दी, उसके मुताबिक़ बहुत-से जानवर, जैसे– घोड़ा, मछली, आदि, पालतू जानवर नहीं रह जाते। पर आमतौर पर मछली और घोड़ों को पालतू जानवर माना जाता है। मुझे लगता है कि पालतू जानवर की परिभाषा शायद यह हो सकती है, "जिन जानवरों को इंसान अपने साहचर्य (companionship) और मनोरंजन के लिए रखता है वो पालतू जानवर होते हैं।"

उदाहरण 4

बच्चों की ग़लतियाँ भी शिक्षक के लिए सवाल हैं। आइए, गणित के एक उदाहरण से इसको समझते हैं।

अगले पेज के चित्र 1 में बच्चे ने जोड़ के 4 सवाल हल किए हैं। आप देख सकते हैं कि 4 में से 3 सवाल एकदम सही हल किए गए हैं। परन्तु बच्चा कितना समझा है, यह आपको ग़लत किए गए सवाल को देखकर पता चलता है। बातचीत की प्रक्रिया, जो किया जा रहा है वह क्यों किया जा रहा है, इसकी स्पष्टता न होना किस हद तक बच्चे को बिना सोचे-समझे शिक्षक द्वारा
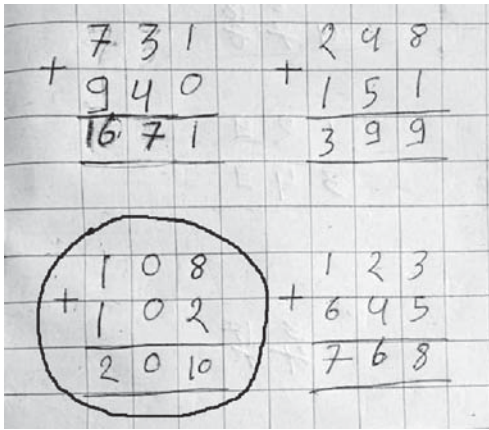
चित्र 1

बताए निर्देश को तकनीकी तौर पर करते रहने के लिए बाध्य करता है, वह हम चित्र 2 देखकर समझ सकते हैं। चित्र 1 में यदि बच्चा यह पूछ पाता कि 8 और 2 को जोड़कर जब 10 आता है फिर 1 बाजू वाली लाइन में क्यों लिखते हैं। और इसका जवाब सिर्फ़ ये न दिया जाता कि 1 दहाई है इसलिए उसको दहाई के स्थान पर लिखना है। यदि हम कॉपी पर और साथ-साथ तीली बण्डल या डाइन (dienes) ब्लॉक के साथ में जोड़ कर रहे होंगे तब हमें बच्चों को यह बताने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी कि 1 दहाई के स्थान पर क्यों लिखा जा रहा है।

तीली बण्डल या डाइन ब्लॉक के साथ जब बच्चा काम कर रहा होगा तब उसे दहाई का
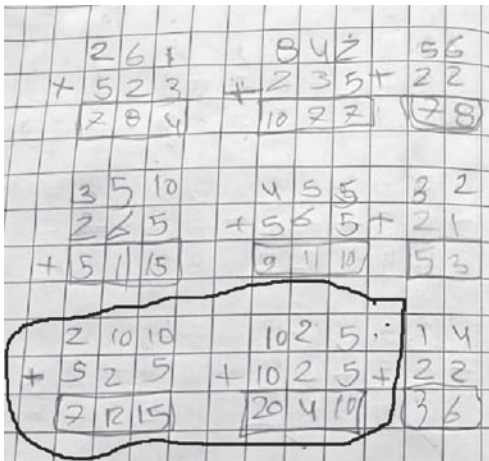
चित्र 2
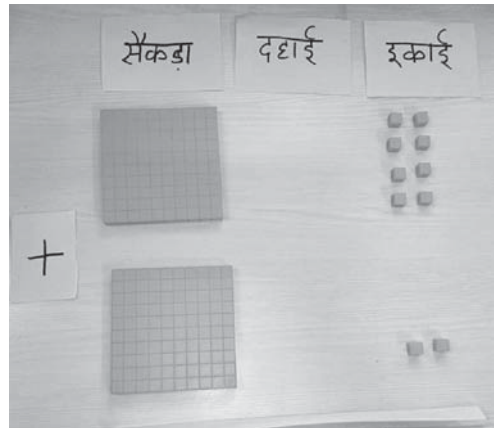
चित्र 3

स्थान ख़ाली दिखाई देगा और संख्या में उस जगह शून्य दिखेगा। इसी प्रकार, दहाई के स्थान पर 1 क्यों लिखा है यह बच्चा देख पाएगा। बच्चे को संख्या समझने में मदद मिलेगी। चित्र 3 और 4 देखकर बच्चे को समझ आएगा कि 108 का 1, 100 को दर्शाता है और 210 का 1, 10 को दर्शाता है।
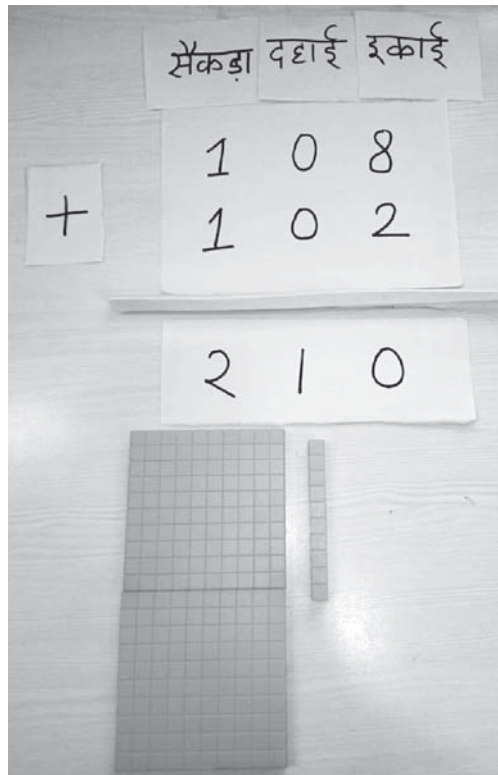
चित्र 4

समेकन

कक्षा में यदि शिक्षक के द्वारा सिर्फ़ निर्देश दिए जाएँगे और उनके पालन की अपेक्षा की जाएगी तो बच्चों में प्रश्न पूछने का कौशल विकसित नहीं हो पाएगा।

हमें बच्चों को हमारी कही गई बातों पर सोचने का आग्रह करना चाहिए बजाय कि उन्हें सही मान लेने का। आख़िरकार, हम शिक्षा के द्वारा विचार करना ही तो सीख रहे हैं। ऊपर वाली बातचीत में यह महत्त्वपूर्ण नहीं है कि मछली पालतू जानवर है या नहीं। महत्त्वपूर्ण यह है कि पालतू जानवर के लिए हमें कौन-से पैमाने रखने की ज़रूरत है। फिर कौन-कौन से जानवर उन पैमानों में इस पार या उस पार होते हैं। पैमाने बनाने की प्रक्रिया, विभिन्न जानवरों की उन पैमानों पर तुलना करना और फिर निर्णय लेना कि फ़लाँ जानवर पालतू है या नहीं। ये पूरी प्रक्रिया असल में शिक्षा है। विषयवस्तु कुछ और भी हो सकती है, जैसे– हम ये निर्णय कैसे लेंगे क्या जीवित है, क्या मृत। यदि हमने पैमाना बनाया कि जीवित चीज़ें गति करती हैं तब पेड़ तो मृत वस्तु हो जाएँगे। इसीलिए सिर्फ़ अन्तिम उत्तर महत्त्वपूर्ण नहीं है। उत्तर तक पहुँचने की प्रक्रिया ज़्यादा महत्त्वपूर्ण है, और उसके लिए बातचीत बहुत महत्त्वपूर्ण है।

मीनू पालीवाल अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में 2017 से काम कर रही हैं। आप फ़ेलोशिप प्रोग्राम के ज़रिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से जुड़ीं। इससे पहले उन्होंने 6 वर्ष आईसीआईसीआई बैंक में काम किया। वे अपने मन में आने वाले सवालों की तलाश में शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया से जुड़ीं। प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों के साथ काम करना उन्हें अच्छा लगता है।

सम्पर्क : meenu.paliwal@azimpremjifoundation.org

बच्चे, रेखा और कोण

अंकित सिंह

गणित में ज्यामितीय आकृतियों की अवधारणाएँ जटिल तो हैं लेकिन हमारे आसपास का भौतिक संसार इसे सीखने-समझने के अनेक मौक़े देता है। एक गणित शिक्षक अगर बच्चों के लिए ऐसे मौक़े बनाता है तो गणित की इन अवधारणाओं को सीखना न सिर्फ़ आसान होता है बल्कि ठोस और गहरी समझ भी बनती है। प्रस्तुत आलेख में लेखक ने कोण की अवधारणा पर समझ बनाने के लिए बच्चों के एक समूह के साथ किए गए अपने क्रमबद्ध प्रयास को बताया है। सं.

गणित की उलझन ही यही है कि किताब से उसका पढ़ाया जाना बड़ा कठिन हो जाता है। ये कठिनाई दो तरह से पेश आती है। एक तो किताबी भाषा का कठिन और तकनीकी शब्दावली से भरा हुआ होना और दूसरा, बहुत ही बँधे-बँधाए तरीक़े से अवधारणाओं और उनसे जुड़े मसलों का रखा जाना। गणित में भी अन्य विषयों की तरह बोलचाल की भाषा, अपने आसपास उसे देख और महसूस कर पाने की सम्भावना का होना और उसे विस्तार से खोलकर रख पाना ज़रूरी होता है ताकि उसके सारे पहलू साफ़-साफ़ और वास्तविक नज़र आ सकें। गणित को औपचारिक व उसकी प्रकृति को अमूर्त समझकर अकसर इस तरह के पहलुओं को नज़रअन्दाज़ कर दिया जाता है।

एक मिश्रित समूह में, जिसमें 7 से लेकर 11-12 साल के बच्चे हैं, कोण पर अवधारणात्मक समझ बनाने और उसके व्यवहारिक पहलू को जानने के प्रयासों का सिलसिलेवार अनुभव यहाँ प्रस्तुत किया गया है। इसे चार दिनों के कक्षा शिक्षण कार्य से हम समझने की कोशिश करेंगे।

पहला दिन : कोण की समझ बनाने का प्रयास

आज कक्षा की शुरुआत एक खेल से हुई। बच्चों को माचिस की 6 तीलियों से कुछ आकृतियाँ बनानी थीं। शर्त ये थी कि सबकी आकृतियाँ अलग-अलग होनी चाहिए। सभी बच्चों ने आकृतियाँ बनाना शुरू किया। मैंने ख़ुद एक त्रिभुज बनाकर उन्हें बताया कि बनाई गई आकृति बन्द होनी चाहिए। फिर बच्चों ने काफ़ी सारी आकृतियाँ बनाईं और सभी देखकर आश्चर्य में थे कि 6 तीलियों से इतनी सारी तरह-तरह की आकृतियाँ बनाई जा सकती हैं।

"इन सभी आकृतियाँ में क्या-क्या एक जैसा है?" मैंने बच्चों से पूछा।
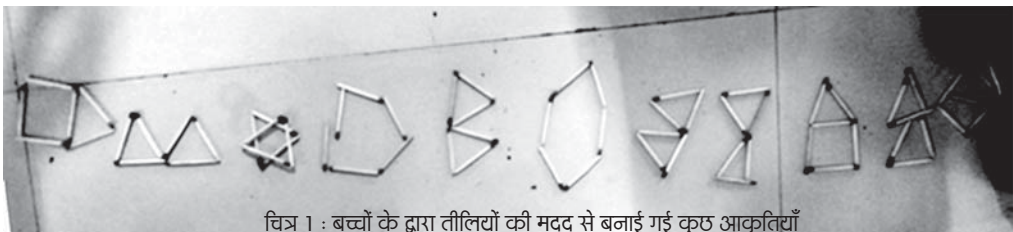
चित्र 1 : बच्चों के द्वारा तीलियों की मदद से बनाई गई कुछ आकृतियाँ

चित्र 2 : आकृति बनाते बच्चे

बच्चों ने बताया कि सबमें 6 तीलियाँ हैं। मैंने पूछा, "और क्या-क्या एक जैसा है?" कुछ बच्चों ने बताया कि इन सबमें सीधी लाइन भी है। तब और सोचने की बाद 9 साल के सम्राट ने बताया कि इसमें कोण भी है। हम आगे बात करने लगे। मैंने माचिस की तीलियों से एक साइड में 3 आकृतियाँ बनाकर रखी थीं, इनमें तीलियाँ अलग-अलग कोण पर थीं।

मैंने सम्राट से कहा, "इन आकृतियों में कोण कहाँ दिख रहे हैं?" उसने आकृतियों के कोनों की तरफ़ इशारा करते हुए कहा, "ये कोण हैं।" फिर बाक़ी बच्चों से पूछा, "क्या आपको लगता है यहाँ कोण हैं?" बच्चों ने कोई जवाब नहीं दिया।

पहले दिन हमने क्लास को यहीं ख़त्म किया और बच्चों को इस सवाल के साथ घर जाने दिया कि कोण क्या है?

दूसरा दिन

आज बच्चों के साथ कोण पर आगे बात करनी थी। सारे बच्चे कोण के बारे में जानने के लिए उत्सुक थे और कुछ जानकारियाँ इकट्ठा करके भी लाए थे।

कक्षा की शुरुआत हमने सम्राट की बात को ही आगे बढ़ाकर की, जहाँ उसने कहा था कि आकृति में उसे कोनों में कोण दिखते हैं। मैंने बच्चों को माचिस की तीलियाँ दीं और उन्हें ठीक से रखकर कोने बनाने को कहा। बच्चों ने कोने बनाए जिनमें लेटर A, लेटर V एवं कुछ अन्य चीज़ों की आकृतियाँ थीं।

फिर उनसे पूछा, "कोना बनाने के लिए हम क्या कर रहे हैं।" बच्चों ने बताया, "माचिस की तीलियों को जोड़ने से कोने बनते हैं।" मैंने बच्चों से पूछा, "क्या हम कह सकते हैं कि माचिस की तीली रेखाखण्ड है और दो रेखाखण्ड जहाँ पर मिल रहे हैं, एक दूसरे पर झुक रहे हैं, उनके जोड़ पर कोण बन रहा है?" (यह बच्चे रेखाखण्ड से पहले परिचित हो चुके थे, अतः वे कुछ-कुछ समझ पाए।) इस परिभाषा को पढ़ते हुए हम सभी ने दो रेखाओं के मिलने और उनके यथार्थ में प्रारूपों को खोजने का प्रयास किया। बच्चों के पास से कई उदाहरण आए और बोर्ड, लैपटॉप व ऐसे ही आकार की अन्य चीज़ों में भी कोण बनने की बात आई। (इस बिन्दु को मैंने नोट किया और तय किया कि अगले दिन की चर्चा में इसपर भी बात हो।)

हमने अब तीलियों वाले खेल को वापस खेला एवं तीलियों से बन्द आकृतियाँ बनाईं और पाया कि जब दोनों रेखाओं के मिलने का तरीक़ा बदलता है तो कोण की बनावट में भी बदलाव आता है। (इसे एक प्रकार से विभिन्न तरह के कोण को देख पाने की शुरुआत मान सकते हैं।) अब मेरे सामने टास्क ये था कि बच्चों को किस तरह से यह दिखाया जाए कि कोण असल में दो रेखाओं के बीच बदलता झुकाव है और इसके लिए हमने एक गतिविधि का सहारा लिया।

घड़ी के दो काँटों को हमने दो रेखाखण्डों के रूप में माना एवं 12 बजने के समय को देखा और फिर समय को 1, 2, 3, करते हुए बढ़ाते गए।

इस गतिविधि से बच्चों को यह समझने में मदद मिली कि दो रेखाखण्डों के बीच में जो झुकाव है वह बदल रहा है और यही उन रेखाखण्डों के बीच का कोण है, जो घड़ी में समय बदलने के साथ-साथ बदलता है।

तीसरा दिन

आज के दिन की शुरुआत बच्चों के साथ चर्चा से हुई। एक बच्चे ने बताया कि उसने

दीवार के कोने में भी कोण देखे हैं। (इससे यह समझ आया कि कोण को दो रेखाओं के मिलने की समझ में कोने भी शामिल हैं)। इसपर बच्चे सोचें इसलिए जो कार्य किया, वह संक्षेप में इस प्रकार है :

मैंने बच्चों के सामने एक शंकु आकार की टोपी रखकर पूछा, "क्या इसमें कोना है?" सभी बच्चों का जवाब था, "हाँ।"

दूसरा सवाल था, "क्या इसमें आपको कहीं पर दो रेखाएँ मिलने से कोण बनता दिखाई दे रहा है जैसे हमने कल घड़ी में बनाकर देखा था?"

सभी बच्चों ने 'न' में जवाब दिया।

यहाँ इस बात पर ध्यान दिया कि कोण और कोने के फ़र्क़ पर बच्चों की समझ बन पाए, नहीं तो बच्चे त्रिविमीय कोने और कोण को एक ही समझने की ग़लती कर बैठते हैं। अवधारणा की यह ग़लती आगे कोण को और अगले स्तर पर समझने में दिक़्क़त पैदा करती है। कोशिश होनी चाहिए कि कोण और रेखाखण्ड (रेखा, किरण) के बीच के सम्बन्ध को वो समझें। यहाँ यह साफ़ कर देने की ज़रूरत है कि दोनों रेखाओं के बीच जो क्षेत्र बनता-सा दिखता है वह कोण नहीं है। अकसर कोण को लेकर जो दो भ्रम होते हैं, उनमें से एक तो कोनों को ही कोण समझना है और दूसरा, रेखाओं के बीच का क्षेत्र कोण के रूप में समझा जाता है। उससे ऐसा भी लग सकता है कि उनके बीच का क्षेत्रफल कोण का माप होगा। इसीलिए यह कहना, कि ब्लैकबोर्ड, लैपटॉप स्क्रीन, कमरों के कोने, आदि में कोण हैं, कई ऐसी ही भ्रमात्मक धारणाओं को पैदा कर सकता है।

इसीलिए मैंने प्रयास किया कि बच्चे देख पाएँ कि दीवार के कोनों में हम तीन फ़लकों को मिलता देखते हैं और हर कोने में इनके मिलने के स्थानों पर तीन रेखाखण्ड होते हैं जोकि सामान्यतः हमेशा ही एक दूसरे की लम्बवत दिशा में होते हैं और यहाँ कमरे के अन्दर हर कोने में तीन कोण बनते हैं। पर बच्चे दीवार के कोने में छिपे तीन कोणों को नहीं देख पा रहे थे जिन्हें समझने के लिए हमने चित्र 3 की मदद ली।

इस चित्र की मदद से बच्चे देख पाए कि कैसे हर दीवार से मिलने वाली लाइन की मदद से एक कोना, लेकिन तीन कोण बन रहे हैं।

यहाँ फिर से बच्चों को इस बात को स्पष्ट करने और बताने की कोशिश की कि हमें दीवार नहीं बल्कि उसमें बन रही एक सीधी रेखा को समझना है। जैसे– दो दीवारों के जोड़ पर एक लाइन छत से नीचे फ़र्श तक आती है और दूसरी लाइन फ़र्श व दीवार के मिलने से बनती है। ये दोनों लाइनें जहाँ मिलती हैं वहाँ कोण बनता है। इस तरह हम देखें तो कमरे के एक कोने में यहाँ तीन कोण बनते हुए दिखते हैं।
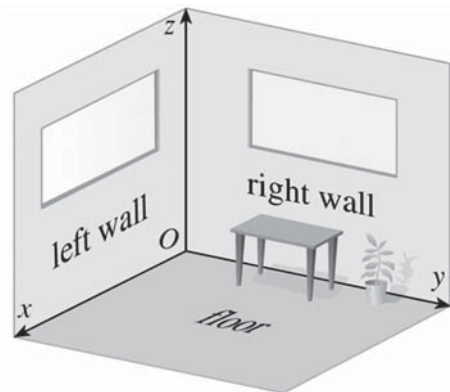
चित्र 3 : कमरे की दीवार और फ़र्श में बनने वाले कोने और कोणों को दर्शाता त्रिविमीय चित्र

छत से फ़र्श तक आती हुई खड़ी रेखा से दोनों दीवारों की तरफ़ एक-एक कोण, इस तरह दो कोण तो ये हुए और फिर दोनों दीवारों के बीच फ़र्श पर बनने वाला एक और कोण। इस तरह ये तीन कोण बनते हैं।

चौथा दिन

विभिन्न तरह से कोनों को जाँचने व परखने के बाद बच्चे इस नतीजे पर पहुँच चुके थे कि

चित्र 4 : आपस में चाँदे का उपयोग समझते बच्चे

चित्र 5 : ख़ुद का कोण मापक बनाती एक बच्ची

जब दो रेखाखण्ड मिलते हैं तो विभिन्न कोणों में रेखाखण्डों के बीच होने वाले झुकाव में अन्तर होता है। और मैंने बच्चों को कहा कि आप सभी लोग सही बोल रहे हैं। अब इसी अन्तर को, यह कोण छोटा है या बड़ा, इस बात को जाँचने या नापने के लिए हमारे पास एक उपकरण होता है जिसको हम चाँदा कहते हैं।

इसके बाद हमने कम्पास बॉक्स में चाँदे को देखा और उसके बारे में बात की। हमने देखा कि हमारे दूसरे पैमाने की तरह यह भी शून्य से शुरू होता है। बच्चों को मैंने चाँदे की मदद से कोण का मापन बताया और वे निकल पड़े पूरे स्कूल में कोण ढूँढ़ने और मापने के लिए।

बच्चों ने कोण को नापने के लिए काग़ज़ से अपने ख़ुद के विभिन्न मापक बनाए और उनका उपयोग किया। इसी कड़ी में मैंने बताया कि राजमिस्त्री और बढ़ई भी कोण और सीध मापने के लिए अलग-अलग उपकरणों का इस्तेमाल करते हैं। साहुलसूत्र, गुनिया और धागा का इस्तेमाल होते कुछ बच्चों ने पहले से देखा हुआ था। मैंने उन्हें लैपटॉप पर इन सब उपकरणों के चित्र और उनके इस्तेमाल के वीडियो भी दिखाए।

ये चार दिन यह प्रयास रहा कि बच्चों के बीच कोण को लेकर एक आधारभूत समझ बन पाए। बच्चे समझ पाएँ कि यह एक द्विविमीय (two dimensional) संरचना है जहाँ कोण बनाने वाली रेखाओं की मोटाई नगण्य है, और उनके बीच का झुकाव ही कोण है न कि वह क्षेत्र जो दो रेखाओं के बीच दिखता है। कोण की अवधारणा सिखाते समय यही मुख्य बातें ध्यान में रखने की हैं। होता यह है कि कक्षा में कोण समझाते समय जो सामग्री इस्तेमाल की जाती है वह वास्तविक, ठोस और त्रिविमीय (three dimensional) होती है। कमरे के कोने, किताब के कोने, ईंट, खिड़की, दरवाज़े, स्लेट, समोसा, पराठे, कार्ड शीट को उदाहरण के रूप में लेने पर यही समस्या खड़ी होती है क्योंकि सामान्य बोलचाल में कोना और कोण कई बार एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते हैं। यहाँ शिक्षक की ज़िम्मेदारी है कि वह अवधारणा बनाते समय इसके अन्तर को स्पष्ट करता चले।

इसके बाद आगे की कक्षाओं में कोण के अलग-अलग प्रकारों और उनके मापन की बारीक़ियों पर कुछ अभ्यास कार्य किया जाना उपयोगी होगा।

अंकित सिंह, समावेशी शिक्षा से जुड़े आनंद निकेतन डेमोक्रेटिक स्कूल में काम कर रहे थे, वर्तमान में भोपाल में देहली पब्लिक स्कूल में प्राइमरी लेवल पर गणित विषय पर काम कर रहे हैं।
सम्पर्क : singh.ankit754@gmail.com

कोविड महामारी के बाद गणित शिक्षण की शुरुआती प्रक्रिया

गुलशन यादव

कोविड महामारी के दौरान लम्बे समय तक स्कूलों के बन्द रहने के कारण बच्चों के सीखने की प्रक्रिया बाधित हुई है। सीखा हुआ भूला है, कहीं छूटा है और अब लर्निंग लॉस (अधिगम क्षति) की बात हो रही है। गणित विषय के सन्दर्भ में यह बात और भी गम्भीर और चुनौतीपूर्ण हो जाती है क्योंकि गणित की हर अवधारणा उसके पहले की ज़रूरी पूर्व-अवधारणा की समझ पर निर्भर करती है। अगर सीखने का यह क्रम कहीं बाधित हुआ है तो आधारभूत काम करने की फिर से ज़रूरत है। शिक्षकों के एक समूह की आपसी चर्चा के माध्यम से लेखक ने इस लर्निंग लॉस से निपटने के लिए आकलन, कार्य योजना, विद्यार्थी सूचकांक और मूल्यांकन आदि पर व्यवहारिक बातें की हैं। सं.

कोविड-19 की वजह से मार्च 2020 से हमारे स्कूल बन्द हैं। इस अवधि में शिक्षकों के माध्यम से तमाम क़िस्म के उतार-चढ़ावों के साथ बच्चों के शिक्षण हेतु कई तरह के प्रयास संचालित हुए हैं। सभी जगहों पर इसके अनुभव भी एक जैसे नहीं रहे हैं। इन तमाम प्रयासों के बावजूद नियमित स्कूल नहीं चलने की वजह से अधिकांश बच्चों के सीखने के स्तर में गिरावट महसूस की गई। बच्चों के सीखने की प्रक्रिया दो प्रकार से बाधित हुई है :

1. पहला, बच्चों ने मार्च 2020 के पहले जो सीखा था, उनमें से भी कुछ चीज़ें कई बच्चे भूल गए।

2. दूसरा, इस साल बच्चे जो सीख सकते थे, मौजूदा परिस्थिति के कारण नहीं सीख पाए।

बच्चों पर उक्त दोनों पहलुओं के पड़ने वाले असर से इंकार नहीं किया जा सकता है। ये ऐसी चीज़ें हैं, जो बच्चों की शिक्षा पर सीधा असर डालने वाली हैं। यदि हम गणित की बात करें तो गणित की हर अवधारणा उसके पहले की ज़रूरी पूर्व-अवधारणा की समझ पर निर्भर करती है, इसलिए गणित में आगे की कक्षाओं में आने वाली अवधारणा को समझने में पूर्व की अवधरणाओं की समझ की तो ज़रूरत पड़ेगी ही। ऐसे में बेहद ज़रूरी है कि बच्चे उस लर्निंग लॉस की भरपाई के साथ-साथ कक्षा अनुरूप वे दक्षताएँ और कौशल हासिल कर सकें जो उनके अगली कक्षा में जाने के लिए बेहद ज़रूरी हैं। इसको समझने के लिए हाल ही में छत्तीसगढ़ राज्य में सितम्बर 2021 में सरकारी विद्यालयों के सभी बच्चों का एक बेसलाइन आकलन किया गया।

बेसलाइन आकलन बच्चों में हुए लर्निंग लॉस पर काम करने की एक बेहतर और व्यवस्थित योजना है। पर किसी भी योजना की सार्थकता तब है जब ज़मीनी स्तर पर उसके अनुरूप कार्य हो। और जो उस कार्य को निष्पादित करते हैं उन सबकी समझ एक जैसी हो ताकि सभी अपने तरीक़े से ही सही, पर एक दिशा में कार्य कर रहे हों। तब जो बदलाव है

वह बड़े स्तर पर भी दिखता है। लेकिन इस पूरी व्यवस्था और प्रयास में यह समझना होगा कि अभी वर्तमान में जो लर्निंग लॉस हुए हैं उनमें कार्य कैसे करें। क्या अभी भी कक्षा में पाठ्यक्रम को पूरा करने में फ़ोकस करें? या कुछ नए तरीक़े से कुछ विशेष मुद्दों पर फ़ोकस करके कार्य करने पर ज़ोर दें ताकि मेहनत का सही परिणाम दिख सके। ऐसे ही मुद्दों को लेकर प्राथमिक शाला के कुछ शिक्षकों (शिव कुमार, उषा, गोपाल, रुबीना और अनिल) की बातचीत हो रही थी। आइए, उस चर्चा में शामिल होते हैं :

शिव कुमार : "ये बेसलाइन आकलन स्कूल खुलते ही क्यों करा रहे हैं यह समझ से परे है। अभी तो बच्चे 17-18 महीने बाद स्कूल आ रहे हैं तो वो इस परीक्षा में कहाँ से अच्छा कर पाएँगे। ऐसे में तो स्कूल का रिज़ल्ट ख़राब ही दिखेगा।"

उषा : "बात तो आप सही कह रहे हैं सर, मेरे यहाँ की भी यही स्थिति है।"

रुबीना : "हाँ, मेरे यहाँ भी ऐसा ही है।"

अनिल : "रुकिए, आप लोग बोल तो ठीक रहे हैं पर इस आकलन के उद्देश्य को समझने की कोशिश करें। इस आकलन का उद्देश्य यह थोड़े ही है कि हमारे स्कूल के कौन-से बच्चे 'ए' ग्रेड में हैं या कौन 'डी' में। बल्कि इस बेसलाइन आकलन का उद्देश्य कोविड महामारी के कारण पिछले 17 माह में बच्चों का सीखने में जो नुक़सान हुआ है, उसका पता लगाना है। शायद हम इसके उद्देश्य को समझ ही नहीं पाए, इसलिए अपने-अपने मन से इसको अलग-अलग तरीक़े से ऐसे समझ रहे हैं।"

गोपाल : "पर ये आप कैसे कह सकते हैं अनिल सर!"

उषा : "हाँ, सर!"

अनिल : "आदेश को अच्छे से पढ़िए और जो प्रश्न दिए गए हैं उनका भी अवलोकन कीजिए। हर कक्षा के बेसलाइन प्रश्नपत्र में उस कक्षा के सवाल रखे गए हैं, साथ ही पिछली दो कक्षाओं के और आरम्भिक स्तर के लिए भी तो सवाल दिए गए हैं। उदाहरण के लिए, कक्षा 5 के प्रश्नपत्र में कक्षा 3 के 4 प्रश्न एवं कक्षा 1 के 3 प्रश्न। तो जो बच्चा खण्ड 'अ' के प्रश्न जो कक्षा 5 के स्तर के हैं वो अच्छे से नहीं कर पाता या उसमें 33 फ़ीसदी अंक नहीं ला पाता उस बच्चे का खण्ड 'ब' चेक करते हैं जो उससे 2 कक्षा स्तर पीछे का है। अगर वो बच्चा उसे भी अच्छे से नहीं कर पाता या 33 फ़ीसदी अंक नहीं ला पाता तो उसका खण्ड 'स' चेक करते हैं जो उससे और 2 कक्षा स्तर पीछे, मतलब शुरुआती स्तर, का है।

इसमें तो ऐसे ही आकलन करना है ताकि यह समझ बने कि कौन-सा बच्चा किस स्तर पर है जिससे उसके साथ आगे की कार्य योजना बनाई जा सके। और इस तरह हर बच्चे के साथ उसके स्तर और ज़रूरत के अनुरूप आगे बढ़ा जा सके।"

शिव कुमार : "बात तो आप तार्किक कर रहे हैं सर!"

उषा : "हाँ सर, पर आपने ऐसा कुछ किया है क्या?"

अनिल : "हाँ, मैंने अपने यहाँ ऐसा ही किया है। इससे मुझे काम करने में काफ़ी मदद मिल रही है और बहुत-से बच्चों में सीखने के स्तर में बदलाव भी दिख रहा है।"

गोपाल : "तो कुछ और उदाहरण के साथ बताइए सर कि आपने कैसे किया?"

रुबीना : "हाँ सर, ताकि मैं भी बच्चों के लिए कुछ बेहतर और व्यवस्थित तरीक़े से काम कर सकूँ।"

अनिल : "ठीक है, मैंने कैसे किया इसको साझा करता हूँ। हो सकता है आपको जो चीज़ें बेहतर लगें आप शिक्षण प्रक्रिया में उन्हें शामिल करें।"

वर्तमान परिस्थिति में कैसे कार्य किया जा सकता है ?

अनिल : “सबसे पहले मैंने बेसलाइन प्रपत्र और ख़ुद से डेवलप किए कुछ प्रश्नों के माध्यम से बच्चों का आकलन किया। फिर उसके आधार पर हर बच्चे को समझा और विद्यार्थी सूचकांक (चित्र 1) का निर्माण किया। विद्यार्थी सूचकांक के आधार पर मुझे कक्षागत कई मुद्दों की जानकारी मिल पाई, जैसे– कितने बच्चों के साथ किन-किन मुद्दों पर कार्य करने की ज़रूरत है, आदि।”

रुबीना : “आपने विद्यार्थी सूचकांक का निर्माण कैसे किया?”

अनिल : “मेरे स्टाफ़ रूम में चलिए। मैं उदाहरण के साथ एक सैम्पल दिखाकर बताता हूँ तो आप सबको ज़्यादा बेहतर तरीक़े से समझ आएगा। इसके आधार पर मैं यह तय कर पाया कि 7 बच्चों के साथ 50 से 100 तक की संख्या और संख्याओं को क्रम से (घटते और बढ़ते) जमाने पर कार्य करने की ज़रूरत है। जबकि हासिल वाले सवाल पर पूरे 10 बच्चों के साथ कार्य करने की ज़रूरत है। इस तरह, कक्षा के प्रत्येक बच्चे के साथ किस मुद्दे पर कार्य करना है और उस समूह में कौन-कौन से बच्चे होंगे, यह तय करने में मुझे आसानी होती है।”

उषा : “पर आपको तो दिक़्क़त होती होगी, इतने सारे समूह के साथ कार्य करने में!”

अनिल : “नहीं, इसको व्यवस्थित प्लान करके करोगे तो नहीं होगा।”

उषा : “कैसे? कुछ और बताइए।”

क्र.	विद्यार्थियों के नाम	अवधारणाओं के नाम									
		कम ज़्यादा	1 से 50 तक की संख्या	50 से 100 तक की संख्या	घटते क्रम में संख्या	बढ़ते क्रम में संख्या	इबारती प्रश्न समझकर हल करना	जोड़		घटाना	
								बिना हासिल वाले	हासिल वाले	बिना हासिल वाले	हासिल वाले
1	दुर्गेश	×	✓	✓	×	×		✓	×	×	×
2	शेखर	✓	✓	×	✓	✓		✓	×	×	×
3	गेमन	✓	✓	✓	×	×		✓	×	×	×
4	निरंजन	✓	✓	✓	×	×		✓	×	×	×
5	चित्रकान्त	✓	✓	×	✓	×		×	×	×	×
6	साक्षी	✓	✓	×	✓	×		✓	×	×	×
7	अनुष्का	✓	✓	×	×	×		✓	×	×	×
8	रुद्राणी	✓	✓	×	×	×		✓	×	×	×
9	वीरा	✓	×	×	×	×		×	×	×	×
10	चेतना	✓	✓	×	×	×		×	×	×	×
		1	1	7	7	9		3	10	10	10

चित्र 1 : विद्यार्थी सूचकांक

कक्षा में दो समूहों के साथ कार्य योजना

अनिल : “जैसे पहले समूह के साथ जब मैं ‘50 से 100 तक की संख्या’ की समझ पर कार्य करता हूँ और उनसे बातचीत करता हूँ तो उसी समय में दूसरे समूह के साथ मैं ‘घटते और बढ़ते क्रम’ के मुद्‌दे पर वर्कशीट दे देता हूँ, जिसे वो समूह में चर्चा करते हुए आपस में हल करते रहते हैं। फिर आधा घण्टे या 45 मिनट बाद पहले समूह के साथ जो ‘50 से 100 तक की संख्या समझ’ पर कार्य किया था उनको उससे सम्बन्धित एक वर्कशीट दे देता हूँ ताकि आकलन कर सकूँ कि मेरे द्वारा किए कार्य को कितने बच्चे अच्छे से समझ पाए और किनको अभी भी चुनौती है, जो मुझे अगले दिन के प्लान में मदद करता है। और फिर दूसरे समूह के साथ ‘घटते और बढ़ते क्रम’ पर उनके द्वारा किए गए काम के आधार पर शिक्षण-अधिगम सामग्री (टीएलएम) का उपयोग करते और बातचीत करते हुए कार्य को आगे बढ़ाता हूँ।

इस तरह कक्षा में व्यवस्थित प्लान के साथ अगर कार्यपत्रक, टीएलएम का निर्माण करके या अन्य ज़रूरी संसाधनों की व्यवस्था करके शिक्षण किया जाए तो कक्षा संचालित करने में बहुत आसानी होती है।”

रुबीना : “प्लान तो हम भी करते हैं पर इतने सूक्ष्म स्तर पर नहीं। वाक़ई में लग तो रहा है कि इतने सूक्ष्म स्तर पर प्लान करके पढ़ाया जाए तो बेहतर कार्य किया जा सकता है।”

अनिल : “ज़रूर, शुरुआत में चुनौतियाँ आएँगी पर धीरे-धीरे प्लान बेहतर होता जाएगा। कोशिश करते रहना और दिक़्क़त आएगी तो बात करेंगे। मिलकर समस्या का समाधान खोजेंगे।”

थोड़ी देर बाद गोपाल सर ने कहा : “चलो, मुख्य मुद्‌दे पर आते हैं। आगे बताइए अनिल सर!”

अनिल : “हाँ, तो हम कहाँ थे?”

शिव कुमार : “दो समूह बनाकर कार्य करते हैं आप...”

अनिल : “हाँ, हाँ। लेकिन विद्यार्थी सूचकांक में केवल सही या ग़लत का निशान ही काफ़ी नहीं होता है। बच्चों की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण और यह समझना बहुत ज़रूरी होता है कि किस बच्चे को क्या आता है और क्या नहीं।”

शिव : “कैसे सर? यह समझ नहीं आया।”

बच्चों की प्रतिक्रियाओं को समझना :

अनिल (बच्चों की कॉपी की एक प्रतिक्रिया दिखाते हुए) : “इसमें क्या समझ आ रहा है देखकर बताओ।”

गोपाल : “यही कि इस बच्चे को जोड़ और घटाना तो आता है क्योंकि उनके प्रश्न उसने सही किए हैं पर गुणा और भाग नहीं क्योंकि एक प्रश्न को छोड़कर बाक़ी प्रश्न ग़लत किए हैं।”

उषा : “भिन्नात्मक संख्या भी इस बच्चे को नहीं आती है।”

5. नीचे दिए गए प्रश्नों को हल करके उत्तर लिखिए

25 + 72 = 97   37 + 5 = 42   45 + 78 = 123

204 + 307 = 511   2046 + 7955 = 10001   85 − 43 = 32

135 − 95 = 040   300 − 271 = 029   4005 − 3906 = 0099

6×4 = 24   23×3 = 96   35×6 = 021

306×4 = 1212   201×21 = 102204

6÷3 = 12   18÷ __ = 3   52÷2 = 12

408÷4 = 201 $\frac{1}{2}+\frac{2}{4}=\frac{3}{8}$

$\frac{1}{2}+\frac{2}{2}=\frac{3}{4}$ $\frac{1}{3}+\frac{2}{3}=\frac{5}{6}$ $\frac{1}{4}+\frac{1}{6}=\frac{2}{10}$

चित्र 2

अनिल : “आप सही तो कह रहे हैं पर सही और ग़लत के बीच भी बहुत कुछ होता है, जो बारीक़ी से देखने और समझने पर निकलकर आता है। इसे हम शिक्षकों को गहराई से समझना होगा। गुणा को ध्यान से देखो! इसमें बच्चे को पहाड़ा, गुणा करना, स्थानीय मान, आदि सभी आता है, जैसे– 23 x 3 में उसने 3 का गुणा 3 से करके पहले 9 लिखा फिर 3 का गुणा 2 से करके उसके बाद 6 लिखा। ऐसे ही गुणा के सभी प्रश्नों में किया गया है। मतलब बच्चे के लिखने में गड़बड़ी है जो शायद लॉकडाउन के कारण या कक्षा या प्रैक्टिस की कमी के कारण हो सकती हैं। इस बच्चे के साथ मुझे पूरे गुणा पर कार्य करने की ज़रूरत नहीं है बल्कि सिर्फ़ गुणनफल को लिखने के तरीक़े पर कार्य करने की ज़रूरत है।

साथ ही इसमें प्रश्नों के तरीक़े में भी अन्तर देखो जो आकलन के लिए ज़रूरी है। इसमें एक अवधारणा से सम्बन्धित सभी प्रश्न एक दूसरे से एकदम अलग हैं, और सभी के अलग-अलग उद्देश्य हैं। जैसे– जोड़ में 5 प्रकार के प्रश्न हैं :

1. बिना हासिल वाला प्रश्न;
2. एक बार हासिल वाला प्रश्न;
3. दो बार हासिल वाला प्रश्न;
4. एक बार हासिल वाला प्रश्न, पर हासिल जिस स्थान में आता है उसमें दोनों अंक शून्य हैं; और
5. चार बार हासिल वाला प्रश्न, पर केवल इकाई में हासिल आने के कारण बाक़ी बचे तीन स्थानों में भी हासिल आता है।

इसी प्रकार घटाना, गुणा, भाग, भिन्नात्मक संख्या में ऐसे प्रश्न हैं जिनमें बच्चे अकसर ग़लतियाँ करते हैं, और ये सभी प्रश्न भी एक दूसरे से अलग हैं।

बच्चों की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण

हालाँकि बच्चों के अधिगम स्तर को समझने के लिए केवल लिखित आकलन ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि इसके साथ-साथ उनसे मौखिक बातचीत भी ज़रूरी होती है। इसलिए इस प्रक्रिया के बाद मैं कक्षा में बहुत-से टीएलएम का उपयोग करता हूँ और बच्चों के साथ इन मुद्दों को लेकर बहुत सारी चर्चा करता हूँ। इससे बच्चों को समझने में आसानी होती है, जैसे– एक बच्ची ने कुछ सवालों को इस प्रकार हल किया :

यह बच्ची न तो शब्दों को अंकों में लिख पाती है न ही अंकों को शब्दों में। पर सकारात्मक बात यह है कि दो अंकीय संख्याओं से जोड़ सही तरीक़े से कर पाती है। इसके साथ ही वह बिना हासिल वाले घटाना को भी सही तरीक़े से हल कर पा रही है।

चित्र 3

पर जब घटाने के सवाल में हासिल लेना पड़ता है तो उसमें वह कुछ ग़लतियाँ करती है, जैसे– 135-95 वाले प्रश्न में देखिए। 5 में से 5 घटाने पर 0 आता है तो वह दुविधा में पढ़ जाती है। इसलिए वह बड़ी संख्या 13 में से 5 को घटाकर 8 लिख देती है और फिर पुनः 13 में से 9 घटाकर 4 लिख देती है। इसका मतलब उस बच्चे में यह समझ है कि हमेशा बड़ी संख्या

में से ही छोटी को घटाया जाता है और जब उसे बड़ी संख्या नहीं मिलती तो वह आसपास के अंक, जो उसे बड़ी संख्या के रूप में दिखते हैं, को बड़ी संख्या मानकर उससे छोटी संख्या को घटा देती है। इसके साथ ही आगे के 3 प्रश्नों को जिस प्रकार उसने हल किया है उसे देखिए। वह छोटी संख्या से बड़ी संख्या को नहीं घटा पाती और उत्तर के रूप में बड़ी संख्या को लिख देती है।

इस प्रकार के बहुत-से विश्लेषण मैं कर पाता हूँ। यह एक उदाहरण के रूप में था। और इसके आधार पर यह तय करता हूँ कि इसके साथ मुझे गिनती में काम करना है, या संख्या समझ, स्थानीय मान, हासिल वाले जोड़ या घटाने में, आदि। और इसके अनुसार अपनी पाठ योजना और टीएलएम तैयार करता हूँ।

शिक्षक के कार्य का परिणाम

अनिल : "इस तरीक़े से कार्य का परिणाम यह है कि मैं अपने इन बच्चों को अच्छे तरीक़े से समझ पाता हूँ। और साथ ही आगे की कक्षा में जब गणित की अवधारणाओं पर काम करता हूँ तो मुझे आसानी होती है एवं बच्चे के अधिगम स्तर में सुधार होता है। साथ ही बच्चों के साथ मेरे रिश्ते एक सहज स्तर के होते हैं जिससे स्कूल का वातावरण भयमुक्त बना रहता है और बच्चे स्कूल की प्रक्रियाओं का आनन्द उठा पाते हैं। हालाँकि किसी भी प्रकार के दस्तावेज़ में हमेशा सुधार या बेहतरी की गुंजाइश होती है। यह बात मेरे इस दस्तावेज़ में भी लागू होती है। अगर आपके कुछ सुझाव हों तो कृपया अपने सुझाव देवें।"

गोपाल : "अभी तो कोई सुझाव नहीं है पर इतनी गहराई से मैंने कभी बच्चों की प्रतिक्रियाओं का विश्लेषण नहीं किया।"

उषा : "हाँ, मैंने भी।"

अनिल : "आप सभी शायद ऐसे ही करते हैं तरीक़ा भले ही ऐसा न हो, पर शिक्षक के रूप में हम बच्चों को तभी समझ पाएँगे जब गहराई में जाकर उनकी प्रतिक्रियाओं को समझें। तभी तय कर पाएँगे कि किस मुद्दे पर कार्य करने की ज़रूरत है।"

शिव कुमार : "फिर आगे कैसे कार्य करते हैं और ऐसा कब तक करते हैं सर?"

रुबीना : "हाँ, और मुद्दे कैसे तय करते हैं? आप सभी बच्चों को मिलाते हैं या हर कक्षा में ऐसे बच्चों के समूह बनाते हैं?"

अनिल : "रुको रुको... एक-एक करके बात करते हैं।"

एक साथी : "कल शाम को स्कूल के बाद 4 बजे बात करें क्या?"

सभी ने हामी भरी।

अनिल : "तो ठीक है वैसे तो मैं सीखने के प्रतिफल को ध्यान में रखकर सप्ताहवार प्लान बनाता हूँ लेकिन इसको लेकर कल बात करते हैं।"

इस चर्चा से कक्षा के लिए क्या लिया जा सकता है?

इस चर्चा में हमारे लिए कार्य करने लायक़ महत्त्वपूर्ण बिन्दु निम्न हो सकते हैं :

1. सबसे पहले, सभी बच्चों को क्या आता है और क्या नहीं, अर्थात उनके सीखने का स्तर क्या है यह जानना और उसको एक जगह व्यवस्थित करके लिखना। इसके लिए हम स्वयं से भी आकलन प्रपत्र तैयार कर सकते हैं और उसके आधार पर बच्चों के स्तर का आकलन करके यह जानने की कोशिश करेंगे कि कौन-सा बच्चा किस स्तर की गणितीय अवधारणाओं को समझता है और किसमें उन्हें चुनौती आ रही है।

2. हालाँकि बच्चों के अधिगम स्तर को समझने के लिए केवल लिखित आकलन ही पर्याप्त नहीं होता है बल्कि इसके साथ-साथ

उनसे मौखिक बातचीत भी ज़रूरी होती है। इसलिए आपको लिखित के बाद मौखिक बातचीत भी करनी चाहिए।

3. फिर हर एक बच्चे को मैप (map) करने के लिए ऊपर दिए गए सैम्पल अनुसार विद्यार्थी सूचकांक का निर्माण करना चाहिए। इसके आधार पर हम आसानी से उन बच्चों के छोटे समूह बना सकते हैं, जिनके साथ लगभग एक ही स्तर का काम किया जाना है। इन छोटे समूहों के लिए स्तरवार योजना बनाई जा सकती है और उस आधार पर बच्चों के साथ विशिष्ट कौशलों पर काम किया जा सकता है। जैसे– ऊपर दी गई तालिका के आधार पर कम और ज़्यादा की पहचान,1 से 100 तक की संख्या पहचान, संख्या की तुलना कर पाने (बड़ा या छोटा) में जिन बच्चों को चुनौती आती है उनका समूह बनाकर उनके साथ इस मुद्दे पर काम शुरू करना चाहिए और कक्षा शिक्षण में टीएलएम, कार्यपुस्तिका या अन्य संसाधन के माध्यम से सम्बन्धित पाठ पर काम करना चाहिए।

4. इसके पश्चात सतत रूप से उनकी प्रगति का आकलन करना चाहिए। वर्तमान समय को देखते हुए यह दो तरीक़े से हो सकता है :

   अ. जिस स्कूल में शिक्षक अभी कक्षावार पढ़ाते हैं, वह हर कक्षा के बच्चों को बेसलाइन आकलन से प्राप्त नतीजों के आधार पर 2 या 3 समूह में बाँट सकते हैं। फिर जिस अवधारणा पर कार्य करना है उसको पढ़ाकर अपने कार्य के हुए असर को समझने के लिए कुछ कार्यपुस्तिका देकर उनको हल करने दे सकते हैं और उसके आधार पर उनके कार्य और प्रगति को लगातार देख सकते हैं। बच्चों को ज़रूरत के आधार पर 2 या 3 समूह से ज़्यादा में बाँटने से कक्षा संचालित करने में चुनौती बढ़ सकती है।

   ब. जिस स्कूल में शिक्षक अभी कक्षावार नहीं पढ़ाते हैं और एक शिक्षक 2 या 3 कक्षाएँ एक साथ संचालित करते हैं, वे बेसलाइन आकलन से प्राप्त नतीजों के आधार पर हर कक्षा के बच्चों को मल्टी-ग्रेड और मल्टी-लर्निंग के आधार पर 2 या 3 समूहों में बाँटकर उनके साथ कार्य कर सकते हैं, अर्थात:

      i. कक्षा 2, 3 और 4 के बच्चे एक साथ एक समूह में रहकर स्थानीय मान पढ़ेंगे; और

      ii. उसी प्रकार कक्षा 2, 3 और 4 के बच्चे जिनको 2 अंकों का स्थानीय मान तो अच्छे से आता है पर 2 अंकों वाले जोड़ और घटाने की संक्रिया में चुनौती आती है, वे एक साथ एक समूह में रहकर जोड़ और घटाना पढ़ेंगे। फिर जोड़ और घटाना की अवधारणा पर शिक्षक को उनके साथ कार्य करना है, इसके बाद ही इस कार्यपुस्तिका पर उनको काम करने को दे सकते हैं और उनके कार्य व प्रगति की लगातार समीक्षा कर सकते हैं।

इस प्रक्रिया के तहत कार्य करने पर कोविड महामारी के दौर में बच्चों के वांछित सीखने की दिशा में जो क्षति हुई है उसको काफ़ी हद तक कम या ख़त्म किया जा सकता है, ताकि बच्चा अगली कक्षा में वांछित अधिगम के साथ प्रवेश कर सके और आगे की अवधारणा समझने-समझाने में शिक्षक और बच्चों को आसानी हो।

कुछ महत्त्वपूर्ण बातें

इस दौरान कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए, जैसा अनिल सर करते हैं :

- शिक्षक बच्चों को कार्य करने के दौरान फ़ीडबैक दें। फ़ीडबैक में उन्होंने क्या सही

और अच्छा किया है, उसके बारे में बात करें। जहाँ सुधार की ज़रूरत है सुधारें और इसपर उनसे बातचीत करें। कभी भी बच्चों को सीधे उत्तर न बताएँ, बल्कि उत्तर तक पहुँचने में उनकी मदद करें।

- बच्चे ने प्रश्न को कैसे हल किया है, उस प्रक्रिया पर ध्यान दें न कि केवल अन्तिम उत्तर पर। बच्चा प्रक्रिया समझ रहा है अथवा नहीं, इसपर विशेष ध्यान देते हुए उससे लगातार बातचीत करें। अगर बच्चे ने कोई त्रुटि की है तो उसपर बातचीत करें, न कि केवल सही उत्तर बताएँ।
- समय-समय पर पालकों से भी बच्चे की प्रगति और स्थिति को साझा करते रहें और ख़ुद भी इसको रिकॉर्ड करें।
- प्रक्रिया के समय इस बात का विशेष ध्यान रखें कि किसी भी बच्चे को ऐसा न लगे कि वह कम जानता है और दूसरा उससे ज़्यादा। उनके मन में हीन भावना बढ़ाने वाली किसी भी चीज़ को बढ़ने से हमें रोकना है।

इन सभी महत्त्वपूर्ण बातों के साथ-साथ सबके मन में कल को लेकर उत्सुकता थी और सब चले इसी उम्मीद के साथ कि कल यह जानने को मिलेगा कि सीखने के प्रतिफल को लेकर कक्षा में अनिल सर कैसे काम करते हैं।

गुलशन यादव, प्रबन्धन में एम फिल, एमबीए (स्नातकोत्तर) और इलेक्ट्रोनिक्स में स्नातक हैं। अपने केरियर के शुरुआती दौर में महाविद्यालय में गणित और प्रबन्धन विषय का शिक्षण किया है। प्राथमिक स्तर की कक्षाओं में शिक्षा के साथ इनका पहला गहन जुड़ाव तब बना जब 2013 में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में फ़ेलोशिप प्रोग्राम में फ़ेलो के रूप में जुड़े। गुलशन, गणित शिक्षण, शिक्षक प्रशिक्षण, और शिक्षण सामग्री निर्माण के क्षेत्र में पिछले 9 वर्षों से कार्य कर रहे हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन धमतरी (छत्तीसगढ़) में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : gulshan.yadav@azimpremjifoundation.org

गणित में भटकाव, एक वजह, भाषा का अटकाव

मुकेश मालवीय

गणित विषय के सीखने-सिखाने को लेकर हर समय एक बहस बनी ही रहती है। गणित विषय का शिक्षण अपने-आप में दो चुनौतियों से घिरा दिखाई देता है; एक तो विषय में निहित अमूर्तता और दूसरे उसकी भाषा का अजनबीपन। तकनीकी, पारिभाषिक और ग़ैर-बोलचाल की शब्दावली की वजह से अवधारणाओं को सीखना-समझना और भी दुरूह हो जाता है। इस लेख में मुकेश मालवीय ने कई सारे उदाहरणों को लेकर इस ओर ध्यान दिलाने की कोशिश की है। सं.

24 में 5 का भाग देना है तो हम सभी इसका उत्तर 4.8 ले आते हैं। यह कितना सरल है बड़ों और बच्चों के लिए भी। पर जब कोई हमसे यह पूछता है कि इसमें दशमलव 8 का मूल्य कितना है या 24/5 = 4.8 के मायने क्या हैं? या इसके लिए गणितीय कथन क्या हो सकता है? इन सवालों के जवाब बताने में मुश्किल खड़ी होने लगती है।

मेरा मानना है कि गणित विषय की बहुतेरी शिक्षा बच्चों को कुछ प्रतीकों और उनपर रोपित क़ायदों को बताने और अपनाने का ज्ञान बनती जाती है। गणित की अवधारणाओं के लिए ठीक ढंग से भाषा नहीं गढ़ी जाती, इसलिए वह बच्चों और शिक्षकों में संज्ञानात्मक समझ नहीं बना पाती। मैं कुछ उदाहरण लेता हूँ :

जैसे $4/5 \times 2/3 = 8/15$

वर्ग का क्षेत्रफल = भुजा × भुजा

वृत्त की परिधि = 2 पाई आर

लाभ प्रतिशत = लाभ × 100 / क्रय मूल्य

परिमेय संख्या वह संख्या है जिसे p/q के रूप में व्यक्त किया जा सकता है।

क्या दो न्यून कोण एक दूजे के पूरक हो सकते हैं?

यदि दो रेखाएँ एक दूसरे को प्रतिच्छेद करती हैं तो इस प्रकार बने शीर्षाभिमुख कोण समान होते हैं।

यह और इस तरह के कई अन्य तथ्य गणित की भाषा में कक्षा 6वीं, 7वीं तक बच्चों को बता दिए जाते हैं। बच्चों के संज्ञान या समझ के दायरे में इन्हें लाने के लिए उनसे संवाद, परिचर्चा और अनुप्रयोग के लिए जिस भाषा की ज़रूरत है, वह भाषा, शिक्षक अपने शिक्षण के दौरान इस्तेमाल में नहीं लाते या कम लाते हैं। इसे इस तरह भी कह सकते हैं कि अधिकांश शिक्षकों के पास गणित की इन अवधारणाओं को बच्चों को समझाने के लिए सहज अभिव्यक्ति (एक ही बात को अलग-अलग शब्दों और अलग-अलग वाक्यों में कहना) नहीं है जिसे वह अपने शब्दों में और उन शब्दों में, जिन्हें बच्चे समझ रहे हों, आवश्यकतानुसार शब्दों के बदलाव के साथ इस्तेमाल कर सकें।

तो क्या गणित विषय में बच्चे समझ के सम्प्रेषण से रहित एक ऐसा ज्ञान अर्जित कर

रहे होते हैं जो वैध तो है पर अनुभूतिविहीन बना हुआ है? क्या शिक्षकों को पहले ख़ुद के लिए इन्हें अनुभूत करने, समझने की ज़रूरत है?

गणितीय अवधारणाएँ क्या शिक्षकीय समझ के दायरे में हैं?

गणित के सूत्र और कथन मुझे (एक शिक्षक को) तब ही समझ आते हैं जब मैं इन शब्दावलियों से ख़ुद जूझकर अपने लिए इनका अर्थ खोजता हूँ और इन्हें अपनी समझ के दायरे में लाता हूँ, तब इनका अर्थ पहली बार मेरे दिमाग़ में खुलता है और इसे बच्चों को समझने के लिए सीधे किताबी भाषा न बोलकर दो तरफ़ा संवाद के ज़रिए उन्हें समझाने की कोशिश करता हूँ। उदाहरणार्थ, परिमेय संख्या को बच्चों को समझाने के लिए मैंने ख़ुद के लिए इस संख्या को समझना चाहा। मेरे समझने की प्रक्रिया में 'परिमेय' नाम का यह शब्द कोई मदद नहीं करता, क्योंकि कहीं और यह मेरी भाषा में कभी इस्तेमाल नहीं हुआ है। समझने की कोशिश में यह परिभाषा भी मदद नहीं करती कि जिस संख्या को p/q के रूप में लिखा जा सकता है, जहाँ पर q शून्य नहीं है, उसे परिमेय संख्या कहेंगे। आगे के उदाहरणों में बताया गया कि जैसे संख्या 2 को हम 2/1 या 4/2 लिख सकते हैं उसी तरह किसी भी संख्या को p/q के रूप में लिखा जा सकता है। पर मेरे मन में सवाल उठता है कि मैं जब 2 को इस तरह 2 लिख सकता हूँ तब 2/1 या 4/2 लिखने की क्या ज़रूरत? यहाँ पाठ्यपुस्तकों में एक और जवाब मिलता है कि हम पूर्णांक संख्याओं को दो संख्याओं के अनुपात के रूप में भी लिख सकते हैं। अनुपात की जो मेरी समझ थी वह इस तरह के उदाहरणों में थी, जैसे– मेरे पास 200 रुपए हैं और मेरे दोस्त के पास 400 रुपए, तो इसे हम कह सकते हैं कि हमारे पास रुपए 1 : 2 में हैं। या किन्हीं भी दो या अधिक संख्याओं के बीच एक सरल अनुपात निकाला जा सकता है।

कोई एक संख्या दो अलग-अलग संख्याओं का अनुपात कैसे हो सकती है? इसे समझने के लिए मुझे 1 : 2 की दूसरी व्याख्या सोचनी पड़ी। मेरी विचार प्रक्रिया से मुझे यह तर्क मिला कि मुझसे दोगुने रुपए मेरे साथी के पास हैं, इस आधार पर मैं यह भी कह सकता हूँ कि मेरे साथी के रुपए से आधे मेरे पास हैं। इस तरह 1:2 को मैं 0.5 के रूप में इस्तेमाल कर सकता हूँ, पर यह तो भिन्नात्मक संख्या के नाम से मुझे पहले से पता है। फिर परिमेय संख्या अलग नाम क्यों? पाठ्यपुस्तकें कहती हैं कि भिन्नात्मक संख्या ऋणात्मक नहीं हो सकती, पर परिमेय संख्या धनात्मक और ऋणात्मक दोनों हो सकती है। अत: परिमेय संख्या की जड़ों को समझने के लिए मुझे अपनी सोचने की प्रक्रिया को थोड़ा और सुलझाना पड़ा। मुझे समझ में आया कि यह नाम किसी एक संख्या का नहीं है, जैसे– पाँच को 5 नाम से जानता हूँ, साथ ही इस तरह की सारी गणना करने वाली संख्याओं को प्राकृत संख्या के सदस्य के नाम से भी जानता हूँ। इसी तरह मैं –5 को ऋण पाँच कहता हूँ पर यह प्राकृत संख्या के समूह में नहीं है। इसे एक नए नाम के समूह, जिसे पूर्णांक संख्या कहते हैं, के सदस्य के रूप में भी देख पाता हूँ। मैंने अपने सोचने के क्रम में यह भी समझा कि संख्याओं का यह नया समूह 'पूर्णांक', प्राकृत संख्या के समूह को अपने में समाहित कर लेता है, मतलब मैं 5 को प्राकृत संख्या भी कह सकता हूँ और पूर्णांक भी। पर–5 को पूर्णांक संख्या में ही रखना होगा। प्राकृत संख्या में हमने पूर्ण इकाई, जैसे– 2, 5, 8, आदि, को शामिल किया है। हमें किसी इकाई के छोटे हिस्से या टुकड़े की भी गणना करने की ज़रूरत होती है, तब किसी इकाई के उस हिस्से को कैसे मापें और इस माप को क्या कहेंगे? इसके लिए एक नया संख्या समूह हमें भिन्नात्मक संख्याओं के नाम से समझने को मिलता है। मेरी यह समझ है कि भिन्नात्मक संख्याओं के लिखने के तरीक़े से हम प्राकृत संख्याओं और इकाई के किसी हिस्से को व्यक्त करने वाली संख्या दोनों को ही लिख सकते हैं।

आगे हम एक तथ्य से परिचित होते हैं कि भिन्नात्मक संख्या का समूह ऋणात्मक संख्याओं को अपने में शामिल नहीं कर सकता। अतः हमें संख्याओं को लिखने का एक ऐसा तरीक़ा और समूह चाहिए जिसमें प्राकृत संख्या, पूर्ण संख्या, धनात्मक भिन्नात्मक संख्या, पूर्णांक, ऋणात्मक भिन्नात्मक संख्या सभी को शामिल किया जा सकता हो। भिन्नात्मक संख्या लिखने के तरीक़े से ही हमें यह तरीक़ा मिलता है कि हम इन सारी संख्याओं को किन्हीं दो पूर्णांक के अनुपात p/q के रूप में लिख सकते हैं। इसे हम परिमेय संख्या कहते हैं। इस तरह परिमेय संख्या के बारे में यह मेरी अपनी स्थापना थी जो मुझे तार्किक रूप से सन्तुष्ट करती है (यह स्थापना किसी पाठ्यपुस्तक में नहीं है)। इस तरह परिमेय संख्या को जब मैं ख़ुद के लिए समझ गया तो बच्चों के साथ इन संख्याओं पर बातचीत मेरे

9.3 परिमेय संख्याएँ क्या हैं?

शब्द 'परिमेय' (rational) की उत्पत्ति, पद 'अनुपात' (ratio) से हुई है। आप जानते हैं कि अनु
$3 : 2$ को $\frac{3}{2}$ भी लिखा जा सकता है। यहाँ 3 और 2 प्राकृत संख्याएँ हैं।

इसी प्रकार, दो पूर्णांकों p और q $(q \neq 0)$ के अनुपात $p : q$ को $\frac{p}{q}$ लिखा जा सक
है। यही वह रूप है जिसमें परिमेय संख्याएँ व्यक्त की जाती हैं।

एक परिमेय संख्या को ऐसी संख्या के रूप में परिभाषित किया जाता है, जिसे $\frac{p}{q}$ के रूप में व्यक्त किया जा सके, जहाँ p और q पूर्णांक हैं तथा $q \neq 0$ है।

इस प्रकार, $\frac{4}{5}$ एक परिमेय संख्या है। यहाँ $p = 4$ है और $q = 5$ है।

क्या $\frac{-3}{4}$ भी एक परिमेय संख्या है? हाँ, क्योंकि $p = -3$ और $q = 4$ पूर्णांक हैं।

लिए सहज थी जिसे मैं एक संवाद की भाषा में, जिसमें बच्चे और मैं दोनों शामिल हो सकते थे, अनुप्रयोग कर सका।

अवधारणाओं की शब्दावली से उपजने वाली समस्या

गणित विषय में प्रारम्भिक स्तर पर ही आने वाली ज़्यादातर अवधारणाओं के लिए अँग्रेज़ी से हिन्दी में अनूदित या हिन्दी में कम प्रचलित शब्दों का प्रयोग पाठ्यपुस्तक में किया गया है। जैसे– संख्याओं का आरोही एवं अवरोही क्रम, पूर्ववर्ती एवं परवर्ती संख्या, इकाई, दहाई, सैकड़ा, स्थानीय मान, गुणज, भाज्य, अपवर्त्य, गुणनखण्ड, सहचारी या साहचर्य और वितरण गुण, तत्समक अवयव, इस तरह की बहुत-सी शब्दावलियाँ हैं जो हमारी आम भाषा में इस्तेमाल नहीं होती हैं। इस समय बच्चों का भाषाई संसार बढ़ रहा होता है और वे कई सारे नए शब्द व अवधारणाएँ ग्रहण कर रहे होते हैं, पर इन गणितीय शब्दों का कोई सन्दर्भ और जुड़ाव उनके पास की मौजूदा अवधारणाओं से नहीं बन पाता।

> *"किसी नई अवधारणा या शब्द की समझ या अर्थ हमारे मस्तिष्क में तभी बनता है जब वह शब्द या अवधारणा हमारे पास पहले से मौजूद किसी अवधारणा से जुड़ाव बना पाए।"*
>
> – रोहित धनकर

ये शब्द अर्थ निर्माण की सहज प्रक्रियाओं (सन्दर्भ में या साथ आए शब्दों के ज़रिए नए शब्द का नज़दीकी अर्थ समझने का बुनियादी तरीक़ा) से नहीं गुज़रते तब इन शब्दों से जुड़े नियम-क़ायदों को याद करना ही विकल्प रह जाता है। याद रखने के लिए भी इन शब्दों और अवधारणा की बारम्बारता ज़रूरी है, परन्तु बच्चों पर जल्द ही दूसरी अवधारणा को सुनने का दबाव आ जाता है। इस तरह अर्थ और समझ विहीन शब्दावलियों के साथ गणित विषय कक्षा-दर-कक्षा आगे बढ़ता चला जाता है। इसका एक उदाहरण लघुत्तम समापवर्त्य और महत्तम समापवर्तक निकालना जानना है। पर यह क्या है? इन्हें कहाँ इस्तेमाल करना है? यदि हमारे सामने यह प्रश्न आ जाए कि सबसे छोटी वह कौन-सी संख्या है जो 1 से लेकर 10 तक सभी संख्याओं से विभाजित हो जाती हो? इस प्रश्न के लिए क्या तुरन्त हमारा दिमाग़ यह कहता है कि यार, इसके लिए 1 से लेकर 10 तक की सभी संख्याओं का लघुत्तम समापवर्त्य (एलसीएम) ले लो।

गणित के मूल तत्त्व का शुरुआती गणित सिखाने में कमतर इस्तेमाल

गणित शिक्षण की स्कूली प्रक्रिया में प्रारम्भिक स्तर पर ही तर्क करने और सोचने के अवसर कम ही उपलब्ध होते हैं। टीचर ज़्यादातर गणित हल करने के तरीक़े और सूत्र के अनुप्रयोग बताते हैं। गणित शिक्षण में यह शार्टकट की घुसपैठ किस वजह है, यह शोध का विषय है। मेरी समझ में इस शार्टकट को अपनाने के तीन कारण हैं :

1. गणित की पाठ्यपुस्तकें जो प्रश्नावलियों के रूप में तैयार की गई हैं;

2. गणित के शिक्षक जो अपनी पढ़ाई के दौरान सीखे हुए तरीक़ों को ही शिक्षण का आधार बनाए हुए हैं; और

3. गणित का पाठ्यक्रम जो माध्यमिक स्तर तक अधिक-से-अधिक अवधारणाओं का परिचय देने की जल्दबाज़ी का द्योतक है।

अभी हाल के वर्षों में आई गणित की पाठ्यपुस्तकों में अवधारणाओं को समझाने के उदाहरण तो रचे हैं (कक्षा 2 से 5 तक की एनसीईआरटी की पाठ्यपुस्तकें), पर इतने वर्षों का परम्परागत तरीक़ों से गणित शिक्षण में बदलाव कम ही हुआ है। हालाँकि, नई किताबें उस भाषा में बच्चों से संवाद करती हैं जो बच्चों के आसपास इस्तेमाल होने वाले गणित में इस्तेमाल होती है। ये बच्चों को कुछ समस्याओं के ज़रिए तर्क करने को भी प्रोत्साहित करती हैं, परन्तु मेरे आसपास के कुछ शिक्षकों का कहना है कि गणित की ये किताब तो क़िस्सों-कहानियों की किताब है। इसमें प्रश्नावली और उत्तरमाला नहीं है हम तो अपने तरीक़े से ही बच्चों को गणित सिखा रहे हैं।

फिर भी सम्भावनाएँ तो हैं

मेरे पास के ही एक स्कूल की कक्षा में शिक्षिका बच्चों को 24 में 5 का भाग देना सिखा रही हैं और इसके लिए शिक्षिका भाग देने का तरीक़ा बताने की बजाय बच्चों के साथ भाग देने के अर्थ पर बात करती हैं। इस बातचीत में वह बच्चों की सामान्य समझ और उनके तर्क को इस्तेमाल करने को प्रोत्साहित कर रही होती हैं। इस प्रक्रिया में बातचीत पहले 24 को समझने पर होती है कि 24 कितना है, फिर वे 5 बराबर हिस्सों में बाँटने, बाँटने के तरीक़ों आदि पर बात केन्द्रित करती हैं। आगे 24 वस्तुओं को 5 बराबर भागों में बाँटने के क्या तरीक़े हो सकते हैं, इसपर बच्चों को सोचने के लिए कहती हैं। उनका मानना है कि किसी गणितीय समस्या को ठीक से समझना और हल के तरीक़े सोचना उन तर्कों की तरफ़ जाने का अवसर देगा जो गणित करने की बुनियाद हैं। गणितीय विचार को अपनाने या उसे आगे ले जाने के लिए उसे स्वयं की सोच प्रक्रिया (चिन्तन) में लाना आवश्यक है।

कक्षा के एक और अनुभव पर बात करना चाहता हूँ।

मैं एक स्कूल में परीक्षा लेने गया। उस दिन गणित का पेपर बच्चों ने हल किया था। पेपर हो जाने के बाद मैंने पेपर में आए सवालों पर उनसे आधा घण्टे बातचीत की।

पेपर में एक सवाल था :

प्रश्न 10. एक दुकानदार ने एक कुर्सी 450 रूपये में खरीदी और 500 रूपये में बेच दी। तो उसका लाभ प्रतिशत ज्ञात कीजिए।

उत्तर → लाभ % = लाभ X 100 / कममूल

50 X 100 / 450 = 500 / 45

= 11.1% Ans

क्रम मूल्य = 450 ₹

विक्रम मूल्य = 500 ₹

लाभ = विक्रम - क्रम = 500 -

= 50 ₹

किसी दुकानदार ने एक कुर्सी 450 रुपए में ख़रीदी और 500 रुपए में बेच दी, तो उसका लाभ प्रतिशत ज्ञात कीजिए।

इस प्रश्न को हल करने के लिए बच्चों ने इस सूत्र का उपयोग किया था।

लाभ प्रतिशत = लाभ × 100 / क्रय मूल्य

सूत्र का उपयोग कर लाभ प्रतिशत की गणना कर लेने वाले इन बच्चों की समझ परखने के लिए मैंने इस प्रश्न को लेकर उनसे आगे बात की। मैंने पूछा, "प्रतिशत लाभ का क्या मतलब है?" बच्चे चुप रहे। फिर मैंने प्रतिशत और लाभ को अलग-अलग किया। मैंने पूछा, "लाभ का मतलब क्या है?" सबने एक साथ कहा, "फ़ायदा।" "अच्छा, तो अब प्रतिशत का मतलब क्या है?" उन्हें लाभ, क्रय मूल्य, बिक्री मूल्य के बारे में तो पता था परन्तु 'प्रतिशत' शब्द के अर्थ के बारे में उनकी कोई व्याख्या नहीं थी, वे एक चिह्न के रूप में ही उसे जानते थे और प्रतिशत लाभ का सूत्र उन्हें पता था।

इस प्रश्न को समझने पर मैंने बात केन्द्रित की।

'दुकानदार ने 450 रुपए की कुर्सी 500 रुपए में बेची।' इस कथन को सभी बच्चे समझ रहे थे। आगे मैंने पूछा, "450 रुपए की कुर्सी 500 रुपए में बेचने पर लाभ होगा कि हानि।" बच्चों ने एक साथ कहा, "लाभ।"

मैंने पूछा, "कितना लाभ हुआ?"

सभी ने कहा, "50 रुपए।"

यह गणना वे मन में कर सकने में सक्षम थे।

मैंने कहा, "यदि सवाल यह होता कि 450 रुपए की सायकिल 500 रुपए में बेचने पर कितना लाभ होगा, तो इसका उत्तर क्या होता?"

बच्चों ने कहा, "50 रुपए।"

"पर हमें प्रतिशत लाभ निकालना है।"

मैंने उन्हें प्रतिशत का मतलब बताया– 100 रुपए पर, हर 100 पर

यहाँ प्रतिशत लाभ का मतलब है– हर 100 रुपए पर होने वाला लाभ

मैंने कहा, "इस सवाल में हमें पता है कि 450 रुपए पर 50 रुपए लाभ हुआ है। प्रतिशत लाभ का मतलब हर 100 पर हुआ लाभ है। इस प्रश्न में हमें 100 पर कितना लाभ हुआ है यह पता नहीं है, पर हमें यह पता है कि 450 रुपए पर 50 रुपए लाभ हुआ है। इससे आगे कैसे सोचें?"

बच्चों ने इस बातचीत में आपने तर्क रखे।

"450 रुपए पर 50 रुपए लाभ हुआ तो यदि हम 450 का आधा 225 करते हैं तो लाभ भी 50 का आधा हो जाएगा। यानी 225 रुपए पर 25 रुपए लाभ हुआ। हमें 100 रुपए पर लाभ पता करना है तो अब 225 को भी आधा कर दें। इस प्रकार, 112.5 रुपए पर लाभ 25 का आधा 12.5 रुपए होगा। तो क्या हम मान लें कि 100 रुपए पर 10 रुपए लाभ हुआ होगा।"

कुछ ने "हाँ" कहा। पर तभी एक लड़की बोली, "नहीं सर, 100 रुपए पर 10 लाभ होगा तो 400 रुपए पर 40, और 50 रुपए पर 5 रुपए यानी 450 रुपए पर 45 रुपए लाभ होगा। जबकि प्रश्न में 450 रुपए पर 50 रुपए लाभ हुआ है।"

तर्क के आधार पर वे बता पाए कि 100 रुपए पर लाभ 10 रुपए से थोड़ा अधिक और 12.5 से कम होगा। यह उत्तर पूरा ठीक नहीं है, पर इस उत्तर की तार्किक अनुभूति उन्हें है और वे सोचने के हर अगले स्तर पर पिछले निर्णय या तर्क का सहारा ले रहे थे।

बच्चों के साथ मेरे इस अनुभव के आधार पर मैं कह सकता हूँ कि बच्चे अपनी समझ का उपयोग तभी करेंगे जब उनके सोचने की प्रक्रिया में हर कड़ी दूसरे से जुड़ रही हो। गणित शिक्षण प्रक्रिया में इन तार्किक कड़ियों का बच्चों

के पास बने रहना और इनसे नई कड़ियाँ बनाना ही उन्हें गणित समझने में सक्षम बनाता है और सीखने का हौसला व आनन्द देता है।

मेरा मानना है कि गणित में सूत्र किसी गणना को शीघ्र करने के लिए हैं। किसी अवधारणा निर्माण के वक़्त ही सूत्र का प्रयोग करना उस अवधारणा को समझने के मौक़े को अतिक्रमित कर देता है। जैसे– क्षेत्रफल क्या है? इसे समझे या समझाए बिना ही हम आयत और वर्ग का क्षेत्रफल निकालने वाले सवाल बच्चों से हल करवाते हैं।

आयत का क्षेत्रफल = लम्बाई × चौड़ाई

इस सूत्र को याद करा देने के बाद इस तरह के प्रश्न हल कराए जाते हैं जिनमें किसी कमरे की लम्बाई और चौड़ाई की माप देकर उस कमरे का क्षेत्रफल निकलना होता है।

क्षेत्रफल क्या है? यह लम्बाई में चौड़ाई का गुणा करने से कैसे निकल आएगा? इस सबकी बात नहीं होती। दूरी को तो हम लम्बाई के पैमाने से माप सकते हैं, पर किसी क्षेत्र को दूरी के पैमाने (लम्बाई और चौड़ाई की माप) से कैसे नाप लिया गया? दो दूरियों की माप का आपस में गुणा करने से क्षेत्रफल की माप निकल आना आश्चर्य की बात है, पर इस आश्चर्य का बोध या अहसास हम शिक्षकों के संज्ञान में नहीं आता। अगर हम समझकर गणित करना, गणित सीखना और सिखाना चाहते हैं तो हमें अपने सीखे हुए गणित पर पुनः विचार करना चाहिए और हर उस स्टेप या तथ्य, जो हमने नियम के तौर याद किया है, के लिए तर्क बनाने होंगे। इससे हमें गणित को समझने और समझाने की एक ऐसी भाषा मिलेगी जिसमें हमारे हर क्यों का जवाब होगा और यह जवाब ख़ुद को अर्थ देने वाला होगा। हम शिक्षकों के लिए तो यह बहुत ज़रूरी है कि जिस गणित को हमने प्रतीकों और सूत्र के ज़रिए ही समझा है, उसे भाषा के ज़रिए समझें। ऐसी भाषा जो हमें ख़ुद के लिए अर्थ या समझ देती हो। जैसे– यहाँ इस सूत्र में हम ख़ुद से पूछ सकते हैं कि क्यों लाभ में 100 का गुणा करने के बाद उसमें क्रय मूल्य का भाग देने से प्रतिशत लाभ मिल जाएगा।

मुकेश मालवीय पिछले दो दशक से भी ज़्यादा समय से स्रोत शिक्षक के रूप में सरकारी और ग़ैर–सरकारी भूमिकाओं में सक्रिय हैं। कक्षा अनुभवों को लेकर सतत लिखते रहते हैं। वर्तमान में अनुसूचित जाति विकास विभाग के शासकीय आवासीय ज्ञानोदय विद्यालय, होशंगाबाद (मध्य प्रदेश) में शिक्षक पद पर कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mukeshmalviya15@gmail.com

गणित क्यों और कैसे ?

हृदय कान्त दीवान

इस लेख में गणित विषय पर हृदय कान्त दीवान से हुई शिक्षकों की बातचीत को प्रस्तुत किया गया है। गणित सीखने-सिखाने से सम्बन्धित शिक्षकों के गहरे और माक़ूल सवाल, यथा– गणित से डर क्यों लगता है, गणित में मूर्त और अमूर्त को कैसे समझें, गणित में ठोस वस्तुओं का उपयोग कहाँ करें, आदि पर विस्तार से बातचीत है। सं.

आज की बातचीत का विषय है– गणित क्यों और कैसे? कुछ सवाल साझा किए गए थे, मैं उनसे ही शुरू करता हूँ।

पहला सवाल था, गणित से डर क्यों लगता है? इसके कुछ कारण समझ में आते हैं। एक कारण जो अकसर कहा भी जाता है और कुछ हद तक सही भी है वह यह, कि गणित एक अमूर्त विषय है, ये ज़िन्दगी में उस तरह से नहीं आता है जिस तरह बाक़ी विषय आते हैं। इसके कक्षाई स्वरूप और जो स्वरूप ज़िन्दगी में दिखता है इन दोनों में बहुत फ़र्क़ है और इसलिए गणित मुश्किल लगता है। दो और कारण हैं और ये एक दूसरे से जुड़े भी हैं। पहला कारण, गणित इसलिए भी मुश्किल है क्योंकि इसे प्रतिष्ठा का विषय माना जाता है, और जिस तरह से ये पढ़ाया जाता है उस वजह से भी यह बहुत मुश्किल हो जाता है। साथ ही पढ़ाने वाले और पूरा समाज ये मानता है कि गणित मुश्किल है, इस वजह से बच्चों को पहले से ही लगने लगता है कि यह मुश्किल है। इस डर के माहौल के कारण शुरू से ही हम ये समझने लग जाते हैं कि इस विषय से डर-डर कर चलना है। इस पहले से मौजूद डर के चलते सीखने और सिखाने की प्रक्रिया स्वाभाविक नहीं हो पाती है। मूलतौर पर यही होता है कि किसी तरह से ये याद कर ले, सवालों का हल सीख ले ताकि परीक्षा में पास हो जाए। गणित के बारे में ये धारणाएँ, (पहला) ये मुश्किल है; और (दूसरा) ये स्वाभाविक जीवन से जुड़ा हुआ नहीं है, दोनों ही शायद सही नहीं हैं।

इस प्रश्न पर विचार करें कि तीन या चार साल का बच्चा गणित में क्या-क्या जानता है। ध्यान से सोचने और देखने पर पाते हैं कि इस उम्र के बच्चे को गणित में बहुत कुछ आता है। जैसे उसको पता है कि उसके पास ज़्यादा है या किसी और के पास ज़्यादा है, और ये ज़्यादा सिर्फ़ गिनती में नहीं, आकार, वज़न में भी हो सकता है। उसको इन सबका अन्दाज़ा है कि चीज़ों में तुलना के लिए इनका आकार, वज़न देख सकते हैं और उनको गिन सकते हैं। हालाँकि, अगर कुछ उलझे हुए प्रश्न पूछे जाएँ और ऐसे सवाल बनाए जाएँ जो सीधे-सीधे न हों, तो हो सकता है वह भ्रमित हो जाए। जैसे पियाजे ने दिखाया कि वह संरक्षण में उलझ जाता है लेकिन सहज विकास के स्तर में देखें तो स्वाभाविक तौर पर सात साल का बच्चा संरक्षण कर पाता है। चार साल के बच्चे को अगर कहा जाए कि तुम ये चीज़ उठा लाओ और वो चीज़ ऐसी हो जो उसकी पहुँच के बाहर भी हो, तो भी बच्चा वो चीज़ याद करके, उसका रास्ता याद

करके और उस रास्ते तक कैसे पहुँचना है, यह तय करके वहाँ पहुँच जाता है। यदि वह चीज़ कुछ ऊँचाई पर हो तो वहाँ तक कैसे पहुँचना है, इसके लिए जो भी आसपास उपलब्ध है उसको इस्तेमाल करके वह कोशिश करता है कि उस चीज़ तक पहुँच जाए जहाँ उसे जाना है। ये नहीं कह सकते कि चार साल के छोटे बच्चे के पास जगह की समझ नहीं है। ऐसे बहुत-से और उदाहरण भी मिलते हैं। उसे थोड़ा बहुत गिनना आता है, जोड़ना, घटाना आता है और जगह की समझ भी है। वो आकार समझता है। यह भी कि वो चीज़ों को श्रेणियों में बाँटकर गिन-गिन कर बता सकता है कि इसमें कितनी चीज़ें हैं, फलाँ वस्तु कितनी हैं और फलाँ कितनी, और दोनों कुल मिलाकर कितने हैं। माने एक शुरुआती स्तर पर डाटा को सॉर्ट (sort) करके चीज़ों को अलग-अलग श्रेणियों (categories) में रखना भी उसे आता है। अगर वो क्रिकेट या फुटबॉल का शौक़ीन है तो वो ऐसे आँकड़े भी जानता है कि कितने मैच हुए, किसने कितने मैच जीते और जीतने पर किसको कितने अंक मिलते हैं तो कुल कितने अंक हो गए। कुल मिलाकर वह आँकड़ों के प्रबन्धन के प्रपंच सीखना शुरू कर चुका होता है और इसका प्रमाण भी वह देता रहता है। उसे गणित में क्या-क्या आता है, यह समझना बहुत ज़रूरी है।

गणित सीखने के लिए तार्किक सम्बन्ध बहुत ज़रूरी हैं, और ऐसे तार्किक सम्बन्ध जो आगे सिद्ध करने तक ले जाते हैं, उस तरह के तार्किक सम्बन्ध भी वो बनाने लगता है। हालाँकि, अभी संख्याओं और आकृतियों के सम्बन्ध में इतने तार्किक सम्बन्ध नहीं बना पाता, लेकिन जिन मूल चीज़ों, परिस्थितियों से वो रूबरू होता है उसमें तार्किक सम्बन्ध बनाने लगता है। इस तरह गणित की बहुत सारी शुरुआती समझ स्कूल आने से पहले ही बन जाती है।

अगर कोई बच्चा ऐसे घर में रहता है जहाँ दुकान चलती है तो उसे उस दुकान का पूरा गणित; कौन-सी चीज़ कितने की आती है, और उस चीज़ का वज़न के हिसाब से कितना दाम होगा, यह सब वह जानता है। इसमें फिर दो बातें छिपी हैं, एक आसपास गणित है जिससे बच्चा या इंसान ख़ुद-ब-ख़ुद रूबरू होता है और सीखता रहता है। दूसरी बात यह कि गणित सीखने की प्रक्रिया एक तरह से स्वाभाविक परिस्थितियों में उपलब्ध है, और बच्चा उन स्वाभाविक परिस्थितियों में जो करने की ज़रूरत है उसको करते हुए सीखता रहता है। इसके मायने यह हैं कि गणित का डर नैसर्गिक डर नहीं है।

चित्र : प्रशान्त सोनी

एक और सवाल था कि क्या कुछ जानवर जिनको थोड़ी बहुत गिनती या मात्रा का एहसास हो जाता है वे गणित जानते हैं, ऐसा कह सकते हैं? जैसे ज़्यादा या कम दुश्मन सामने हैं, दुश्मन कम ताक़तवर है या ज़्यादा, क्या मधुमक्खी फूलों तक पहुँचने का रास्ता जानती है और रास्ते तक पहुँच सकती है? इन जीवों की क्षमता इंसानी क्षमता से फ़र्क़ है और इस बारे में काफ़ी शोध हुए है कि कौन-सा जीव क्या और कहाँ तक सीख सकता है। चिम्पेंजी कहाँ तक गिनती

सीख सकता है और भाषा के कितने शब्द सीख सकता है। इन सबसे यह साफ़ है कि इंसान के बच्चों में चीज़ों को सीखने की क्षमता बहुत अधिक है। इंसान का विकास एक सामाजिक जीव के रूप में हुआ है और उसने साथ रहकर और सहकार से एक दूसरे को अपनी बात समझाने की आवश्यकता के चलते जिस तरह से जीना सीखा है और जिस तरह से उसका उद्विकासी विकास (evolutionary development) हुआ है, उसकी वजह से उसमें ऐसी क्षमताएँ अन्तर्निहित हैं जिनमें ये सब सीखने की सम्भावना बन जाती है। इंसानी ज्ञान की लगातार प्रगति होती रहती है, बढ़ता हुआ यह ज्ञान हम एक दूसरे से भी बाँटते हैं और अगली पीढ़ी को भी देते जाते हैं। माने इंसानी ज्ञान, इंसान की ज्ञान को संचित और हस्तान्तरित करने की क्षमता के कारण बढ़ता जा रहा है। यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि इंसान के पास, ज्ञान साझा करने की, एक दूसरे के साथ मिलकर काम करने की अन्तर्निहित क्षमता है। साथ काम करने में एक दूसरे को समझना, एक दूसरे की समझ को समझना और उसपर टिप्पणी करना पड़ती है क्योंकि व्यक्ति को ख़ुद तय करना है कि कौन-सा तरीक़ा ज़्यादा कारगर होगा। यह सब व्यक्ति को अपनी समझ और सोच को लगातार बनाने के मौक़े प्रस्तुत करते हैं। इन सभी ज्ञान के प्रकारों में गणित का ज्ञान भी है। जैसे-जैसे आवश्यकता पड़ी है लोगों ने साथ काम किया है, वैसे-वैसे गणित का विकास भी और ज़्यादा होता गया। मान लीजिए आपने एक इमारत बनाने के लिए कोई तरीक़ा सोचा, उस तरीक़े को आपको दूसरों को समझाना है कि ये चीज़ ऐसे बनती है, इसके लिए इतनी ज़मीन और सामग्री चाहिए होगी, इमारत का आकार, कैसे बनना चाहिए, इन सबके लिए निर्देश लिखने की ज़रूरत है ताकि और लोग भी उसे बना सकें। इन निर्देशों से शायद यह ज़रूरत महसूस हुई कि उस आकार और माप को कुछ नाम दिया जा सके। भारत में गणित के विकास में बहुत सारी ऐसी बातें इस वजह से हुईं क्योंकि कई तरह की इमारतें बनाई गईं। उन इमारतों को बनाने और सामग्रियों के इस्तेमाल के लिए नियम बनाए गए। यह इमारतें कई तरह की थीं, अलग-अलग आर्थिक व सामाजिक स्तर के लोगों के रहने के लिए, कारीगरों के कार्य के लिए, अलग-अलग ढंग के पूजा-स्थलों व मूर्तियों की स्थापना के लिए, वग़ैरह। हर इमारत में हवा, रोशनी, मज़बूती, साइज़ व अन्य आवश्यकताओं के लिए कुछ बुनियादी उसूल लागू करने की ज़रूरत होती थी और आज भी रहती है। यह काम सुरक्षित व उचित ढंग से हो पाए, इसके लिए कई बातें अनुभव से सीखी गईं जो ख़ुद को अगली रचना के लिए व अन्य को हिदायत देने के लिए आवश्यक थीं। इन्हें ऐसा व्यक्त करना ज़रूरी था कि बहुत-सी बातें संक्षेप में ही कही जा सकें। अतः इसके लिए सूत्र बनाए गए और उन सूत्रों के समझने व समझाने के लिए कुछ और ऐसी रचनाएँ कीं जिन्हें याद रखना सम्भव था। इसमें बहुत सारी ऐसी चीज़ें थीं जिनके कारण गणित ज़रूरी हो गया।

> इंसान का विकास एक सामाजिक जीव के रूप में हुआ है और उसने साथ रहकर और सहकार से एक दूसरे को अपनी बात समझाने की आवश्यकता के चलते जिस तरह से जीना सीखा है और जिस तरह से उसका उद्विकासी विकास (evolutionary development) हुआ है, उसकी वजह से उसमें ऐसी क्षमताएँ अन्तर्निहित हैं जिनमें ये सब सीखने की सम्भावना बन जाती है।

यहाँ से आगे भी लोगों ने सोचा तो कई नई बातें, नियम और प्रमेय निकलकर आईं। इसी तरह तारों की गणनाओं से भी बहुत-सी गणित की शुरुआत हुई क्योंकि उसमें पूर्वानुमान करना था कि कौन-सा तारा, ग्रह कब और कहाँ होगा? कलन (calculus) का विकास इस वजह से हुआ क्योंकि ये जानना था कि किसी चीज़ के परिवर्तन की दर क्या है? परिवर्तन

की दर को समेकित करके पूरा कितना हुआ, इसको जोड़ने के लिए समाकलन की ज़रूरत पड़ी। गणित का विकास इसपर भी निर्भर करता है कि ज़रूरत किस क़िस्म की है, और उस ज़रूरत के लिए क्या करना पड़ेगा। यानी गणित ज़रूरत से संचालित होता है, यह भी कह सकते हैं। दूसरी ओर, ये संगीत की तरह भी बनता है क्योंकि इसमें भी एक तरह का मज़ा है। जैसे लोग नई-नई धुन और नए-नए राग बनाते हैं, नए-नए सुरों को एक साथ जोड़ते हैं, उसी तरह से गणित में भी लोग नए-नए गणितीय ऑब्जेक्टों (जैसे काल्पनिक संख्याएँ, नए-नए बीजीय व्यंजक) सोचते हैं, उन ऑब्जेक्टों के आपस में सम्बन्ध ढूँढ़ते हैं, उन सम्बन्धों से कुछ नया बनाते हैं। वे काफ़ी सारी गणितीय रचनाएँ करते हैं, जो अपने-आप में उन लोगों को बहुत मज़ेदार लगती हैं जो उससे जूझ पाते हैं। लेकिन गणित और संगीत दोनों में ही सामान्य गणित और सामान्य संगीत से आगे बढ़ने के लिए और कोई नई चीज़ गढ़ने के लिए काफ़ी बुनियादी तैयारी की ज़रूरत होती है। संगीत में किसी के द्वारा पहले गाए हुए गीत को दोबारा गा देना काफ़ी नहीं है। अगर नया गीत गाना है तो बुनियादी सुरों में नए सम्बन्ध ढूँढ़कर कुछ नया बनाना पड़ेगा और संगीतज्ञ एवं गायक यही करते हैं। इसी तरह से गणितज्ञ भी पहले से उपलब्ध प्रमेयों के आधार पर ऑब्जेक्टों के बीच सम्बन्ध ढूँढ़ते हैं, ऑब्जेक्टों को नई परिस्थिति में लागू करने का प्रयास करते हैं जिससे नई चीज़ें सामने आती हैं। तो गणित का एक गुण यह है कि गणित खोजबीन और उठापटक की चीज़ भी है और यह उठापटक व खोजबीन हमें नया गणित भी देती है एवं हमारी गणितीय क्षमता को बढ़ाती भी है। इसमें खोजबीन को सीखने वाले की गणितीय समझ, उसकी गणितीय ऑब्जेक्टों की जानकारी के अन्तर्गत ही रचित किया जाए तो सीखने वाले को नया खोजने में मज़ा भी आता है और सीखना रोचक भी बन जाता है।

चित्र : प्रशान्त सोनी

अभी तक की बातचीत के मुख्य बिन्दु संक्षिप्त में रखें तो गणित इंसानी ज्ञान का एक हिस्सा है। इस ज्ञान के हिस्से के ख़ास गुण ये हैं कि ये अमूर्त ऑब्जेक्टों का इस्तेमाल करता है और उन अमूर्त ऑब्जेक्टों, नियमों के साथ नई रचनाएँ बनाता है और कोशिश करता है कि उन रचनाओं से कोई नई चीज़ बन सके। इसका एक मुख्य उद्देश्य, जिस वजह से इसकी शुरुआत भी हुई, यह था कि इंसानी जीवन में हम कुछ बेहतर कर सकें, ऐसे कुछ आकार बना सकें जो ज़्यादा टिकाऊ (stable), ज़्यादा मज़बूत हों, या फिर ऐसे कुछ आकार सोच सकें जिनमें ज़्यादा-से-ज़्यादा चीज़ आ सके और फिर हम ऐसे आकार बना सकें जो संचालन में मदद कर सकें। आम जीवन को बेहतर बनाने का हमारा तकनीकी और विज्ञान के माध्यम से

जो प्रयास रहा है उसमें गणित की एक प्रमुख भूमिका रही है जो उतनी उजागर नहीं है। दूसरा परिमाण (quantity) की कल्पना के लिए गणित संख्या का ढाँचा देता है जो इंसानी विकास के लिए बहुत ज़रूरी है। इसलिए यह कहना, कि गणित अमूर्त है, एक हद तक ही सही है क्योंकि उसका उपयोग काफ़ी मूर्त है और हमें हर समय दिखता है। इसकी प्रकृति की ख़ासियत ये भी है कि इसमें प्रामाणिक ज्ञान मानने का आधार न तो मापन है, न ही किसी व्यक्ति की राय। बल्कि वो ऐसी तार्किक संरचनाएँ हैं जो उस चीज़ को आपको सिद्ध करके दिखा सकती हैं। आप कुछ मान्यताओं, कुछ ऑब्जेक्टों को लेकर चलते हैं फिर इन सबको मिलाकर आप तार्किक रचनाएँ करते हैं वो मुख्यतौर पर गणित को रचती हैं और इन रचनाओं को करने के दौरान आप लगातार नए ऑब्जेक्टों भी बनाते हैं और उन ऑब्जेक्टों के बीच सम्बन्ध भी ढूँढ़ते हैं। कई बार आप इन ऑब्जेक्टों को नए गुण भी दे देते हैं जिससे कि आप उसको और ज़्यादा व्यापक कर सकें।

ये ऑब्जेक्ट, इनकी परिभाषाएँ और इनपर सोचे गए नियम, एक हद तक मनमाने (arbitrary) ही मिलेंगे। जैसे कि, भाषा में शब्दों का चुनाव arbitrary है कि किसी चीज़ को टेबल क्यों कहते हैं, कुछ और क्यों नहीं कह देते हैं। वैसे ही इसमें भी संख्या के नाम उस संख्या के साथ जुड़े नहीं हैं लेकिन हमने वो नाम दिए हैं।

यह तर्क किया जाता है कि पूर्णांक क्या है और पूर्णांक में ज़ीरो जोड़ते हैं, प्राकृतिक संख्याओं में ज़ीरो नहीं जोड़ते हैं, पूर्ण संख्याओं में ज़ीरो जोड़ते हैं, ये क्यों करते हैं? 3/2 को भी क्यों भिन्नात्मक संख्या मानते हैं? भिन्नात्मक संख्याओं को उचित भिन्नात्मक संख्याओं तक ही क्यों नहीं रखते हैं। या ये क्यों कहते हैं कि '1' विषम संख्या तो है लेकिन वो अभाज्य / रूढ़ संख्या नहीं है, क्योंकि रूढ़ संख्याओं की परिभाषा कहती है कि वह एक ऐसी संख्या है जिसके सिर्फ़ दो ही गुणनखण्ड होते हैं। ये सब दर्शाता है कि ये चुनाव हमने अपने ढंग से गणित रचने के लिए किया है। इसको अलग ढंग से परिभाषित करने पर अलग रचना बनेगी। गणित में कुछ तार्किक नियम हैं। ये तार्किक नियम आपने सहज बुद्धि से लिए हैं, जैसे–A यदि B से बड़ा है और B, C से बड़ा है तो A, C से बड़ा होगा। इसी मान्यता के आधार पर आप पूरा-का-पूरा गणित रचते हैं। अगर इस मान्यता को लेकर नहीं चलेंगे तो जो गणित बनेगा वो बिलकुल अलग बनेगा, और ये बात, कि अगर A, B के बराबर है और B, C के बराबर है तो A, C के बराबर होगा, भी गणित के लिए बुनियादी मान्यता है, इसको नहीं मानेंगे तो गणित बहुत आगे नहीं बढ़ सकता। कुल मिलाकर गणित कुछ ऑब्जेक्टों, नियमों और कुछ बनाए गए सिद्धान्तों के आधार पर आगे चलता है और इन सभी चीज़ों के आधार पर नए-नए तार्किक सम्बन्ध और तार्किक रचनाएँ बनाता रहता है और इसका इस्तेमाल हम हर जगह करते हैं।

सवाल है कि गणित क्यों सिखाएँ? गणित इसलिए सिखाएँ क्योंकि ये हमारे दिमाग़ को तीव्र करता है, तार्किक ढंग से सोचने के लिए तैयार करता है और हमारी गणितीय क्षमता का विकास करता है जिसमें जगह की, संख्याओं और तार्किक सम्बन्धों की बेहतर समझ शामिल है।

अगला सवाल है कि गणित क्यों सिखाएँ? गणित इसलिए सिखाएँ क्योंकि ये हमारे दिमाग़ को तीव्र करता है, तार्किक ढंग से सोचने के लिए तैयार करता है और हमारी गणितीय क्षमता का विकास करता है जिसमें जगह, संख्याओं और तार्किक सम्बन्धों की बेहतर समझ शामिल है। इस बेहतर समझ के चलते जब हम ज़िन्दगी में व्यवहार करेंगे, अपने आम जीवन में व्यवहार करेंगे तो उससे हमारी निर्णय लेने की क्षमता

या किसी परिस्थिति को विश्लेषित करने की क्षमता बढ़ जाएगी। जैसे– मान लीजिए आपको डाटा हैण्डलिंग (data handling) की, सम्भाव्यता की समझ है तो आप लॉटरी पर पैसा नहीं लगाएँगे। आप कहीं भी जाकर जुआ नहीं खेलेंगे क्योंकि आपको ये समझ आ जाएगा कि जो जुआ खिलवा रहा है उसको पता है लगभग 80-90 फ़ीसदी लोग हारेंगे, और अगर आप

चित्र : प्रशान्त सोनी

एक-दो बार जीत भी जाते हैं तो अन्ततः तय है कि आपको हारना है। आप बाज़ार में हो रहे परिवर्तनों और उनके पैटर्न को समझ सकते हैं कि कब किसी चीज़ को बेचना है, कब रखना है। दुकान है तो कौन-सा सामान कब मँगवाना है, कितना मँगवाना है, ये सब दुकानदार करते हैं लेकिन आप अगर बेहतर गणित जानते और उसको इस्तेमाल करते हैं तो आप ज़्यादा बेहतर कर सकते हैं। महत्त्वपूर्ण बात जो सोचने की है, वह यह कि क्या हमारी गणित की कक्षाओं में उस गणित के उपयोग की सम्भावना बनती है जो बच्चों के जीवन में है। क्योंकि गणित में रुचि बनाने का एक बहुत महत्त्वपूर्ण रास्ता ये हो सकता है कि बच्चों और माता-पिता को लगे कि ये हमारे काम की चीज़ है। बच्चे माता-पिता के साथ, समाज में अन्य लोगों के साथ उसपर चर्चा कर पाएँ, क्योंकि जब तक चर्चा नहीं करेंगे उन्हें दोबारा अभ्यास का मौक़ा नहीं मिलेगा। ये मौक़ा नहीं मिलेगा कि जो ज्ञान स्कूल में सीखा है उसको दोहरा सकें, उसके नए आयाम खोज सकें और उसके लिए नए अभ्यास बना सकें। कई किताबें और *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा, 2005* भी कहती है कि गणित सीखने के लिए ज़रूरी है कि बच्चे ख़ुद सवाल बनाएँ, ख़ुद सोचें कि कैसे वो उन सवालों को हल कर सकते हैं जो उन्होंने पहले नहीं किए हैं।

दूसरी बात यह कि घर पर बच्चों के साथ गणित में कैसे काम कर सकते हैं? पहला यह कि गणित को हौवा नहीं बनाना चाहिए और उसको किताब व कॉपी से बाहर निकालकर आसपास के जीवन में देखना चाहिए। यह देखना चाहिए कि बच्चा गणित को एक खोजबीन का विषय माने और यह देख पाए कि कैसे कुछ रोचक कार्य उससे किए जा सकते हैं। रामानुजन और हार्डी की कहानी आपने सुनी होगी जिसमें रामानुजन ने गाड़ी के नम्बर को देखकर एक ऐसी बात बताई जो उसके लिए अजूबा थी। रामानुजन ऐसा इसलिए कर पाया क्योंकि वो लगातार संख्याओं से खेलता था, वो यह देखने की कोशिश करता था कि संख्याओं का वर्ग करें

या उनको जोड़ें या उनको घन में बनाएँ और उनको जोड़ें या घटाएँ, उनका पूरा घन देखें तो उससे क्या संख्याएँ बनती हैं और इसी से वो कई नए पैटर्न देख पाया।

आकृतियों में भी बहुत-से पैटर्न देख सकते हैं। टैनग्राम (tangram) से विभिन्न आकृतियाँ बनानी चाहिए। उनमें एक जैसे टैनग्राम को जोड़कर वापस वर्ग बनाना तो है ही, पर उसके अलावा भी बहुत सारी चीज़ें की जा सकती हैं, जैसे– नई-नई आकृतियाँ बनाना और उनको अलग-अलग ढंग से रख कर उनका अध्ययन करना जिससे यह देखा जा सके कि जीवन में ऐसी आकृतियाँ कहाँ-कहाँ मिलती हैं। इनपर काम करते हुए ये भी देख पाएँगे कि एक त्रिभुज को घुमा-फिरा कर रखने से उस त्रिभुज का आकार भी अलग प्रतीत होता है। यह भी कि सिर्फ़ समकोण त्रिभुज या समद्विबाहु या समबाहु त्रिभुज ही हो ऐसा नहीं है, बल्कि ऐसे भी त्रिभुज होते हैं जिनकी तीनों भुजाएँ अलग-अलग हों और उसके सभी कोण न्यूनकोण हों। यह भी देख सकते हैं कि कितनी तरह के त्रिभुज बनाए जा सकते हैं, त्रिभुज को अलग-अलग ढंग से घुमाने (rotate) पर वह कैसा दिखता है उससे आप अपने आसपास की जगह में आकृतियों को पहचानने में सक्षम बन सकते हैं। तीन से अधिक भुजाओं वाली आकृतियों, जैसे चौकोन और बहुभुज (polygon) को लेकर भी ऐसा किया जा सकता है। अकसर वर्ग को एक ही तरह से दर्शाया जाता है। लेकिन वर्ग को किसी भी कोने पर दिखाएँगे तो वो वैसा सीधा नहीं दिखेगा, उसको 45 डिग्री पर घुमाने पर दो सिरे ऊपर-नीचे आ जाएँगे और दो सिरे क्षैतिज (horizontal) आ जाएँगे, तब वर्ग, सामान्य वर्ग से बहुत अलग दिखेगा। एक गणित की खोजबीन और उसमें लगातार परिवर्तन करके देखते रहना और दूसरा उसको ज़िन्दगी में ढूँढ़ते रहना। ज़िन्दगी में ढूँढ़ते रहने के हर घर में अलग-अलग तरह के उदाहरण हो सकते हैं और बच्चे को ऐसे टास्क (task) दिए जा सकते हैं कि वो स्कूल में सीखी गई गणित का इस्तेमाल कर सके। जब वो ऐसा करना शुरू करेगा तो अपने गणित के ज्ञान से वह उस टास्क को भी बेहतर कर सकेगा। गणित में रुचि विकसित करना गणित को खोजबीन का माध्यम, डर रहित और घर में इस्तेमाल करने से ही सबसे ज़्यादा हो सकता है। यहाँ स्कूल और घर दोनों को एक साथ सोचना पड़ेगा कि गणित को बच्चे के सामने किस तरह से प्रस्तुत किया जाए या कक्षा प्रक्रियाएँ किस तरह की हों जिनसे बच्चों के पास ऐसे टास्क हों जो वे घर जाकर कर सकें। गणित सिखाना मूलतौर पर सार्थक होना चाहिए, बच्चे के जीवन से जुड़ा होना चाहिए, ऐसा होना चाहिए जिसमें उसको कुछ करने का मौक़ा हो, जिसमें वो कुछ नया कर सके और उसका कुछ योगदान हो सके। सिर्फ़ उन सवालों को करते रहना, निकालते रहना जिनका उत्तर किसी को मालूम है, उस उत्तर को नहीं पाने पर डाँट खाना, यह सब गणित के प्रति रुचि पैदा करने का बेहतर साधन नहीं है। गणित में रुचि पैदा करना है तो उसमें मज़ा लेने के लिए सिखाने की ऐसी परिस्थितियाँ लाज़मी होंगी जो खुली हों, जिसमें बच्चा नए सवाल बनाए, जो वो जानता है उसको नई परिस्थितियों में इस्तेमाल करे और ख़ुद रास्ते तय करे कि आगे क्या किया जाना चाहिए।

अगर गणित में रुचि पैदा करना है तो उसमें मज़ा लेने के लिए सिखाने की ऐसी परिस्थितियाँ लाज़मी होंगी जो खुली हों, जिसमें बच्चा नए सवाल बनाए, जो वो जानता है उसको नई परिस्थितियों में इस्तेमाल करे और ख़ुद रास्ते तय करे कि आगे क्या किया जाना चाहिए।

दो-तीन और मसले हैं। एक बहुत बड़ा भ्रम मूर्तता और अमूर्तता के बारे में है। पिछले 20

सालों में ऐसा माना जाने लगा है कि बिना वस्तुओं के गणित सिखा ही नहीं सकते। अगर वस्तु इस्तेमाल कर दी, खेल करवा दिए तो इसका मतलब है कि बच्चा गणित सीख गया। कई तरह की गणितीय प्रयोगशालाओं, मॉडल की बात होती है। कोणों के लिए, भिन्नात्मक संख्याओं, आकारों, और पाइथोगोरस प्रमेय को सिद्ध करने के लिए मॉडल बना सकते हैं। और

चित्र : प्रशान्त सोनी

इन मॉडल की मदद से बच्चे को मूर्त से अमूर्त की तरफ़ ले जा सकते हैं। लेकिन अमूर्त की ओर ले जाने का अर्थ क्या है? अमूर्त है क्या? 5 अमूर्त है या मूर्त, सातवीं कक्षा के बच्चे के लिए 9/11 को 20 लिखना मूर्त है या अमूर्त, क्योंकि इस सवाल पर विचार नहीं करेंगे तो फिर आप पहली कक्षा में बच्चों को उस तरह की मूर्त चीज़ों के बारे में ही उलझाते रहेंगे जो उनको पता हैं और वो उससे बहुत ज़्यादा कर सकते हैं। ऐसा करके आप लगातार बच्चे की क्षमता को कम आँक रहे हैं और इस वजह से कक्षा में उसे ऐसा महसूस होता है कि शायद उसको कुछ नहीं आता। चार-पाँच साल के बच्चे जो घर में नौ, दस तक अच्छी तरह गिन सकते हैं, पूरा हिसाब-किताब कर सकते हैं उनको हम एक से नौ तक गिनना सिखाते हैं। ये बात सही है कि उनको अंक लिखना नहीं आता, लेकिन नौ तक जोड़ना-घटाना सब आता है। प्रश्न ये है कि पहली कक्षा में एक चीज़ देना, फिर दो का समूह दिखाना, फिर तीन का और कई बार ये इस तरीक़े से भी किया जाता है कि बच्चे को पहले और एक में व दो और दूसरे में भ्रम हो जाता है। एक समूह का मान है और एक क्रम है (cardinal और ordinal) उसमें भी बच्चा उलझने लगता है। सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह समझने की है कि गणित के ऑब्जेक्ट अन्ततोगत्वा अमूर्त हैं और हमें बच्चे को अमूर्तता की ओर ले जाना है यह स्पष्टता होनी ज़रूरी है, नहीं तो हम उसको मूर्त में ही उलझाने की कोशिश करते रहेंगे।

मूर्त का इस्तेमाल तब ही करना चाहिए जब बच्चा बग़ैर मूर्त के अमूर्त तक जाने में असक्षम हो। उस अमूर्तता से और आगे बढ़ने के लिए अगर किसी मूर्त मॉडल की ज़रूरत है तो वो विकसित किया जाए। वो मूर्त मॉडल ऐसा होना चाहिए जो बहुत जल्दी हटा दिया जाए, जिससे उसपर निर्भरता न बने। इकाई, दहाई का उदाहरण लेते हैं। इसमें मूर्त मॉडल भी लेते हैं और चित्र का मॉडल भी। बच्चों को बताते हैं कि एक लाइन वाली कॉपी में इस खाने के ऊपर इकाई, इसके ऊपर दहाई और इस

तीसरे खाने पर सैकड़ा लिख लो। फिर बच्चों को सवाल देते हैं, उनको समझाते हैं कि पहले इसको जोड़ो, फिर इसको। अगर कोई बच्चा लिखी गई इकाई, दहाई को अनदेखा कर पूरी संख्याओं को जोड़कर बता देता है तो ये कहा जाता है आपको स्तम्भवार ही जोड़ना चाहिए, नहीं तो आप ग़लती कर जाएँगे। कुल मिलाकर आप बच्चे को ये समझा रहे हैं कि ये जो संख्या है, तीन टुकड़ों में बँटी है, और इन तीनों टुकड़ों का एक स्वतंत्र अस्तित्व है।

ये एक तरह से बच्चे को पंगु बना रहे हैं कि वो स्वतंत्र रूप से संख्याओं के बारे में सोच न सके, दो संख्याओं के बारे में मौखिक जोड़ न कर सके और गणित में नए सिद्धान्तों तक और नए संख्या ढाँचों तक पहुँचने में सक्षम न हो सके क्योंकि उसके बाद द्विआधारी (binary) और अष्टकोणीय प्रणाली (octagonal system) या हैक्साडेसिमल सिस्टम (hexadecimal system) समझना बहुत मुश्किल हो जाता है क्योंकि वो डेसिमल सिस्टम (decimal system) में ही उलझकर रह जाता है। फिर बच्चे जब भिन्नात्मक संख्याओं में आते हैं और उनसे 1/2 को 3/5 से जोड़ने को कहते हैं या 3/2 से 3/4 या 7/4 को जोड़ने को कहते हैं तो बच्चे उन स्तम्भों को जोड़कर अलग-अलग लिख देते हैं क्योंकि उनको लगता है कि जब भी संख्याएँ स्तम्भों में लिखी जाती हैं तो उसका मतलब होता है दो अलग-अलग स्तम्भ को जोड़ना है, और अगर उनको ये नियम याद रह जाता है तो कई बार हासिल जोड़ देते हैं, नहीं याद रहता तो वे हर स्तम्भ का जोड़ अलग-अलग लिख देते हैं। ये बिलकुल ही ग़ैर-ज़रूरी मॉडल है।

यदि बच्चे को दो अंक की संख्याओं को समझने की शुरुआत में दिक़्क़त आ रही है तो शायद मूर्त रूप से दिखाने की ज़रूरत हो, लेकिन ज़्यादा समय उसपर लगाने से बच्चे को संख्याओं को पूरी संख्या के रूप में समझने की जो क्षमता आनी चाहिए उसमें ही वो आगे नहीं बढ़ पाता। हम बच्चे के संज्ञानात्मक स्तर को नहीं समझते और बहुत जल्दी ही चाहते हैं कि बच्चा तीन और चार अंक की संख्याओं तक पहुँच जाए। कितनी बड़ी संख्या के साथ काम करना चाहिए, ये इस बात से तय होना चाहिए कि वो कितनी बड़ी संख्या को समझ सकता है। तीन अंक हों, चार हों या पाँच, ये महत्त्वपूर्ण नहीं है, महत्त्वपूर्ण यह है कि वो कुल संख्या का एहसास कर पाए, उसको सोच पाए या ये सोच पाए कि जितना भी बड़ी-से-बड़ी संख्या में सोचूँगा उससे बड़ी संख्या क्या होगी, या क्या इतनी बड़ी संख्या होती है जितनी मैंने अभी देखी ही नहीं है। ख़ास बात यह है कि गणित का अर्थ उन अवधारणाओं को समझना और उनमें सक्षमता हासिल करना है जिनसे कि आप नई चीज़ बना सकें, न कि ज्ञात बातों को याद रखना और ज्ञात मॉडलों को दोहराना। बच्चों को नए मॉडल बनाना आना चाहिए और उसका उपयोग कर पाना चाहिए। अभी मौजूदा मॉडल, व्याख्याएँ लगातार उनके ऊपर थोपने की कोशिश रहती है जिससे बच्चे के पास दोहरा काम हो जाता है। एक आपके बनाए मॉडल को अपनी दृष्टि से सोचकर समझना और फिर उसको उस अवधारणा से जोड़कर देखना जिस अवधारणा को वो समझने की कोशिश कर रहा है और फिर इन दोनों को जोड़कर अपनी समझ बना पाना। गणित में मॉडल का इस्तेमाल, चाहे वो किसी भी अवधारणा के लिए हो, या तो अपर्याप्त है या भ्रामक, या उसकी शुद्धता कई बार ग़लत है।

गणित का अर्थ उन अवधारणाओं को समझना और उनमें सक्षमता हासिल करना है जिनसे कि आप नई चीज़ बना सकें, न कि ज्ञात बातों को याद रखना और ज्ञात मॉडलों को दोहराना। बच्चों को नए मॉडल बनाना आना चाहिए और उसका उपयोग कर पाना चाहिए। अभी मौजूदा मॉडल, व्याख्याएँ लगातार उनके ऊपर थोपने की कोशिश रहती है जिससे बच्चे के पास दोहरा काम हो जाता है।

गणित में मूर्त से अमूर्त का मतलब क्या है? सातवीं कक्षा के विद्यार्थी के लिए दो संख्याओं का जोड़ मूर्त है। जिस भी सवाल का उत्तर एक संख्या के रूप में आता है, वो उसके लिए मूर्त है। जैसे ही उससे ऐसे सवालों की बात करते हैं जिनमें उत्तर एक निश्चित संख्या नहीं है बल्कि बहुत सारी संख्याएँ हो सकती हैं जिसको हमें एक बदलती संख्या के रूप में किसी चर संख्या के साथ दर्शाना पड़ेगा वो उसके लिए अमूर्त होगा। माने उसके लिए जोड़ना, घटाना, गुणा, भाग, समीकरण जो कि संख्याओं से संचालित है, इबारती सवाल, सब मूर्त हैं, लेकिन जैसे ही एक परिवर्तनशील उत्तर सामने आया तो उसके लिए एक अमूर्तता का स्तर दोबारा शुरू होगा। अब इस अमूर्तता को बच्चे के साथ कैसे बाँटना है कि वो उसके लिए मूर्त बन जाए। मूर्त बनाने का अर्थ ये नहीं है कि A के लिए apple दिखा दें और B के लिए banana दिखा दीजिए। मूर्तता का मतलब है कि वो A, B या C के साथ जुड़ी अवधारणा को समझ पाए। और उसके लिए वो एक ठोस अवधारणा हो जाए जिसको वह इस्तेमाल कर सकता है। कई बार कक्षा में हम लोग ये भी कहते हैं कि आप 3A और 4B नहीं जोड़ सकते, क्या केले और सेबों को जोड़ा जाता है? तो आपने यहाँ पर अपनी तरफ़ से एक मॉडल बना दिया A और B के लिए सेब और केले का, और आपको लगा कि आपने ये बच्चे को अच्छा सिद्धान्त समझा दिया कि 3A और 4B को नहीं जोड़ सकते। लेकिन ये जो 3A और 4B हैं, ये apple और banana नहीं हैं क्योंकि A और B तो कुछ भी हो सकते हैं। मॉडल का, मूर्तता का इस्तेमाल ध्यान से होना चाहिए और बच्चों का उस समय जो अमूर्तता का स्तर है उस स्तर के आगे जाने का प्रयास होना चाहिए न कि उनको पीछे घसीटने का। अकसर मॉडल और मूर्त चीज़ों के इस्तेमाल से हम बच्चों की क्षमता को, बच्चे की समझ को कम आँक कर उसको पीछे घसीटने का प्रपंच करते हैं।

> गाँधीजी ने भी कहा था, “आप भाषा और गणित अच्छे–से पढ़ा दें, बाक़ी ज्ञान तो बच्चा ख़ुद हासिल कर लेगा।” उस तरह की क्षमता आने के लिए जिस तरह के संख्या–ज्ञान की हम बात कर रहे हैं उसकी कल्पना हमें करनी पड़ेगी, उसको अंक सिखाने, गिनती या क्रम सिखाने से जोड़ना उचित नहीं होगा।

कुछ बात शब्दावली के बारे में। गणित में दिखाना, बताना, समझाना शब्द इस्तेमाल नहीं करना चाहिए क्योंकि ये गणित या कुछ भी सीखने के लिए उपयोगी नहीं हैं। सीखने के लिए उपयोगी पद (terms) हैं– खोजने का प्रयास करना, देखने का, पहचानने, हल करने, सिद्ध करने, सिद्धान्त ढूँढ़ने, नियम बनाने का प्रयास करना। गणित सीखने की प्रक्रिया में ज़्यादा महत्त्वपूर्ण यह है कि बच्चा प्रयास करे और यह प्रयास इस ढंग से रचित करे कि उसमें वो स्वयं कुछ कर पाए और उस पूरी प्रक्रिया में योगदान दे पाए।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 में बुनियादी साक्षरता और संख्या-ज्ञान (Foundational Literacy and Numeracy) की बात की गई है। उसपर ज़्यादा विस्तार से सोचने की ज़रूरत है। बुनियादी साक्षरता और बुनियादी संख्या-ज्ञान का मसला अंक पहचान और गिनती गिनना नहीं है। उनके दिमाग़ में जो बुनियादी संख्या-ज्ञान का मसला है, उसमें पूरा वृहद् गणित शामिल है, जिसमें गिन पाना, जोड़ पाना, घटा पाना, गुणा कर पाना, उसका ज़िन्दगी में उपयोग कर पाना, परिस्थितियों में कौन-सा गणित इस्तेमाल करना है, कैसे करना है, उसको समझ पाना, ये देख पाना कि कौन-से आँकड़े उपयोगी हैं कौन-से नहीं, आँकड़ों का इकट्ठा कर उनका विश्लेषण कर पाना, आकारों की समझ बना पाना, उनमें सम्मति देख पाना, उनमें सर्वांगसमता देख पाना, और ये देख पाना कि कौन-सी चीज़ें किस जगह में कितनी आ सकती हैं? कैसे किसी जगह का बेहतर उपयोग हो सकता है? कैसे उसको घुमा-फिरा

कर बेहतर आकृति बन सकती है? ये सब चीज़ें बुनियादी संख्या-ज्ञान में शामिल हैं जिसमें एक गणित का पूरा अन्वेषण (exploration) का ढाँचा है और उसमें कुछ बुनियादी क्षमताएँ हैं जिनको हमें नियमित करना पड़ेगा और चूँकि हम संख्या-ज्ञान की बात कर रहे हैं तो ये सबसे महत्त्वपूर्ण होगा कि वो जो भी सीखे उसका अपने जीवन में उपयोग कर सके, औरों को समझा सके, नई जगहों पर इस्तेमाल कर सके। ऐसा न हो वो सिर्फ़ नियमों को याद करने, दोहराने में उलझ जाए और साक्षरता का भी यही अर्थ है कि जो उसने पढ़ा है उसको समझा पाए, इस्तेमाल कर पाए और कोई भी नई चीज़ है उसको पढ़ पाए। तो बुनियादी साक्षरता, बुनियादी संख्या-ज्ञान का मतलब यही है जिसके ऊपर आगे की इमारत खड़ी हो सके। वो सारा गणित, सारी भाषा की समझ और क्षमताएँ जिनके ऊपर आगे की भाषा, गणित और बाक़ी सब ज्ञान की नींव हो और जिसके ऊपर पूरी इमारत खड़ी हो सके। यह सोचना पड़ेगा कि इसमें क्या-क्या आएगा और उसको सीमित करने से नीति का मक़सद है वो पूरा नहीं होगा। जैसा कि नई तालीम के समय गाँधीजी ने भी कहा था, "आप भाषा और गणित अच्छे-से पढ़ा दें, बाक़ी ज्ञान तो बच्चा ख़ुद हासिल कर लेगा।" उस तरह की क्षमता आने के लिए जिस तरह के संख्या-ज्ञान की हम बात कर रहे हैं उसकी कल्पना हमें करनी पड़ेगी, उसको अंक सिखाने, गिनती या क्रम सिखाने से जोड़ना उचित नहीं होगा।

हृदय कान्त दीवान शिक्षा के क्षेत्र में पिछले चार दशक से कार्य कर रहे हैं। वे राज्य के शिक्षकीय ढाँचों में शैक्षिक नवाचार और परिवर्तन के प्रयासों से सम्बद्ध रहे हैं। एकलव्य के फ़ाउण्डिंग सदस्य रहे हैं। वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के अनुवाद पहल कार्यक्रम से जुड़े हैं।

सम्पर्क : hardy@azimpremjifoundation.org

गणित से क्यूँ डरना ?

रजनी द्विवेदी

गणित सीखने की प्रक्रिया बच्चों के संज्ञानात्मक विकास की स्वाभाविक प्रक्रिया का हिस्सा है। आसपास के साथ अन्तःक्रिया ही गणित को सीखने का साधन बनती है। लेकिन अकसर गणित सीखने की प्रक्रिया इस तरह दुरूह, अप्रिय और डरावनी हो जाती है कि गणित विषय से ही एक दूरी-सी बन जाती है। शुरुआत से ही इस विषय से दोस्ती, अपनापन और सहजता बनाए जाने की ज़रूरत है। लेखिका ने अपने आलेख में आम जीवन के सामान्य उदाहरणों और व्यवहार से इन बातों पर विस्तार से बात की है। सं.

यह लेख मध्यम वर्गीय पारिवारिक पृष्ठभूमि के छोटे बच्चों के शुरुआती वर्षों में, गणित सीखने से सम्बन्धित है। शुरुआती उम्र के बच्चों के प्रश्नों, विभिन्न गतिविधियों में उनके मसरूफ़ रहते समय किए गए कुछ अवलोकन, उनकी बातचीत को अलग-अलग अवसरों पर समझने की कोशिश करते हुए उनकी गणित सीखने के बारे में मेरी जो समझ बनी है उसको कलमबद्ध करने का प्रयास मैंने इस लेख में किया है। इसमें हाल ही के कुछ अवलोकन भी शामिल हैं और कुछ पुराने नोट्स की भी मदद ली है। लेख के दो हिस्से हैं। पहले हिस्से में बातचीत है कि बच्चे क्या-क्या करते हैं और इस करने में गणित शामिल होता है या नहीं, और अगर शामिल है तो कैसा गणित शामिल होता है और इसे कहाँ-कहाँ व कैसे-कैसे देखा जा सकता है। अगले हिस्से में प्रश्न है कि यदि बच्चे में गणित सीखने की कुछ बुनियादी क्षमता होती है तो गणित का डर बच्चों में पैदा कैसे होता है और कैसे बढ़ता जाता है। इन बिन्दुओं पर बात करते हुए गणित सीखने-सिखाने में वयस्कों की भूमिका के बारे में भी चर्चा है।

बच्चे और गणित की अवधारणाएँ

एक औसत बच्चा अपनी उम्र के अनुसार क्या-क्या सीख जाता है, इस बारे में काफ़ी शोध हुए हैं। ये शोध बच्चों की सीखने की क्षमताओं के बारे में एक व्यापक दृष्टि देते हैं। उदाहरण के तौर पर, दो से ढाई साल तक आते-आते एक औसत बच्चा शारीरिक रूप से इतना सक्षम होगा कि वह चलने लगेगा। आसपास के बच्चों को देखने पर भी हमें ऐसे कई अनुभव मिल जाएँगे जो इसकी पुष्टि करेंगे। इसी तरह अमूर्त अवधारणाओं से अन्तःक्रिया कर इन अवधारणाओं के विभिन्न पहलुओं को समझना भी बच्चे काफ़ी जल्दी शुरू कर देते हैं। छोटे बच्चों की इन अन्तःक्रियाओं व इनमें काम ली जाने वाली विभिन्न क्षमताओं पर वयस्कों का ध्यान अकसर नहीं जाता, या जो थोड़ा बहुत जाता भी है तो उसे वयस्क कुछ ख़ास महत्त्व नहीं देते है।

उदाहरण के लिए, 12 से 14 महीने का बच्चा अपनी समझ से यह अच्छी तरह जानता है कि किस और कितनी ऊँचाई पर वह ख़ुद चढ़ सकता है, किस ऊँचाई से उतरने के लिए

उसके ख़ुद के प्रयास काफ़ी होंगे, और कहाँ उसे किसी बड़े की मदद ज़रूरत पड़ेगी ही? यह बच्चा घर की विभिन्न जगहों को भी जानने लगता है। माँ कहाँ हो सकती है, कोई चीज़ कहाँ हो सकती है, बाहर जाने का दरवाज़ा कौन-सा है, ऊपर जाने के लिए सीढ़ियाँ किस तरफ़ हैं? ऐसी बहुत-सी समझ बच्चा अर्जित कर लेता है। इसे दूसरे ढंग से कहूँ तो बच्चे के दिमाग़ में घर की विभिन्न जगहों का एक मानसिक ख़ाका बन जाता है, और यह ख़ाका इतना पक्का होता है कि यदि उसे माँ के पास या बहन या किसी और वयस्क अथवा साथी के पास जाना है तो वह रुक कर सोचता नहीं है बल्कि दौड़कर चला जाता है।

चित्र : धीरेन्द्र वर्मा, शिक्षक

एक वयस्क की दृष्टि से सोचने पर यह काफ़ी आसान लगता है। लेकिन यदि यह सोचें कि एक नई-सी जगह पर जब हम जाते हैं, या अपने ही कस्बे या शहर में जब किसी नए पते पर जाते हैं तो हमें किस तरह की परेशानी होती है, वो भी तब, जब हमारे पास काफ़ी संकेत होते हैं। अगर दोनों परिस्थितियों को साथ रखकर सोचते हैं तो बच्चों की इस क्षमता के स्वरूप का अहसास होता है।

जगह की समझ गणित की एक महत्त्वपूर्ण अवधारणा है और यह आगे बढ़ते-बढ़ते त्रिकोणमिति, ज्यामिति, निर्देशांक ज्यामिति, क्षेत्रमिति, सममिति, नक़्शे बनाना व पढ़ना और टोपोलॉजी तक जाती है। इन सब बाद की अवधारणाओं की बुनियाद इन्हीं स्थानीय सम्बन्धों की अवधारणाओं में है जिनकी समझ इतनी छोटी उम्र से होने लगती है। इसके कई उदाहरण आप अपने आसपास देख सकते हैं। इसी उम्र में बच्चे अलग-अलग वस्तुओं की आकृतियों, कौन-सी चीज़ ज़्यादा भारी है कौन-सी कम, क्या चीज़ बड़ी है क्या छोटी, क्या दूर है क्या पास? की समझ भी विकसित करने लगते हैं। इस उम्र के बच्चे बता नहीं पाते लेकिन उनकी क्रियाओं से यह साफ़ हो जाता है कि वे इस समझ की ओर बढ़ रहे हैं।

यह कह सकते हैं किसी अमूर्त अवधारणा की समझ बनाने की प्रक्रिया की शुरुआत स्कूल आने से काफ़ी पहले शुरू हो जाती है। जैसे-जैसे बच्चे का शारीरिक विकास होता है, उसकी गतिविधियाँ बढ़ने लगती हैं और दायरा भी विस्तृत होता जाता है। 4-5 साल की उम्र तक आते-आते बच्चे जगह की और बेहतर समझ विकसित कर लेते हैं; आसपास के इलाक़ों, घरों, गलियों और मोहल्लों का एक ख़ाका भी उनके पास होता जाता है। उनके बनाए चित्रों में भी जगह की यह समझ साफ़ दिखती है। इसी तरह आकृतियों और उनके माप की समझ वे अर्जित कर लेते हैं। वे अच्छे से समझते हैं कि थाली, कटोरी और गिलास व अन्य बर्तनों में फ़र्क़ है, गेंद और चूड़ी में फ़र्क़ है, गेंद लुढ़कती है और चूड़ी, कटोरी या थाली को लुढ़काने के लिए उन्हें किसी ख़ास तरह से ज़मीन पर रखना होता है। यह भी कि यदि सतह सीधी होगी तो गेंद बिना बल के नहीं लुढ़केगी और तीव्र ढलान पर बहुत-सी चीज़ें लुढ़क जाएँगी। इसी तरह खिड़की और दरवाज़े के आकार और माप में फ़र्क़, चाँद का गोल होना, उसका घटना-बढ़ना और उसके अलग-अलग आकार भी ऐसे मसले हैं जो बच्चों को आकर्षित करते हैं। बाल्टी में ज़्यादा पानी आएगा या मग में ज़्यादा पानी आएगा या कटोरी में, इसी तरह गिलास आधा भरा है या पूरा, या पूरे से थोड़ा कम।

इसी तरह संख्या की बुनियादी समझ भी वे अर्जित कर लेते हैं, जैसे– स्कूल आने से पहले
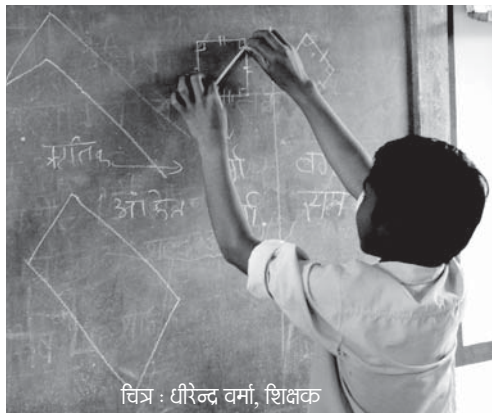
बच्चे यह समझने लगते हैं कि संख्याएँ होती हैं, और चीज़े कम हैं या ज़्यादा पता करने के लिए इन्हें काम में लिया जाता है। हो सकता है कुछ बच्चे 1 से 5 तक ही जानें, लेकिन कुछ अन्य इससे आगे की गिनती और गिनना भी जानते हों। हाँ, यह ज़रूरी नहीं कि वे संख्या के 1 + 1 के पैटर्न को जानते हों, या इन संख्याओं के संख्यांकों को लिख सकते हों। जैसे– बच्चे अमूमन जानते हैं कि मैं अमुक बच्चे से बड़ा हूँ, और अमुक से छोटा। मैं बड़ा हूँ क्योंकि 5 साल का हूँ और वह छोटा है क्योंकि एक साल का है। या फिर मेरे पास 3 रोटी हैं और तेरे पास 2। तेरे पास 2 पेंसिल हैं और इसी तरह की तमाम बातें जो उनके आसपास हो रही हैं... आदि। वंचित वर्ग के तबक़ों से आने वाले इस उम्र के बच्चे तो गणित की और भी बहुत-सी अवधारणाओं की समझ अर्जित कर लेते हैं क्योंकि उनकी रोज़मर्रा की ज़िन्दगी में बहुत-से ऐसे काम शामिल होते हैं जिनमें गणित होता है, जैसे– रोज़ का सामान रोज़ ख़रीदना, माता-पिता की सब्ज़ी बेचने में मदद करना, वग़ैरह। हालाँकि मैंने इस पर्चे में इस बारे में बात नहीं की है। पर इसी अंक में शामिल एक लेख में इस सन्दर्भ में बातचीत है।

चित्र : संदीप दिवाकर, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, भोपाल

गणित के प्रति असहजता और उससे डर

गणित के प्रति असहजता जाने-अनजाने निर्मित होती जाती है। अकसर गणित से जुड़े मसलों पर वयस्कों के साथ बच्चों की ज़्यादा बातचीत नहीं हो पाती। इसके अलावा, गणित को बार-बार हौवा, मुश्किल, समझ में न आने वाला विषय बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। यह काम स्कूल में भी होता है और घर में भी। एक ओर तो गणित कि छवि जटिल विषय के रूप में और सीख पाने वाले की छवि होशियार के रूप में स्थापित की जाती है, वहीं दूसरी ओर उसपर सहज बातचीत नहीं होती और जो थोड़े बहुत मौक़े आते भी हैं उन्हें नज़रअन्दाज कर दिया जाता है।

घर के सन्दर्भ में कुछ उदाहरण ऊपर वाले हिस्से में भी आए हैं। जब बच्चे थोड़े सक्षम होने लगते हैं तो कुछ शुरुआती खोजबीन स्वयं करते हैं, जैसे– अलग-अलग तरह की चीज़ों से खेलना, छोटा-बड़ा पत्थर, या पत्तों और पत्थरों की आकृति, या किस दिशा में किसका घर है, आदि। इस खोजबीन के चलते धीरे-धीरे उनकी समझ बनती चली जाती है। इससे आगे के प्रश्न व जिज्ञासाएँ भी बनती हैं और जैसे-जैसे उम्र बढ़ती है भाषा का विकास होता है व प्रश्न भी कुछ सटीक और स्पष्ट होने लगते हैं। 4-5 साल के बच्चे ऐसे कथन समझते हैं और उपयोग भी करते हैं, जैसे– देर से क्यों आए, अब शाम होने वाली है, छोटे बच्चे के छोटे जूते और बड़े बच्चे के बड़े, इस डिब्बे में ज़्यादा दाल आएगी क्योंकि ये बड़ा है। वे ऐसे प्रश्न पूछने की भी क्षमता रखते हैं कि इस घड़ी में ये क्या लिखा है, क्यों लिखा है (रोमन संख्याओं को देखकर) या इस घड़ी में 1, 2, ... क्यों नहीं लिखा है, जो वो जानता है? इस पट्टी पर ये निशान क्यों बने हैं, यह क्या काम आता है (इंची टेप, स्केल), ये घर इस वाले घर से बड़ा है, कितना बड़ा है, आप दो दिन बाद आओगे, यानी सुबह, फिर रात, फिर सुबह और फिर रात, एवं फिर सुबह और फिर रात? (वह दो दिन के समय को पता लगाने की कोशिश में है)। बच्चों के ऐसे कुछ प्रश्नों का हम सीधा जवाब दे देते हैं, और कुछ को अनदेखा कर देते हैं। इसके कई कारण होते हैं। इनमें से एक महत्त्वपूर्ण कारण है कि अधिकांश वयस्क बच्चे को 'बच्चा' ही मानते हैं, उसे एक सोचने वाला

इंसान नहीं मानते। यह नहीं मानते कि वह दुनिया से अन्तःक्रिया करने, उसको खोजने, समझने और वाज़िब सवाल पूछने की क्षमता रखता है।

हालाँकि वयस्क ज़वाब देते हैं, लेकिन ज़वाब कई नज़रियों से आते हैं... और इसीलिए ज़वाब में फ़र्क़ होता है। कभी सवाल को बग़ैर ध्यान से सुने ज़वाब दे दिया जाता है जैसे यह सवाल कि दादा बड़े हैं या दादी? ज़वाब : दादा। पर पापा दादा से बड़े हैं? ज़वाब : नहीं पापा दादा से छोटे। (यहाँ बच्ची लम्बाई के आधार पर कह रही है)

कई बार हम ऐसे ज़वाब देते है जो हमारे ज्ञान को दर्शाते हैं लेकिन बच्चे को अपने प्रश्न के कथन को समझने में मदद नहीं करते। जैसे एक सात साल के बच्चे ने 22-8 हल करते हुए पूछा कि कैसे करूँ? तो जवाब था कि इकाई छोटी है तो अब दहाई से एक लो अब हो गया दस... अब यह सवाल बिना इकाई दहाई से हल हो सकता है। संख्या की समझ काफ़ी है।

चित्र : संगीता पिपले, शिक्षक

हालाँकि कई बार तो वयस्कों को बच्चों के सवाल इसलिए भी छोड़ने पड़ते हैं कि उनके उत्तर भी आसान नहीं हैं। तो यह सोच कि अभी बच्चा है इसी वजह से उसकी बात व सवालों को अनदेखा भी करते हैं और उसपर समय भी नहीं लगाते और कभी स्तर अधिक बताते हैं। इस तरह यह नज़रिया बच्चे के साथ बराबरी की बातचीत करने की राह में रोड़ा बनता है– गणित में भी और अन्य विषयों में भी।

इसके साथ-साथ गणित की अवधारणाओं में यह भी होता है कि वयस्क इनपर वैसी सामान्य बातचीत नहीं कर पाते जैसी कि भाषा और पर्यावरण से सम्बन्धित विषयों पर वे कुछ हद तक कर पाते हैं।

एक उदाहरण से इसे समझते हैं जो मैंने ख़ुद देखा। छह साल का मध्यम वर्गीय परिवार का एक बच्चा था। घर में चीज़ों को खोजते-खोजते उसे एक इंची टेप मिला। उसने वयस्क से पूछा, "यह क्या है?" जवाब आया, "इंची टेप है।" कुछ देर तक वह उससे खेलता रहा, पहले उसे खोला फिर उसे तह किया और कुछ देर बाद दूसरे वयस्क के पास पहुँचकर पूछा, "यह क्या है?" जवाब आया, "इंची टेप है।" बच्चे का अगला सवाल था, "क्या काम आता है?" जवाब, "कुछ नापने के काम आता है?" सवाल, "कैसे नापते हैं?" जवाब, "ये निशान लगे हैं, इनसे।" इस पूरी बातचीत में वयस्क की कोई ख़ास दिलचस्पी नहीं थी। इस दौरान उन्होंने एक बार भी बच्चे की ओर नहीं देखा। बच्चा भी थक गया, उसे समझ आ गया कि वे और बातचीत नहीं चाहते। हम देख सकते हैं कि कुछ बातचीत हुई लेकिन ये ऐसी थी जिसके जवाब आगे की बातचीत को बढ़ावा नहीं देते।

ऐसा लग रहा था कि बच्चे के मन में बहुत-सी और बातें थीं, लेकिन उसे लगा कि वयस्कों की उनपर बातचीत व उसके उपयोग को खँगालने में ख़ास रुचि नहीं है। बच्चे के साथ इस मौक़े पर आगे काफ़ी बातचीत की जा सकती थी। उदाहरणार्थ, क्या ये निशान एक जैसे हैं, कैसे-कैसे हैं, क्या सभी बराबर दूरी पर हैं, इस टेप पर क्या-क्या लिखा है, चलो कुछ चीज़ें मापकर देखें कि कौन-सी छोटी हैं कौन-सी बड़ी, कैसे पता चला? आदि। यदि वयस्क उसपर लिखी इकाइयों को पढ़ भी दे तो कोई हर्ज़ नहीं है।
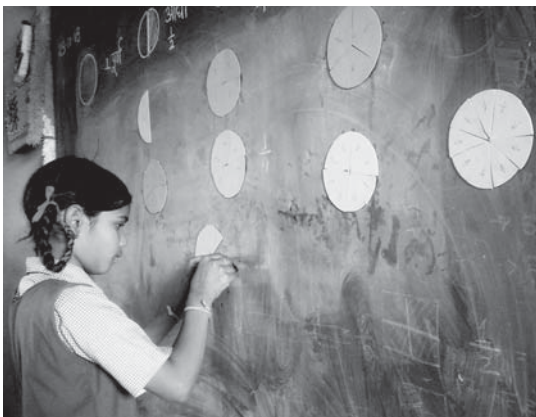
मूल बात यह है कि वह अन्तःक्रिया सहज रूप से आगे बढ़ सकती थी और उसमें बहुत-सी बातों का आदान-प्रदान हो सकता था। वयस्कों की बच्चों के साथ अन्तःक्रिया पर रवैए के बारे में एक और बात महत्त्वपूर्ण है। एक ओर तो वे बच्चों के कार्य में रुचि नहीं लेते, वहीं दूसरी ओर वे उनपर ख़ास चीज़ें सीखने का दवाब बनाते रहते हैं। बच्चे की जिज्ञासा के लिए उसके अपने प्रश्नों पर समझ बनाने को तवज्जो नहीं दी जाती। वहीं सिखाने का ज़बरन प्रयास अन्तःक्रिया को बच्चे के लिए बोझिल और असहज बना देता है। अतः इन सभी चर्चाओं में बच्चे के लिए सहजता होनी आवश्यक है, और यह भी ज़रूरी है कि कार्य व सवालों की बागडोर उसके हाथ में ही रहे। ज़रूरी बात यह है कि बच्चों के ऐसे छोटे-छोटे ख़ास रुझानों पर हम शुरू से ही ध्यान देना शुरू करें और जहाँ तक सम्भव हो, उनपर उनसे सार्थक बातचीत करें जिससे कि गणित सीखना स्वाभाविक प्रक्रियाओं का हिस्सा बन सके, बच्चे उसमें रुचि ले सकें और इस तरह की बातचीत होने पर असहज न महसूस करें। ऐसा हो सकता है कि सार्थक बातचीत के लिए वयस्कों को भी अपने स्तर पर और सीखने की ज़रूरत हो।

बच्चों को चित्र बनाना अच्छा लगता है, लेकिन उन्हें अकसर चित्र बनाने की स्वतंत्रता नहीं मिलती। स्कूल में तो बच्चों को बनाए गए चित्रों को कॉपी करने के लिए कहा ही जाता है, लेकिन घरों में भी उनको स्वतंत्र रूप से चित्र बनाने को प्रोत्साहित किया जाता हो ऐसा होता नहीं है। और फिर उन चित्रों पर बातचीत भी नहीं होती। वो भी तब जब बच्चा आपको चित्र दिखाता है और पूछता है कि बताओ क्या बनाया है, कुछ समझ आ रहा है? जैसे– आगे दिया गया चित्र 7 साल के एक बच्चे ने बनाया है।

क्या आपको नहीं लगता कि इसपर ऐसी बात हो सकती है कि यह घर के आगे का हिस्सा है या पीछे का, क्यों कुछ पेड़ छोटे दिख रहे हैं कुछ बड़े, घर में कितनी खिड़कियाँ हैं, कितनी मंज़िल का घर है? आदि।

गणित सिखाने में थोपे गए कार्य व बच्चे से ऐसी अपेक्षाएँ कि वह उसके लिए निरर्थक चीज़ जल्दी से सीख ले, गणित को बोझिल बनाते है। इसमें यह भी अपेक्षा होती है कि बच्चे सीखने में समय न लगाएँ। औपचारिक ढाँचों में तो जल्दी न सीख पाने वालों को विभिन्न उपाधियाँ भी मिल जाती हैं। सिखाने में जो जल्दबाज़ी होती है उसके कुछ उदाहरण देखते हैं। उदाहरण काफ़ी आम हैं और हमारे आसपास होते ही

रहते हैं। गिनती से ही शुरू करते हैं। एक चार साल की बच्ची है, उसे गिनती सिखाई जा रही है, 1 से 10 तक की गिनती उससे लगभग रोज़ बुलवाई जाती है।... वह कहती है, "मुझे नहीं बोलना", लेकिन उससे कहा जाता है, "काफ़ी बड़ी हो गई है अब तक तो 10 तक आ जानी चाहिए... चलो बोलो।" पहले वह वयस्क के पीछे-पीछे बोलती है और फिर उससे ख़ुद बोलने को कहा जाता है।... वह 6 के आगे क्रम में गड़बड़ करती है और 7, 8 को छोड़कर सीधे ही 9, 10 बोल देती है। कहा जाता है, "अरे...

अभी तो किया था इतनी जल्दी भूल गई.... कब आएगा?''

इसी तरह लिखने का अभ्यास करवाते समय ऐसे कथन आते हैं, ''अरे, तुमने ये तीन लिखा है, एकदम उल्टा लिखा है। अभी तक तीन लिखना नहीं आता।... और ये, ये क्या लिखा है?'' बच्चा, ''ये नौ है।'' वयस्क, ''ऐसे लिखते हैं 9? चलो, अब 5 बार 3 लिखो और 5 बार 9, और हाँ, इस डिब्बे से बाहर नहीं जाना चाहिए। और अगली बार यह ग़लती नहीं होनी चाहिए।''

''चलो, 7 का पहाड़ा सुनाओ, जल्दी।'' बच्चा, ''7 एकम 7, 7 दुनी 14, 7 तिया 21, 7 चौके हम्म्।'' वयस्क, ''क्या होता है सात चौके?'' बच्चा, ''अम् अम् 27..., नहीं नहीं'', ''क्या होता है? नहीं आता? इतना भी नहीं आता।'' ''अम् अम्... 28... 28 होता है? नहीं-नहीं।'' ''तो कितना होता है?''

यह सब बच्चों में अपनी असक्षमता व गणित के प्रति भय का बीज डाल देते हैं। यह डर की शुरुआत भर है और जैसे हमने कहा, यह घर से ही शुरू हो जाती है और स्कूल में जारी रहती है। इसके अलावा जब भी कोई मेहमान आता है, बच्चों को कलाकारों की तरह अपने पात्र की भूमिका अदा करने को कहा जाता है। यह सुनाओ, यह करके दिखाओ, वग़ैरह-वग़ैरह।

स्कूल में गणित के प्रति डर

मैं अपनी गणित की कक्षाओं को याद करती हूँ तो पाती हूँ कि मेरे स्कूली दिनों में मुझे भी और कक्षा के बहुत-से दूसरे बच्चों को भी गणित से डर लगता था। अभी हाल ही में मैंने गणित पर आयोजित एक वेबिनार में हिस्सा लिया था वहाँ भी बहुत-से शिक्षकों का सवाल था कि गणित के प्रति डर क्यों है?

जब बच्चे स्कूल आते हैं तो वे कक्षाओं में हो रही सभी चीज़ों को सीखना चाहते हैं और सीखते भी हैं। बल्कि शुरुआती कक्षाओं, जैसे– कक्षा 2 और 3, आते-आते यह देखने में आता है कि बच्चे पढ़ने-लिखने की तुलना में कुछ गिनती और जोड़-बाक़ी सीख जाते हैं। जब बुनियादी गणितीय अवधारणाओं को, कुछ हद तक गणितीय अमूर्तता को, बच्चे सहजता से सीखने की क्षमता रखते हैं और सीख भी लेते हैं तो गड़बड़ कहाँ से शुरू होने लगती है?

पहली चीज़ जो इस सन्दर्भ में मुझे सोचने वाली लगी वह यह कि अधिकांश वयस्कों को भी गणित से डर लगता है। और हम अपना यह डर बच्चों में जाने-अनजाने हस्तान्तरित कर देते हैं, क्योंकि बच्चे सहज रूप से इतनी गणित करते हैं तो यह तो साफ़ है कि गणित से डर जन्मजात नहीं होता। शायद किसी भी तरह का डर जन्मजात नहीं होता। डर भी एक सामाजिक निर्मिति है, और गणित का डर भी एक सामाजिक निर्मिति है जिसमें घर, स्कूल, समाज, आदि शामिल हैं। बच्चे गणित को कुछ अलग-सा, दानव-सा न मानें, इसके लिए ज़रूरी है कि हम वयस्क गणित से न डरें और न ही यह नज़रिया रखें कि यह तो अलग-थलग है और सीखना मुश्किल है। जैसे– ऐसे कथन काफ़ी सुनने को मिलते हैं, ''अरे मुझे तो गणित नहीं आई तुम तो सीख लो।''

''गणित नहीं आया तो समझो कुछ नहीं आया।''

इस सन्दर्भ में दूसरा महत्त्वपूर्ण बिन्दु पाठ्यक्रम व गणित सीखने-सिखाने के तरीक़े से सम्बन्धित है।

स्कूल में गणित का पाठ्यक्रम निश्चित है। यह अपेक्षा है कि बच्चे को उस पाठ्यक्रम को जैसे-तैसे पूरा करना है। हालाँकि, कक्षा एक और दो के पाठ्यक्रम में गिनती और जोड़-बाक़ी व गुणा-भाग ही मुख्य रूप से शामिल होते हैं। कक्षा 1 के लिए दिए गए पूरे वर्ष में बच्चे बोल-बोल कर सिर्फ़ गिनती ही करते हैं, संख्या नाम उन्हें सौ तक याद भी हो जाते हैं, लिखना भी सीख लेते हैं, लिखते-लिखते वे यह भी देख लेते हैं कि 1 से 9 तक की संख्याएँ हर बार आ रही हैं, उन्हें 10, 20, 30, ... भी समझ आ जाता

है। हालाँकि, वे इतना कुछ ख़ुद कैसे समझ गए इस बारे में भी उनसे बात नहीं होती। वे सिर्फ़ बोलते और लिखते ही रहते हैं।

गणित सीखने में यह काफ़ी महत्त्वपूर्ण होता है कि बच्चे जो भी अवधारणा / उप अवधारणा सीख रहे हैं, उसके बीच सम्बन्धों को भी साथ-साथ ही खोजते चलें और इसका ध्यान शुरुआत से ही रखने से आगे भी बच्चों को गणित सीखने में मदद मिलती है। सम्बन्धों को खोज पाना, पैटर्न को देख पाना, यह अमूर्तिकरण की प्रक्रिया के ख़ास पहलू हैं। लेकिन गिनती सीखने की प्रक्रिया में इनपर ध्यान नहीं दिया जाता कि बच्चे इस पैटर्न को पकड़ पाएँ कि हर आगे आने वाला नम्बर पीछे वाले नम्बर से 1 अधिक होगा। वे संख्याओं के आपसी सम्बन्ध को समझ पाएँ, जैसे– 2 एक से एक बड़ा है, और 3 एक से दो बड़ा है, आदि। ये समझ इससे भी जुड़ती है कि 1 + 1 = 2 होगा और 2 + 1 = 3 होगा।

चित्र : हिमांशु खोले, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, सागर

वैसे इन शुरुआती संख्याओं के बीच ये सम्बन्ध बच्चों को कुछ-कुछ पता भी होता है लेकिन इन सम्बन्धों के बारे में ऐसी बातचीत का अभाव होता है जिसे वे समझ पाएँ, और इस वजह से बच्चे संख्याओं की पुख़्ता समझ नहीं बना पाते। और तो और, बच्चे वर्षभर गिनती बोलते रहते हैं... कहने पर 1 से 100 तक सुना भी देते हैं, लेकिन 10 और 12 के बीच क्या संख्या आएगी, 10, 12 से कितना छोटा है, या 6, 5 से कितना बड़ा है? ऐसे सवालों के जवाब नहीं दे पाते। मुझे लगता है, शायद वे भी यह समझते होंगे कि सबकुछ आने के बाद भी वे जवाब नहीं दे पा रहे और यह भी कि वे यह जवाब क्यों नहीं दे पा रहे? यह एहसास भी उन्हें डराता होगा कि जो पूछा वे उसे बताने में असक्षम कैसे हो रहे हैं?

इसी से जुड़ता है गणित की अवधारणाएँ सिखाने में ठोस का उपयोग। "गणित की प्रकृति अमूर्त है," यह कथन ठीक है। लेकिन "वह अमूर्त है इसलिए सीखना मुश्किल है," यह कथन ठीक नहीं है। बल्कि यह सोचना होगा कि अगर अमूर्त है तो शुरुआत से ही इसे सीखने-सिखाने के तरीक़े कैसे हों कि सीखने वाला अमूर्त अवधारणाओं को, सीखने की क्षमता को बेहतर करता चले। ठोस चीज़ों पर निर्भरता भी गणितीय अवधारणाओं के सीखने में रोड़ा बनती है। यह सोचने वाली बात है कि एक पाँच साल की बच्ची जब यह अच्छे से बता सकती है कि 5, 4 से बड़ा है, 10, 9 से बड़ा है। तो वह यह क्यों नहीं सीख सकती कि 4 में कितना जोड़ने पर पाँच मिलेगा? हम ठोस के उपयोग पर इतना ज़ोर दे देते हैं कि कक्षा में बच्चों से बातचीत की गुंजाइश कम रह जाती है। गणितीय अवधारणाओं पर बातचीत भी अमूर्तता तक जाने का एक तरीक़ा है, वो भी छोटी संख्याओं से ही... जैसे 4 में 1 जोड़ें तो क्या आएगा? 4 में 2 जोड़ने पर, ... 3, 4, ... 10 जोड़ने पर क्या आएगा? धीरे-धीरे बच्चे समझ जाते हैं कि यह पैटर्न कैसे बढ़ रहा है ऐसे ही कुछ और अभ्यास करने पर संख्याओं के पैटर्न की समझ पुख़्ता होती है और अमूर्तिकरण की क्षमता भी विकसित होती है। ऐसे कई अभ्यास हो सकते हैं? जैसे– 4 में 10 जोड़ने पर कितना होगा? और 5 में 10

जोड़ने पर कितना होगा... इसी तरह 6 में 10 जोड़ने पर क्या संख्या मिलेगी... 7 में 10 जोड़ने पर क्या संख्या मिलेगी।.... फिर ऐसे सवाल भी आ सकते हैं कि अगर 7 में 10 जोड़ने पर 17 मिलता है तो 7 में 9 जोड़ने पर क्या संख्या मिलेगी और क्यों? और तब 7 में 8 जोड़ने पर क्या संख्या मिलेगी।

ये कुर्सी सामने से ऐसी दिखती है, पीछे से देखने पर कैसी दिखेगी और गिलास यह कैसा दिखेगा। बच्चों की समझ के अनुसार संख्याओं से, चित्रों से, चीज़ों से ऐसे कई अभ्यास किए जा सकते हैं। ऐसे अभ्यासों के अभाव में ठोस इतने ठोस हो जाते हैं कि बच्चे संख्याओं को देखकर ही डरने लगते हैं।

एक और चीज़ जो गणित सीखने-सिखाने की प्रक्रिया में मुश्किल बनती है वह है, एक बुनियादी अवधारणा के बुनियादी पहलू पर समझ बनाने से पहले ही और कई अवधारणाओं की शुरुआत कर देना। बच्चे गिनती ठीक से समझे नहीं होते हैं और कक्षा में इकाई, दहाई की अवधारणा भी शुरू कर दी जाती है। चूँकि अधिकांशतः यह माना जाता है कि 10 से आगे बढ़ने के लिए स्थानीय मान आना ज़रूरी है, जबकि ऐसा है नहीं।

मैंने कई कक्षाओं में पाया है कि बच्चे जब जोड़ना सीख रहे होते हैं तो यह ज़रूरी समझा जाता है कि अगर उन्हें दो अंकों, या तीन अंकों की संख्याओं का जोड़ करना है, बिना हासिल वाला हो या हासिल वाला कुछ भी, तो वे हर संख्या में आए हर अंक पर इ., द. और सै. लिखें। यही नहीं, कि ऐसा लिखवा लिया जाता है बल्कि उससे आगे बढ़कर उनसे कहा यह जाता है कि पहले इ. के नीचे के अंकों को जोड़ो, फिर द. के नीचे के और फिर सै. के नीचे के अंकों को।... न तो उनसे यह बात की जाती है कि इ., द. और सै. क्यों लिखना है न ही यह कि वह पूरी-पूरी संख्याएँ पढ़ें न कि इकाई, दहाई के अंक। इसके अलावा, लिखवाने के बाद भी अपेक्षा यह रहती है कि वे संख्या को न देखें बल्कि अंक को देखें और उन्हें ही जोड़ें अथवा घटाएँ।

सिखाने की प्रक्रिया में सम्बन्धों को देख पाने की, पैटर्न को देख पाने, संख्याओं से खेल पाने, उनके बारे में बात कर पाने, व अमूर्तिकरण की अन्य क्षमताओं को एक-एक करके शुरुआत से ही कमज़ोर किया जाता है। जैसे– जो बच्चा गिनती सीखते-सीखते यह समझ जाता है कि 10 में 10 जोड़ने पर 20 और 20 में 10 जोड़ने पर 30 आता है, धीरे-धीरे वह यह भी समझ पाता है कि 19 में 10 जोड़ने पर 29 आता है और ऐसे ही कई पैटर्न बना सकते हैं। हर बार जोड़ करने के लिए लाइन बनाने और उँगलियों पर जोड़ करने की ज़रूरत नहीं है। यह भी कि अगर 2 + 3 = 5 होगा तो 5 – 3 = 2 होगा। इसे कॉपी में करने की ज़रूरत नहीं है। इस सबको कर पाने व इस सोच में आगे बढ़ने के लिए उन्हें आपस में बात करने और अपने तरीक़े से सोचने देने की ज़रूरत है। जैसे– कक्षा दो में बच्चों को सवाल दिए जा सकते हैं कि 23 में 56 जोड़ना है... सब अपने-अपने तरीक़े से जोड़ें और बताएँ कि किसने किस तरीक़े से सवाल किया, किसका उत्तर सही लगता है, और कैसे पता लगाएँगे कि हल सही है? कई जगह दिए गए सुझाव के अनुरूप भी सवाल बनाएँ। इसको भी इस्तेमाल करके देखा जा सकता है

चित्र : निशांत गहोई

कि वे ऐसे सवाल बना सकते हैं अथवा नहीं? उनसे कह सकते हैं कि चलो, सरल-से-सरल सवाल बनाएँ, अब कुछ कठिन सवाल बनाएँ, क्यों उन्हें ये सवाल कठिन और सरल लगते हैं? आदि।

जब बच्चे गिनती और बुनियादी जोड़ ही ठीक से नहीं सीख पाते तो आगे की अवधारणाएँ भी धीरे-धीरे मुश्किल होने लगती हैं। *नई शिक्षा नीति 2020* में बुनियादी संख्या ज्ञान पर ख़ास ज़ोर देने का कारण भी यही है कि यदि बुनियादी गणित की अवधारणाओं को सीखने में बच्चों को पर्याप्त समय दिया जाएगा व उन्हें वयस्कों के डर से ओत-प्रोत शार्टकट को छोड़ने में मदद की जाएगी, तब ही बच्चों में गणित के प्रति जो डर है शायद वह भी ख़त्म होगा।

चित्र : तरन्नुम निशा

सारांश

सीखना एक रुचिकर प्रक्रिया है। बच्चे नई-नई खोज कर उनके बारे में नई बातें सीखने में एक स्वाभाविक दिलचस्पी रखते हैं। यदि हम चाहते हैं कि चीज़ों को सीखने में उनकी स्वाभाविक दिलचस्पी बनी रहे तो उनके साथ स्वाभाविक तरीक़े से काम करना ही एक तरीक़ा है। घरों में, कक्षाओं में गणित की जिस तरह से शुरुआत होती है वह काफ़ी अस्वाभाविक-सी लगती है, जैसे– पहले कुछ वर्षों तक बस गिनती को लिखते और बोलते रहना। यदि बच्चे पहली कक्षा में 1 से 20 या 30 तक की संख्याओं को ही अच्छे से समझ लें यानी उनके बीच सम्बन्ध, उनसे बनने वाले विभिन्न पैटर्न समझ लें, संख्याओं से जुड़ाव बना लें तो आगे का सफ़र उनके लिए एक हद तक काफ़ी ख़ुशनुमा बन सकता है। इन संख्याओं के साथ काफ़ी कुछ है करने के लिए।... इसके अलावा हम वयस्कों को भी गणित के प्रति बने हमारे नज़रिए को पुनः देखना और संशोधित करना होगा, यह संशोधन स्वयं के लिए भी और बच्चों के लिए भी करना होगा। यह ध्यान रखना होगा कि गणित डरने और डराने वाला विषय नहीं है। सिर्फ़ यह अन्य विषयों की तुलना में कुछ ज़्यादा अमूर्त है। लेकिन गणित ख़ासकर बुनियादी और प्रारम्भिक स्तर का गणित इतना अमूर्त नहीं है कि हर इंसान उसे थोड़ा-सा जूझने पर न समझ पाए।

सन्दर्भ

1. महेश झरबड़े और रुबीना खान, *जीवन में गणित, पाठशाला भीतर और बाहर* अंक 11

2. *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020*

रजनी द्विवेदी *पाठशाला* के सम्पादन कार्य से जुड़ी हैं। लम्बे समय तक विद्या भवन उदयपुर में शिक्षा पर कार्य किया है। भाषा और भाषा शिक्षण में विशेष दिलचस्पी है। पत्रिकाओं में शिक्षा पर लेख लिखती रहती हैं। आपने किताब *भाषा का बुनियादी तानाबाना* के लेखों का चयन और सम्पादन किया है।

सम्पर्क : rajni.dwivedi@azimpremjifoundation.org

सब मज़ेदारी है! कथा नीलगढ़

अंकित मौर्य

सब मज़ेदारी है! कथा नीलगढ़ एक उत्साही, जुझारू और कुछ अच्छा करने की तमन्ना रखने वाले युवक की मन को छूने वाली दिलचस्प कथा है। यह कथा जंगल में बसे एक छोटे-से आदिवासी गाँव नीलगढ़ की पगडण्डियों में चलती है। जिन पगडण्डियों में न स्कूल है, न अस्पताल है, न रहने लायक़ घर और न ही राशन पानी। बस है तो अन्याय और मानवीय गरिमा का अभाव।

यह कथा हर युवती-युवा को इन मुश्किल भरी पगडण्डियों पर चलने का हौसला और रास्ता सुझाती है। सं.
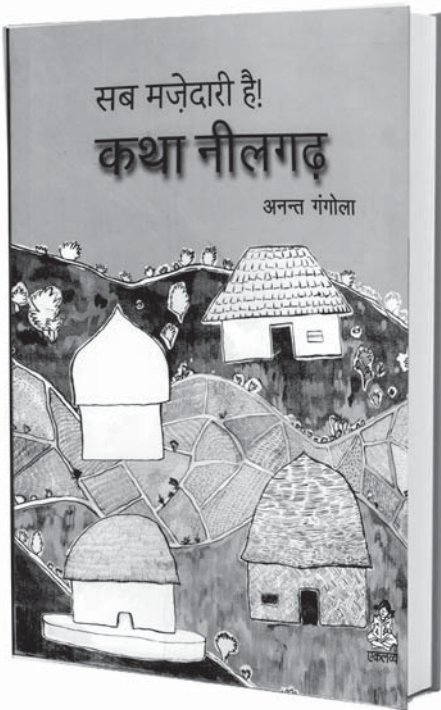
सब मज़ेदारी है! कथा नीलगढ़

लेखक : अनन्त गंगोला

एकलव्य फ़ाउण्डेशन, भोपाल

लेखन और फ़िल्मों की फन्तासी रचनाओं में कभी-कभी किसी ऐसे युवक का ज़िक्र आता है जो शहर की अपनी आराम-भरी ज़िन्दगी छोड़ गाँव में आकर बस जाता है और धीरे-धीरे उसके और गाँव वालों के साझा प्रयासों से गाँव की सूरत-ए-हाल पूरी तरह बदल जाती हैं। अमूमन ऐसे तमाम ज़िक्रों में ऐसा कर पा सकने वाला कोई युवक ही होता है, फन्तासी रचनाओं की कल्पनाएँ भी किसी युवती के ऐसा करने की कल्पना करने में ख़ुद को असहज पाती हैं। अनन्त, 24 साल का वही युवक है लेकिन वह किसी काल्पनिक कहानी का किरदार न होकर, मेरी और आपकी साझी हक़ीक़त में मौजूद एक नवयुवक है जो उत्सुकतावश एक ऐसे गाँव पहुँच जाता है जिसका नाम तक उसने पहले नहीं सुना होता है। और न ही उस समय अनन्त को कोई अन्दाज़ा होता है कि एक मुलाक़ात से शुरू हुआ यह सफ़र लम्बा चलेगा और इसमें रोमांचकता, यात्रा-वृत्तान्त, आत्मकथा, हर्ष, विफलता-सफलता और नाउम्मीदी के ऊपर साहस, धैर्य और आशा की जीत की घटनाओं से बना हुआ ऐसा ताना-बाना होगा जो एक दिन एक किताब की शक्ल में हमारे सामने होगा जिसका नाम है– *सब मज़ेदारी है! कथा नीलगढ़।*

अगर आप अनन्त गंगोला के नाम और काम से परिचित नहीं हैं तो जो बात इस पुस्तक की ओर सबसे पहले ध्यान आकर्षित करती है वह है इसका उपशीर्षक 'सब मज़ेदारी है'। किताब के पन्ने पलटते हुए हाथ और आँखें ख़ुद ही इस बात की पड़ताल में जुट जाती हैं कि आख़िर 'सब मज़ेदारी है' के पीछे का माजरा क्या है। इस सवाल का जवाब जल्दी ही किताब की भूमिका में मिलता है। अनन्त गंगोला के ही शब्दों में, "गाँव के मुखिया रमा दाऊ से की गई पहली बातचीत आज भी स्मृति में ताज़ी है। हालचाल पूछने पर उन्होंने कहा था– सब मज़ेदारी है। मैं हक्का-बक्का रह गया था। तन ढँकने को कपड़े नहीं, सिर छिपाने को मुकम्मल छत नहीं, दो वक़्त के चूल्हे के जलने का कोई सिलसिला नहीं, पर इस सबके बीच, 'क्या हाल हैं?' का जवाब 'सब मज़ेदारी है'। यह आख़िर कैसे हो सकता है? इस बात ने नीलगढ़ में आकर रहने का जैसे निमंत्रण दे दिया।" इस जवाब से उपजे कौतूहल, इसमें छिपे अनौपचारिक निमंत्रण और फिर मुखिया द्वारा गाँव के बच्चों के लिए स्कूल होने के आग्रह की परिस्थितियों में अनन्त गाँव में आकर रहने और बच्चों को पढ़ाने की ज़िम्मेदारी अपना लेते हैं। इस ज़िम्मेदारी का निर्वहन केवल बच्चों और उनकी शिक्षा तक सीमित नहीं रहा, इसमें अनेक लोग और घटनाएँ जुड़ीं, इस सफ़र ने न सिर्फ़ अनन्त और नीलगढ़ को प्रभावित किया, किसी गन्ध की तरह नीलगढ़ में हो रहे कामों की सुगन्ध आसपास के इलाक़ों तक भी फैली और इसका असर वहाँ भी दिखा। इन अनुभवों, प्रयोगों, सीख-समझ और नीलगढ़ में बीते दिनों की यादों का यह दस्तावेज़ अनेक नज़रियों का समागम है जिसमें कभी एक शोधकर्ता अपनी बात रखता है और कभी एक शिक्षक गर्व से अपनी कक्षा और अपने विद्यार्थियों से आपका परिचय कराता है। कभी एक नौजवान की आवाज़ सुनने को मिलती है जो अपने आसपास की असमानताओं के ख़िलाफ़ लोगों को जागरूक कर रही है, और कभी एक समझदार व्यक्ति की समझ सामने आती है जो यह जानती है कि किसी भी काम को करने का सबसे बेहतर तरीक़ा उसे उन लोगों के साथ और सहयोग से करने का है जिनके जीवन पर इस काम का सबसे अधिक फ़र्क़ पड़ने वाला है।

नीलगढ़ में अनन्त के आने और इस सफ़र की शुरुआत का बुनियादी अध्याय बच्चों के लिए स्कूल खोलना है। अब तक ख़ुद एक विद्यार्थी और शोधार्थी रहे युवक के लिए यकायक ख़ुद को इस नई भूमिका में पाने और विद्यार्थी के रूप में अपने अनुभवों के आधार पर इस नए स्कूल की संरचना तैयार करने की चर्चा बहुत रोचक है। शिक्षण या विद्यालय प्रबन्धन की कोई औपचारिक तालीम या अनुभव के बिना धैर्य और घोर आशावाद साथ लिए अनन्त, बच्चे और गाँव-वासी धीरे-धीरे एक अच्छे स्कूल
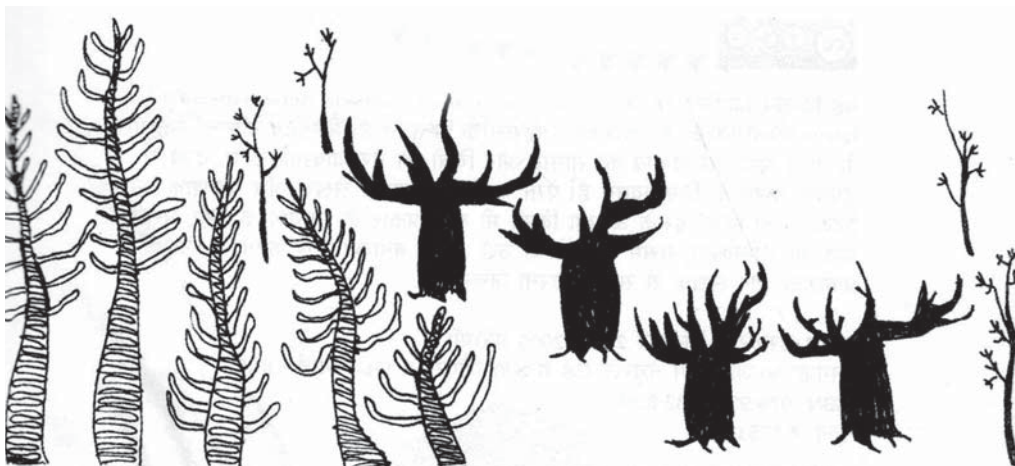
की संकल्पना को बिना किसी ठोस आयोजना, आवश्यकता और दैनिक विकसित होती समझ के आधार पर आकार देते जा रहे थे। यहाँ नवाचार करते रहने की स्वतंत्रता भी थी और वही समाधान भी था। चूँकि 1991 का नीलगढ़ अभावों से ग्रसित एक गाँव था जहाँ आज के जीवन में बुनियादी मानी जाने वाली सुविधाएँ, जैसे– बिजली और सड़क, अभी तक नहीं पहुँची थीं और सामाजिक संसाधन केवल उतने ही थे जितने जीवन के लिए ज़रूरी थे। स्कूल के लिए एक पक्की या स्थाई संरचना का अभाव स्वाभाविक ही जान पड़ता है। ऐसे में ये स्कूल जगह बदल-बदल कर, कभी किसी के घर के दालान में तो कभी वन विभाग की निरीक्षण कुटीर में लगता रहा। कभी-कभी ये स्कूल एक बड़ी-सी समतल चट्टान के पास भी बैठता था जिसके बग़ल से घुटनों तक पानी लिए एक पहाड़ी नाला बहता था। चट्टान का नाम 'चिकना' था और यह जगह किसी पिकनिक स्थल की सी अनुभूति देती थी, अतः इसके पास लगने वाले स्कूल को बच्चे 'चिकनिक' बुलाते थे। चिकनिक स्कूल से दो लाभ हुए। एक तो यह कि पत्थर की समतल सतह पर आकृतियों, अक्षर चित्रों से शुरुआत कर बच्चे धीरे-धीरे लेखन की ओर बढ़ने लगे। दूसरा यह कि चिकनिक स्कूल की जगह दो गाँवों के बीच में पड़ती थी, ऐसे में नीलगढ़ के बच्चों को यहाँ एकत्रित हो कुछ खेलते, कुछ पढ़ते-लिखते देख धुँधवानी गाँव के बच्चे भी इस स्कूल से जुड़ गए और इस तरह धुँधवानी और इसके निवासी भी *कथा नीलगढ़* का हिस्सा और किरदार बन गए। स्कूल में पढ़ाने के लिए कोई नियत पाठ्यक्रम नहीं था। बच्चे और शिक्षक अपनी रुचि और सीखने की गति के अनुसार धीरे-धीरे, पर सधी हुई चाल से, यह सफ़र तय करने लगे। एक समय के बाद जब स्कूल को कुछ और संसाधनों की ज़रूरत महसूस हुई तो गाँव से निकलकर थोड़ा आसपास जाने पर ही मदद के लिए सक्षम हाथ मिलते गए और ये कारवाँ यूँ ही चलता रहा।

किताब में ऐसे कई वृत्तान्त और छोटी-मोटी घटनाओं का ज़िक्र है जो इस पूरे सफ़र को एक आध्यात्मिक स्वरूप देती प्रतीत होती हैं। जितनी ज़रूरत नीलगढ़ को एक नए व्यक्तित्व और नज़रिए की थी, उतनी ही ज़रूरत अनन्त को इस अनुभव की थी जिसके बग़ैर ग्राम्य जीवन, आदिवासी संस्कृति, परस्पर निर्भरता, लोकतंत्र, शासन और बुनियादी सुविधाओं की लोगों तक पहुँच, ग़रीबी और इसमें लिपटी असमानता और शोषण की परतों की उनकी समझ अपरिपक्व और अधूरी थी। नीलगढ़ आने के उनके संयोग से शुरू हुई इस कहानी में नित नए मोड़ आते रहते हैं और अनन्त एक कुशल क़िस्सागो की तरह आपको अपनी बातों के साथ जोड़े रखते हैं। शिक्षक के तौर पर आ रही सफलताओं, विफलताओं, चुनौतियों और बारीक़ियों के बीच जब आप यह महसूस करने लगते हैं कि आप एक समानान्तर ब्रह्माण्ड में लिखी गई 'दिवास्वप्न' पढ़ रहे हैं, अनन्त अपने व्यक्तिगत जीवन का झरोखा खोलकर आपका परिचय अपने सखाओं,

सहचरों, बड़ी-छोटी उम्र के साथियों और उन्हें आकार देने वाले स्थानों से करवाते हैं, और अब जब आप अनन्त के साथ पहले से अधिक आत्मीयता से जुड़ चुके होते हैं तो वो धीरे से आपको लेकर लौट चलते हैं, नीलगढ़।

अकसर *सब मज़ेदारी है! कथा नीलगढ़* में ऐसे क़िस्से आपसे टकराते हैं जो सिर्फ़ अपनी कहानी तक सीमित न रहकर आपको हर्ष और पीड़ा की संवेदना लिए कुछ जाने-पहचाने क़िस्सों तक ले जाते हैं। इनमें से एक क़िस्सा है गाँव नीलगढ़, जिसके बसने के बाद के शान्त, सौम्य और सामान्य जीवन में उस समय भूचाल आ जाता है जब इस जंगल के गाँव में एक नए डिप्टी रेंजर का आना होता है। रेंजर ख़राब ज़ुबान के साथ-साथ ख़राब मिज़ाज और एक घोड़े का स्वामी होता है। घोड़ा अकसर खेतों में घुस जाता और पाल-पोस कर बड़ी की हुई फ़सल कुछ ही समय में खेत हो जाती। असफल विरोध और एक हद से ज़्यादा विरोध में असमर्थता के चलते गाँव के लोग नीलगढ़ छोड़ अलग-अलग जगह बसने को विवश हो जाते हैं। अपना घर छूटने और प्रताड़ना के दुःख से ग्रसित लोग वन विभाग में शिकायत करते हैं। न्याय होता है और डिप्टी रेंजर का उसी रात तबादला कर दिया जाता है। पर लोगों के गाँव छोड़कर जाने और वापस आने में दो महीने का समय बीत चुका होता है। धीरे-धीरे गाँव वापस बस तो जाता है पर दो महीने में खोए अपने पुराने वैभव और समृद्धि को दो दशक में भी वापस नहीं प्राप्त कर पाता। ये कहानी बरबस ही विभाजन और विस्थापन की पढ़ी-सुनी अनेक कहानियों को सामने ला खड़ा कर देती है। इसी तरह एक और कहानी है, 'दुकान जो झोले से फिसल गई', जिसमें छोटी-मोटी ज़रूरत के सामान के लिए बार-बार शहर जाने की मेहनत और ख़र्च बचाने के लिए गाँव में ही एक छोटी दुकान लगाने का फ़ैसला किया जाता है। दुकानदार और शुरुआती जमा पूँजी का जुगाड़ भी हो जाता है, पर सुबह दुकान लेने निकला जालम, शाम को ख़ाली हाथ और हताशा से भरा चेहरा लिए लौट आता है। लेखक यहाँ रेखांकित करता है कि "ग़रीबी महज़ संसाधनों के अभाव का नाम नहीं है। ग़रीबी में अपमान और शोषण की अनेक दास्तानें भी गुँथी हुई हैं।" आगे की कहानी इस बात की है कि किस तरह गाँव के लोग वो दुकान और साथ ही थोड़ी-सी ख़ुशियाँ व आत्म-सम्मान फिर से हासिल करते हैं जो लगभग उनके हाथ से फिसल ही गया था। इन और ऐसी अनेक कहानियों के सार में अँधेरी रातों में टिमटिमाते जुगनुओं की सी शीतलता महसूस होती है और विपदाओं में भी टिके रहने की मानव की दृढ़-निश्चयता के भी परस्पर दर्शन होते हैं।

नीलगढ़ में शिक्षा को लेकर शुरू हुए इस अनुभव की पहुँच सिर्फ़ बच्चों तक सीमित नहीं रही, धीरे-धीरे बड़ों में भी इसे लेकर उत्सुकता और अपनी पीछे छूटी हुई या कभी शुरू ही न की गई पढ़ाई को लेकर उत्कण्ठा के चलते एक रात की कक्षा भी शुरू की जाती है जिसमें गाँव

के पुरुष दिनभर के काम के बाद आकर बैठते और कभी पढ़ाई-लिखाई की बातें चलतीं, और कभी सिर्फ़ बातें चलतीं। अनन्त की भूमिका गाँव में सिर्फ़ शिक्षक तक सीमित न रहकर, बढ़ते समय के साथ और गाँव एवं इसकी संस्कृति व रीति-रिवाजों आदि पर बढ़ती समझ के साथ नए आयाम ले रही थी और एक सुधारक के तत्त्व इसमें शामिल हो रहे थे। हरवाई प्रथा पर समझ बनाने और इसके समाधान की कहानी किसी भी सामाजिक सरोकार रखने वाले व्यक्ति और विशेषतः शोधार्थियों एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं को अवश्य ही पढ़नी चाहिए। यहाँ ख़ास बात यह भी है कि इसमें दशकों से चली आ रही एक कुरीति से निजात दिलाने की मक़सदपूर्ण कोशिश के साथ-साथ एक लोकतांत्रिक देश के जागरूक नागरिक के रूप में अपने ज्ञान और समझ के सही उपयोग से लाए जा सकने वाले बदलाव की एक सकारात्मक झलक भी है।

अब तक के विमर्श से अगर कहीं ऐसा प्रतीत हो रहा हो कि नीलगढ़ में और अनन्त के साथ घटित हो रही घटनाएँ सिर्फ़ सुनहरी हैं और इनमें चुनौतियाँ हैं भी तो केवल किसी महत्त्वपूर्ण सबक़ की भूमिका के रूप में, तो ऐसा नहीं है। हालाँकि इसे पढ़ते हुए अनन्त काफ़ी आशावादी और सकारात्मक व्यक्तित्व के नज़र आते हैं और यह तत्त्व बार-बार उनकी लेखनी में प्रतिबिम्बित होते हैं। उन्होंने अपनी चुनौतियों और कटु अनुभवों को *कथा नीलगढ़* का हिस्सा बनाया तो ज़रूर है पर उसकी गहन पड़ताल में न जाकर उसकी तवज्जो को एक अनुभव मात्र तक ही सीमित रखा है। शोषण व हिंसा की घटनाओं का वे ज़रूर समाजशास्त्रीय विश्लेषण भी करते हैं और समाज के अनेक चेहरों में से एक इस चेहरे को अपनी किताब के आइने के माध्यम से सामने लेकर आते हैं।

पुस्तक से सम्बन्धित एक बहुत रोचक अनुभव अनन्त के एक शिक्षाविद्, शोधकर्ता और जागरूक नागरिक के रूप में सोचने और काम करने के अलग-अलग तरीक़ों से पहचान और अध्ययन का रहा। शिक्षा व शिक्षण के अपने प्रयोगों और बच्चों के बारे में बात करते हुए उनका रवैया बहुत जोशीला, आशावादी, और वर्तमान पर दृष्टि रखने वाला नज़र आता है, एक शोधकर्ता के रूप में उनके प्रश्न गहन हैं और बार-बार काम में धैर्य की पैरवी है, वहीं सामाजिक मुद्दों पर समझ बनाते या सवाल उठाते समय वे काफ़ी संयत, सबको साथ लेकर ही चलने पर दृढ़ व दूरगामी परिणामों पर सतत मन्थन करते और उसी के अनुसार अपनी रणनीति बनाते और उसपर अमल करते दिखते हैं।

किताब का एक अन्य आकर्षक पहलू शिवांगी सिंह के चित्र हैं। ये चित्र बीच-बीच में आकर आपको *कथा नीलगढ़* से जोड़े रखते हैं। ये चित्र कभी भी आपके ज़ेहन में बन रही नीलगढ़ की तस्वीर को प्रभावित करने का प्रयास नहीं करते बल्कि शब्दों पर चल रही आपकी आँखों को एक अर्धविराम देकर, बिना आपका ध्यान भटकाए वापस ले चलते हैं, नीलगढ़ की ओर।

*सभी चित्र : शिवांगी सिंह, पुस्तक *सब मज़ेदारी है! कथा नीलगढ़* से साभार

अंकित मौर्य शिक्षा के क्षेत्र में गत 7 वर्षों से विभिन्न भूमिकाओं में सक्रिय हैं। वर्तमान में सेवा मन्दिर, उदयपुर के साथ शिक्षा सम्बन्धी कार्यक्रमों से जुड़े हुए हैं। शोध, बच्चों की कहानियाँ और उनके शिक्षण सम्बन्धी विषयों में गहन रुचि है।
सम्पर्क : ankit.maurya@sevamandir.org

द बुक थीफ़ : किताबें, समाज और सत्ता पर विमर्श

अमित कोहली

किताबें समाज का आइना होती हैं!, "किताबें ज्ञान का भण्डार हैं!", "किताबें अच्छी दोस्त होती हैं!", "किताबें दिमाग़ की ख़ुराक होती हैं!" किताबों के बारे में ऐसे जुमले अनेक बार सुने होंगे। हममें से तक़रीबन सभी की कोई पसन्दीदा किताब, कोई चहेता लेखक, कवि या विचारक होता है, जिसके लिखे को हम पढ़ना पसन्द करते हैं, साहित्य का रसास्वादन करते या पढ़कर कुछ सीखने-समझने की कोशिश करते हैं। शिक्षाकर्मी या अभिभावक के रूप में हम अकसर चाहते हैं कि हमारे विद्यार्थी / बच्चे किताबों से दोस्ती करें, उनमें पढ़ने की ललक विकसित हो और पढ़ना उनकी आदत बन जाए।

किताबों में ऐसे तमाम अनुभवों से सामना कराने की कूवत होती है जिनसे असल ज़िन्दगी में शायद हम रूबरू न हो सकें। शौक़िया पढ़ाकू हों या आदतन, किताब मिलते ही पन्ने पलटना और अगर वह दिल को छू जाए तो उसे हासिल करने, पूरी पढ़ लेने की तमन्ना होना स्वाभाविक है। इसलिए कई पढ़ाकू किताब की दुकानों में घण्टों बिताते हैं, कुछ पढ़ाकू पुस्तकालयों में वक़्त गुज़ारना पसन्द करते हैं। दोस्तों-परिचितों के बीच किताबों का लेन-देन दोस्ती निभाने का सिर्फ़ एक ज़रिया या शग़ल नहीं, क्रय शक्ति के अभाव में कई बार यह ज़रूरत भी बन जाता है। कुछ व्यक्तियों की आदत होती है कि वे किताबें पढ़कर लौटाते नहीं। चन्द लोग ऐसे भी होते हैं जो चुपके से किताबें उठा ले जाते हैं। इसे शायद हम चोरी कह सकते हैं। लेकिन, अगर कोई व्यक्ति बग़ैर पूछे किताब लेता है तो क्या वह सिर्फ़ छपाई ले रहा है जो जिल्दों के भीतर काग़ज़ पर की गई है? क्या वह चित्र और उनके

आकार, रंग और बनावट चुरा रहा है? क्या वह किताब में छपे हर्फ़ों के मायने और ख़्याल चुरा रहा है? दरअसल वह क्या चुरा रहा होता है?

द बुक थीफ़ फ़िल्म एक ऐसी किशोरी की कहानी पर आधारित है जिसे किताबों से प्यार हो जाता है। और, यह प्यार उसकी ज़िन्दगी बदल देता है। कहते हैं न कि एक किताब ज़िन्दगी बदलने के लिए काफ़ी है। इस कहानी में भी ऐसा ही कुछ होता है। कहानी 1938 के जाड़े से शुरू होती है और 1945 तक चलती है। लीज़ल (सोफ़ी निएलीज़) अपनी माँ और छोटे भाई के साथ रेल में यात्रा कर रही होती है। यात्रा के दौरान भाई की मृत्यु हो जाती है। पटरी के पास एक क़ब्रिस्तान में उसे दफ़नाया जाता है। वहीं लीज़ल को एक किताब मिलती है – *द ग्रेवडिगर्स हैण्डबुक* (क़ब्र खोदने वाले की विवरण पुस्तिका)। वह किताब अपने पास रख लेती है। इसके बाद उसकी माँ ग़ायब हो जाती है। सरकार द्वारा जर्मनी के किसी छोटे शहर में लीज़ल को एक परिवार में दत्तक दे दिया जाता है। कहानी में आगे चलकर लीज़ल को पता चलता है कि उसकी माँ कम्युनिस्ट होने की वजह से उसे छोड़कर चली गई थी। नाज़ी जर्मनी में कम्युनिस्ट होना गुनाह था। और उसकी माँ को डर था कि उनके कम्युनिस्ट होने से उनकी बेटी को नुकसान न उठाना पड़े।

उसकी नई माँ, रोज़ा ह्यूबरमैन (एमेली वॉटसन) ऊपर से अक्खड़ लेकिन भीतर से नर्मदिल इंसान है, जबकि उसके नए पिता हॅन्स ह्यूबरमैन (जोफ़्री रश) सीधे-सादे, दयालु प्रौढ़ हैं। पड़ोस में रहने वाला रुडी स्टेनर (निको लिअर्श) लीज़ल का दोस्त बन जाता है जो स्कूल में सहपाठी भी हैं। शुरुआत में संकोची और अन्तर्मुखी नज़र आने वाली लीज़ल को अपने नए परिवार के साथ तालमेल बैठाने में कुछ दिक़्क़तें पेश आती हैं। लेकिन जैसा कि आमतौर पर वयस्क कल्पना भी नहीं कर सकते, बच्चों में परिस्थितियों के साथ– ख़ासतौर पर प्रतिकूल और चुनौतीपूर्ण परिस्थितियों के साथ– सामंजस्य बैठाने की अद्‌भुत क्षमता होती है। वह
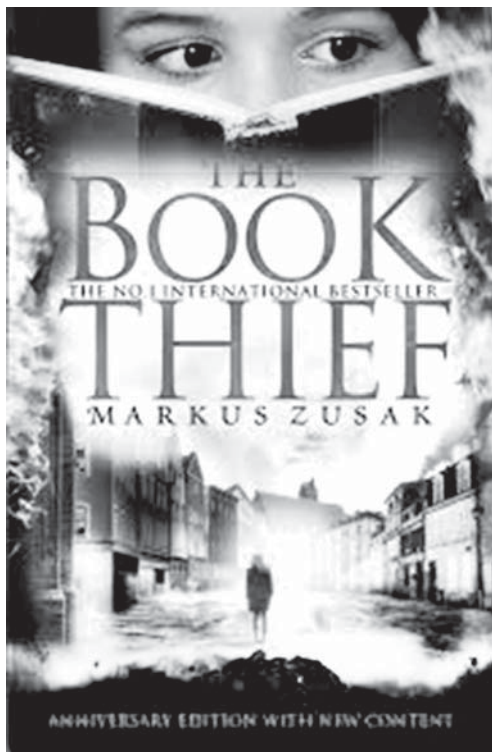
अपने नए पिता के दोस्ताना होने और नई माँ के कठोर होने का अहसास पा लेती है।

पहली बार जब वह रुडी के साथ चहलक़दमी करते हुए स्कूल पहुँचती है तो देखती है कि पत्थर की एक ऊँची और मज़बूत इमारत सिर ताने खड़ी है। इमारत के दरवाज़े के दोनों ओर राष्ट्रध्वज फहरा रहे हैं। उसकी नज़रें झण्डों पर जम जाती हैं और भोले चेहरे पर हल्की घबराहट और चिन्ता तैरने लगती है। परदे से उसके चेहरे का क्लोज़-अप अचानक विलोपित हो जाता है और तत्कालीन जर्मनी के राष्ट्राध्यक्ष अडोल्फ़ हिटलर की तस्वीर परदे के केन्द्र में प्रकट होती है, जिसे राष्ट्रध्वज के तोरण से सजाया गया है।

स्कूल का पहला ही दृश्य दो सम्बन्धों को रेखांकित करता है, स्कूल और राष्ट्र का सम्बन्ध व राष्ट्र और शासक का सम्बन्ध। यहाँ ज्ञान के केन्द्र पर तानाशाह शासक क़ाबिज है। कक्षा में शिक्षिका उसका नाम पूछती हैं और श्यामपट्ट

पर लिखने का आदेश देती हैं। लीज़ल अपने बाएँ हाथ से बोर्ड पर तीन क्रॉस बनाती है। कक्षा में ठहाके गूँजने लगते हैं। ज़ाहिर है कि वह लिखना नहीं जानती।

बाल-केन्द्रित शिक्षण व रचनावाद के आगमन से पहले माना जाता था कि कक्षा का ढाँचा एक साँचे की तरह होता है, जिसमें विद्यार्थी को गीली मिट्टी बनकर आकार ग्रहण करना होता है। कक्षा का माहौल और संस्कृति उस भट्टी के समरूप माने जाते थे जो साँचे में क़ैद गीली मिट्टी को तपाकर ठोस आकार देती है। लीज़ल की कक्षा ठीक वैसी ही है। हालाँकि रचनावादी नवाचारों ने स्कूली शिक्षा के उस ढाँचे को ख़ारिज करने की कोशिशें की हैं, लेकिन अनेक शिक्षक, शिक्षाविद्, नीति निर्माता और अभिभावक उस तरह की शिक्षण प्रक्रिया को आज भी उचित, उपयोगी और प्रभावी मानते हैं।

कक्षा के बाहर लीज़ल का मज़ाक़ उड़ाया जाता है। इसपर वह एक सहपाठी को बुरी तरह पीटती है। कुछ देर बाद रुडी से उस घटना पर बात करते हुए वह एक मार्मिक बात कहती है, "मैं पढ़ना-लिखना नहीं जानती, इसका मलतब यह नहीं कि मैं मूर्ख हूँ।"

हम जानते हैं कि शिक्षा का दायरा अक्षरज्ञान से परे, व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास तक फैला हुआ है। यह भावी वयस्क को समाज के एक उपयोगी सदस्य और राष्ट्र के एक विचारशील नागरिक बनने में मदद करने का भी है। विद्यार्थियों की इस शिक्षण-प्रक्रिया में सामाजिकता, मूल्यबोध, जिज्ञासा, तार्किक चिन्तन, समस्याओं से जूझना, भावनात्मक विकास जैसे तमाम तत्त्व अन्तर्भूत हैं जो उन्हें एक वयस्क के रूप में सार्थक और सन्तुष्ट ज़िन्दगी जीने में मदद करते हैं। साक्षरता इसका एक छोटा-सा हिस्सा है।

उसी रात नया पिता हॅन्स उससे बात करता है। सीने से चिपकी किताब देखकर हॅन्स को जिज्ञासा होती है और वह किताब के पन्ने पलटकर देखने लगता है। जब वह उस किताब के बारे में पूछता है तो पहले तो लीज़ल कहती है कि यह किताब उसकी है। दूसरी बार पूछने पर वह कहती है, "यह किताब हमेशा से मेरी नहीं थी।"

जिसे हम ज्ञान मानते हैं, वह गतिशील है, वर्धमान है। लीज़ल के कथन– "यह किताब हमेशा से मेरी नहीं थी।" – में 'किताब' की जगह 'ज्ञान' रखकर हम कह सकते हैं कि ज्ञान किसी एक का नहीं होता, स्थिर और जड़ नहीं होता। वह अलग-अलग लोगों के बीच होने वाली अन्तर्क्रियाओं के ज़रिए अनवरत रूपान्तरित और विकसित होता रहता है। लेकिन जब हम स्कूल नामक संस्था की चहारदीवारी में क़दम रखते हैं, वहाँ के माहौल, प्रक्रियाओं और पाठ्यपुस्तकों, परीक्षाओं वग़ैरह की पड़ताल करते हैं तो ज्ञान को स्थिर मनवाने की ज़िद दिखाई देती है। ऐसे बहुत कम स्कूल हैं जो समस्त शालेय प्रक्रियाओं में रचनावादी नवाचारों पर अमल कर पाते हैं।

किताब के अर्थबोध की बात की जाए, तो हर पाठक मायनों की रचना करने के लिए आज़ाद होता है। दरअसल, ऐतिहासिक रूप से वही किताब अमर या क्लासिक होने का दर्जा पा सकी है जिसने समय और स्थान की सीमाओं से परे जाकर पाठकों को नए अर्थ खोजने और गढ़ने की आज़ादी दी है। इस रूप में किताब, भले ही उसके हर्फ़, जिल्द और रंग-रूप हज़ारों प्रतियों में एक जैसे हों; हर पाठक उसे पढ़ते हुए, यानी अन्तर्क्रिया करते हुए, नए रूप में देखता-समझता है। इस प्रक्रिया में हर पाठक एक तरह से किताब को पुनर्सृजित कर रहा होता है। लीज़ल हमें याद दिलाती है कि किताब किसी एक की नहीं होती, न किसी एक लेखक की और न ही किसी एक पाठक की।

उसी रात हॅन्स को पता चलता है कि लीज़ल पढ़ नहीं सकती। वह उसके पास मौजूद इकलौती किताब *द ग्रेवडिगर्स हैण्डबुक* के ज़रिए पढ़ाना शुरू करता है, धीरे-धीरे लीज़ल को पढ़ने में मज़ा आने लगता है और वह किताबों की दीवानी हो जाती है। एक विवरण-पुस्तिका भी किसी बच्ची में पढ़ने की ललक जगाने के लिए पर्याप्त हो सकती है!

रोज़ाना रात को सोने से पहले वे कुछ पन्ने पढ़ते हैं। किताब एक बार पूरी पढ़ना हो जाने के बाद लीज़ल उसे फिर पढ़ना चाहती है। हॅन्स उसे टालकर एक सरप्राइज़ देता है। वह उसे घर के तहख़ाने में ले जाता है। वहाँ दीवारों पर वे तमाम नए शब्द लिखे होते हैं जो किताब में उन्होंने सीखे थे। हॅन्स यहाँ एक विचारशील शिक्षक की भूमिका में नज़र आता है। जिज्ञासु विद्यार्थी के लिए किसी किताब को पढ़कर ख़त्म करने का रोमांच अद्‌भुत होता है। कई बार विद्यार्थी आग्रह करने लगते हैं कि वही किताब फिर पढ़ी जाए। ज़ाहिर है कि वे उस रोमांच को फिर-फिर पाना चाहते हैं, अधिकाधिक बार अनुभव करना चाहते हैं। लेकिन, विचारशील शिक्षक के लिए ज़रूरी है कि वह विद्यार्थी को नए अनुभव दे, नई चुनौतियों से सामना कराए। यहाँ वायगोत्स्की याद आते हैं। लीज़ल द्वारा निकट विकास क्षेत्र की एक पायदान पर चढ़ जाने के बाद हॅन्स स्कैफ़फ़ोल्डिंग करते हुए उसके अधिगम का अपेक्षित स्तर थोड़ा और ऊँचा करते हुए उसके सामने एक रोचक चुनौती पेश करते हैं। वह यहाँ किसी अभिभावक से कहीं ज़्यादा, एक जागरूक शिक्षक के रूप में नज़र आते हैं।

स्कूल में अकादमिक और ग़ैर-अकादमिक जो भी प्रक्रियाएँ होती हैं, वे समाज में घटित हो रही प्रक्रियाओं से अलहदा नहीं होतीं। स्कूल

और समाज दोनों एक दूसरे से जुड़े होते हैं और एक दूसरे पर असर डालते हैं, एक दूसरे को लगातार बदलते रहते हैं। इसे हम अपने आसपास के अनुभवों से जोड़कर देख सकते हैं। इसलिए शिक्षा से सरोकार रखने वाले लोगों के लिए सचेत और संवेदनशील रहने की ज़रूरत है, ताकि वे अपने विद्यार्थियों में शालेय प्रक्रियाओं और समाज की घटनाओं के प्रति आलोचनात्मक चिन्तन विकसित करने में मदद कर सकें। हालाँकि लीज़ल का स्कूल ऐसा कुछ नहीं करता, बल्कि समाज और शासन के प्रभाव को यथावत आत्मसात करके विद्यार्थियों तक वही मूल्य हस्तान्तरित करने की कोशिश करता नज़र आता है।

फ़िल्म में एक घटना अप्रैल 1939 की है। जर्मन राष्ट्र के नेता (फ़्यूरर) का जन्मदिन है। हर घर पर राष्ट्रध्वज फहरा रहा है। बच्चे-बूढ़े सभी लोग जलसे में शामिल होने के लिए तैयार होकर निकलते हैं। मंच से मेयर भाषण दे रहा है, 'राष्ट्र की उन्नति के लिए हम अपना नैतिक और बौद्धिक शुद्धिकरण करने के लिए प्रतिबद्ध हैं। शिक्षा, रंगमंच, सिनेमा, साहित्य, समाचार माध्यम– ये राष्ट्र का विशिष्ट व्यक्तित्व गढ़ने वाले आधारस्तम्भ हैं।" सामने खड़ी जनता हुँकार भरती है। मंच से भाषण जारी रहता है, "आज रात हम यहाँ इसीलिए इकट्ठे हुए हैं कि हम ख़ुद को बौद्धिक गन्दगी से मुक्त करें!" तभी, मशाल थामे दो सैनिक आगे बढ़ते हैं और किताबों के विशाल ढेर को जला देते हैं। जनता हर्षध्वनि से इस कृत्य का समर्थन करती है।

इस बीच रुडी और लीज़ल का एक सहपाठी, जो बाल सैनिक है, उन्हें एक-एक किताब थमाकर जलाने को कहता है। वह लीज़ल से यह भी कहता है कि तुम्हारी माँ कम्युनिस्ट है, राष्ट्र की दुश्मन है। ज़ाहिर है कि बाल सैनिक ने यह बात स्कूल, समाज और शासन के उस वृत्तान्त से ग्रहण की है जो कोरस की तरह एकरूप हो चुका है। रुडी तो आगे बढ़कर किताब आग में फेंक देता है। लेकिन लीज़ल काफ़ी संकोच के बाद अपने हाथ की किताब आग के हवाले करती है।

कुछ समय बाद रुडी को पता चलता है कि लीज़ल ने मेयर के घर से कुछ चुराया है, वह भी किताब! वह लीज़ल को 'बुक थीफ़' कहकर उलाहना देता है। जवाब में लीज़ल कहती है, "मैंने किताब चुराई नहीं, उधार ली है।"

दरअसल कहानी के भीतर छिपी परतें सत्ता और समाज द्वारा किए जा रहे व्यवहार की ओर इशारा करती हैं। सत्ता कहती है कि बौद्धिक गन्दगी मिटाने के लिए किताबें जला देनी चाहिए। निर्विचार और अतार्किक होने की राह पर बढ़ रहा समाज किताबें आग में झोंक देता है। इस तरह सत्ता और समाज किताबें चुरा रहा है और ऐसा करते हुए ज्ञान के आलोक से, तार्किकता से, जानकारियों और सवालों से बच भी रहा है, अपना जी चुरा रहा है। इस अन्धे युग में एक किशोरी, मेयर के निजी पुस्तकालय से और फिर जलते ढेर में से किताब उठा लेती है। इस नज़रिए से देखने पर लीज़ल हमें चोर नहीं, बल्कि किताबों की मुहाफ़िज़ नज़र आती है जो किताब अलमारी और फिर आग से बाहर नहीं निकालती, बल्कि अँधेरे से उजाले में लाती है।

कहानी नवम्बर 1942 में पहुँचती है, जर्मनी के ख़िलाफ़ इंग्लैण्ड ने युद्ध की घोषणा कर दी है। हवाई हमलों से बचने के लिए लीज़ल के मोहल्ले की सारी औरतें, बच्चे और चन्द बूढ़े बंकर में बैठे धमाकों से सिहर रहे हैं। अचानक लीज़ल कुछ कहना शुरू करती है। पहले तो लोगों को ताज्जुब होता है कि इस आफ़त की घड़ी में कुछ कहने का हौसला किसी बच्ची को कैसे हो सकता है। फिर उन्हें पता चलता है कि वह कोई कहानी कह रही है। कुछ पल रुक कर वह कहानी आगे बढ़ाती है। कहानी जीवन से प्यार होने और डर को जीत लेने के बारे में है, जो लीज़ल ने ख़ुद गढ़ी है। साहित्य, वैसे तो 'इस्तेमाल की चीज़' नहीं है, मगर वह कई मौक़ों पर काम आता है। लीज़ल की कहानी उसके पड़ोसियों में आशा और हौसले की रोशनी भरती है।

दो घण्टे ग्यारह मिनट की यह फ़िल्म पूरी तरह शिक्षा और स्कूल पर केन्द्रित नहीं है; बचपन, अभिभावकत्व, युद्ध, मानवतावाद, राष्ट्रवाद, नागरिक की भूमिका आदि जीवन के तमाम रंगों से इसे कैनवास पर बख़ूबी सजाया गया है। इसलिए इस फ़िल्म में सभी को अपने लिए कुछ नए मायने मिल सकते हैं। हालाँकि शिक्षा से सरोकार रखने वाले व्यक्तियों को यह फ़िल्म ज़रूर देखनी चाहिए ताकि स्कूल के ज़रिए रिसकर दिलो-दिमाग़ को क़ाबू कर लेने वाली तानाशाह सोच के प्रति वे थोड़ा अधिक जागृत, थोड़ा अधिक सचेत और थोड़ा अधिक संवेदनशील हो सकें।
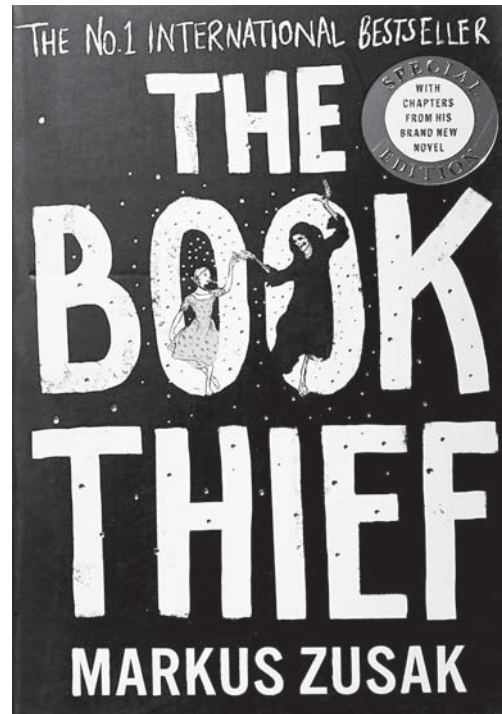
अमित कोहली घुमक्कड़ी करने और पढ़ने के शौक़ीन हैं। तक़रीबन 15 साल एकलव्य फ़ाउण्डेशन के साथ विविध स्तरों पर काम किया है। शिक्षा के इतिहास, डिस्कूलिंग एवं वैकल्पिक शिक्षा में विशेष रुचि है। अमित स्वयं को वैचारिक रूप से गाँधीजी के क़रीब पाते हैं।
सम्पर्क : amt1205@gmail.com

मेरे प्रिय शिक्षक की छवि मुझे बच्चों के साथ काम करने को प्रेरित करती है

शिक्षक लालाराम विश्वकर्मा के साथ अंजना त्रिवेदी की बातचीत

चित्र : बिन्दु जैन

अंजना : लालाराम जी, व्यक्तिगत जीवन के बारे में विस्तार से बताइए।

लालाराम : मेरा जन्म 1 दिसम्बर, 1960 में विदिशा ज़िले के कागपुर गाँव में हुआ जहाँ मात्र एक प्राथमिक विद्यालय था। कक्षा पाँच के बाद पास के ही गाँव गढ़ला से मैंने कक्षा 6 से 8 तक की शिक्षा पूरी की। तत्पश्चात अपने गाँव से नटेरन जाना पड़ा जो सड़क मार्ग से लगभग 6 किलोमीटर दूर है। उस समय बसें बहुत कम चलती थीं और हम विद्यार्थियों के लिए तो वह लगभग सपने की सवारी थी। अतः हम गाँव के सभी विद्यार्थी एक समूह में नदी पार करके रोज़ स्कूल आना-जाना करते थे। मैं शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, नटेरन के उस शुरुआती समय का विद्यार्थी रहा, जब न तो स्कूल भवन था और न ही सभी विषयों को पढ़ाने वाला पर्याप्त स्टाफ़। कक्षाएँ मन्दिर के दालान में पीपल के चबूतरे और ऐसे ही कहीं ख़ाली पड़े मैदान में लगा करती थीं। विषम मौसम में कक्षाओं का लगना तो क्या, सिर छुपाने की जगह भी बमुश्किल मिलती थी। जैसे-तैसे कक्षा 9वीं उत्तीर्ण की। ग्रामीण क्षेत्र का विद्यालय था, अतः विद्यार्थी केवल कला संकाय की ही शिक्षा प्राप्त कर पा रहे थे। कला संकाय के साथ हिन्दी में मेरी रुचि पैदा करने वाले प्रेरणास्रोत श्री जगदीश चंद्र गौड़ प्राचार्य थे। उनकी पठन-पाठन की शैली बड़ी मनमोहक और हृदयग्राही थी। भूगोल की ओर रुचि जागृत करने का श्रेय शिक्षक जुगल किशोर गुप्ताजी को है जिनकी सादगी से मैं अत्यन्त प्रभावित हुआ। गुप्ताजी ने

भूगोल के प्रारम्भिक ज्ञान से ओतप्रोत करके, उसके प्रति जिज्ञासु बना दिया। संयोग की बात है कि एलबीएस कॉलेज गंज बासौदा में भूगोल के प्रोफ़ेसर श्री पारसमल दासोत जहाँ अपने विषय के मर्मज्ञ और ज्ञाता थे, वहीं कठिन-से-कठिन अवधारणाओं को बेहद सरल ढंग से समझा पाने में भी पारंगत थे। भूगोल के पेचीदा प्रश्नों, सर्वेक्षण के अनुरेखण, चित्र-मानचित्र, आदि के कठिन बिन्दुओं को सरलता से समझाने में गुणी थे। इसके अलावा विविध कलाओं, जैसे– कोयले के पत्थर पर मूर्तियाँ बनाना, लकड़ी के विभिन्न आकार-प्रकारों में आकृतियाँ निरूपित करना, सूक्ष्म चित्रों से लेकर बड़े कैनवास पर चित्रकारी के भी जानकार थे। साहित्य में भी अपनी लघु कथाओं और क्षणिकाओं के लेखन में ख्याति प्राप्त लेखक थे। उनकी रचनाएँ हिन्दी भाषा के अतिरिक्त कई अन्य भाषाओं में अनूदित हो रही थीं। ऐसे महान व्यक्तित्व के धनी दासोत सर से मैं काफ़ी प्रभावित हुआ और भूगोल की प्रायोगिक गतिविधियों में, विशेष रूप से अपने कला कौशल में, दक्षता प्राप्त करने लगा। जो कुछ मैंने अपने शिक्षकों से सीखा, वही मैं अपने स्कूली बच्चों को देने का पूरा प्रयास करता हूँ।

चित्र : पारूल बत्रा

मेरा मानना है कि एक अच्छे शिक्षक की छवि आपके मन में जीवनपर्यन्त बनी रहती है। उस छवि के प्रकाश में आप अपने शिक्षक कर्म की गरिमा बनाए रखते हैं। शिक्षक और बच्चे दोनों एक दूसरे के छोटे-छोटे कामों को बख़ूबी देखते और उनसे सीखते हैं। अपने शिक्षक से जिस प्रकार मैंने सीखा उस तरह मैं अपने स्कूली बच्चों को सिखाना चाहता हूँ। मेरे शिक्षक ने मुझमें जिज्ञासा पैदा कर अपने संचित ज्ञान को बाल मनोविज्ञान के अनुरूप ट्रान्सफ़र करने की कला दी है।

यह वह दौर था जब *राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005* जो बात आज कहती है, वह 70 के दशक के शिक्षक कर रहे थे। जैसे– ज्ञान को विद्यालय से बाहर परिवेश के साथ जानना-समझना, उसे जीवन के साथ जोड़ना सुनिश्चित करना ताकि अधिगम रटने की विधियों से परे हो, पाठ्यचर्या को समृद्ध बनाना ताकि यह पाठ्यपुस्तकों पर केन्द्रित न रहकर बच्चों का सर्वांगीण विकास कर सके, और परीक्षाओं को अधिक लचीला बनाना व कक्षा-कक्ष के साथ समेकित करना।

उस दौर की एक और बात ग़ौर करने लायक़ है कि मेरे गाँव में लोगों को उपन्यास पढ़ने का बड़ा शौक़ था। यही वजह रही कि मेरा रुझान भी उपन्यास पढ़ने की ओर हो गया। विदिशा के तिलक चौक पर सार्वजनिक वाचनालय का स्थाई सदस्य बन गया और उसमें पढ़ी किताबों पर हम गाँव के लोगों और शिक्षक बिरादरी में चर्चा होती थी। उपन्यास की इस लत ने मुझसे हिन्दी में स्नातकोत्तर करवा लिया। अब गाँव हो या शहर, दोनों जगह ऐसा माहौल देखने को नहीं मिलता है।

बाद में मैंने भूगोल में स्नातकोत्तर की परीक्षा उत्तीर्ण की। मैं गाँव वालों की नज़र में मास्टर ही नहीं, बल्कि सलाहकार भी बन गया था। सुबह से स्कूल पहुँच जाता था। स्कूल दालान

में ही लगता था। मैं अपने नित्य क्रियाकलापों से निवृत्त होकर कक्षा लगाता और सूर्य डूबने तक बच्चों को पढ़ाता था। बच्चा चाहे कितनी ही बार खाना खाने, पानी पीने अथवा अन्य कारणों से अल्प अवकाश लेकर कक्षा से बाहर जाने के लिए सहज स्वतंत्र था। शासकीय टाइम टेबल का पालन नहीं हो रहा था। यहाँ तक कि रविवार को भी स्कूल लगता था। पढ़ाना मेरा नशा हो गया था। बच्चे ख़ूब पढ़ रहे थे।

इस पढ़ाई में बच्चों के साथ उन्हें धरती की बनावट, जैसे– ऊँची-नीची जगह, पठार, झील, सूर्योदय और सूर्यास्त, बरसात में बनता हुआ इन्द्रधनुष दिखाने बाहर चला जाता था। बस्ती के आसपास के खेत-खलिहान ही हमारे शैक्षणिक भ्रमण के उत्तम पर्यटन स्थल थे। उस समय सोशल मीडिया नहीं था। गाँव में बच्चों से शराब और जुए जैसे मुद्दों पर भी बात करते और बड़े-बुज़ुर्ग ऐसे लोगों को हमारे पास लेकर आते थे कि इनकी यह लत छुड़वा दीजिएगा। इस तरह के कामों से मुझे एक ज़िम्मेदारी महसूस हुई और इस ज़िम्मेदारी ने मुझे अच्छा शिक्षक बनाने में मदद की थी। लोगों के व्यसन छुड़वाने के लिए मैंने अनूठे प्रयास किए, जिसमें एक हद तक सफल भी हो पाया।

अंजना : आपके शिक्षक पदस्थापना दौरान के कुछ रोचक अनुभव बताइए।

लालाराम : सरकारी बिरादरी में अलग-अलग जगहों पर पदस्थापना आम बात है। शिक्षकों के साथ यह घटता रहता है। हम सब जानते हैं कि छोटे गाँव में बड़े लोगों का काफ़ी दबदबा रहता है। उसी प्रकार हिनोतिया गाँव में प्रभावशाली व्यक्तियों का दबदबा हमेशा से रहा है। ऐसे ही एक प्रभावशाली व्यक्ति ने अपने बेटे को स्कूल तो भेजना शुरू किया किन्तु वह नहीं चाहते थे कि उनका बच्चा आम बच्चों जैसा दिखाई दे। मैंने जब विद्यालय में यूनिफ़ॉर्म कम्पल्सरी की तो उस बच्चे को छोड़कर सारे विद्यार्थियों ने यूनिफ़ॉर्म बनवा ली और सभी अपने सुसज्जित परिधान में विद्यालय आने लगे। दुविधा थी कि बच्चे के पिताजी को कैसे कहें कि वह यूनिफ़ॉर्म बनवा दें। किसी भी शिक्षक की यह कहने की हिम्मत नहीं थी। इस कार्य को सम्पन्न करने हेतु मैंने एक कहानी लिखी और बच्चे के हाथ से

चित्र : बिन्दु जैन

उनके पिताजी को पढ़ने के लिए भेजी। मुझे डर लग रहा था कि शायद स्कूल आकर वह मेरा अपमान करें अथवा अन्य आशंका से मैं भयभीत हो रहा था। परन्तु कहानी का असर यह हुआ कि वह इस बात से सहमत हो गए कि उनका बच्चा भी स्कूल यूनिफ़ॉर्म में ही स्कूल आएगा।

अंजना : आपने ग्रामीण बालिकाओं के स्कूल में क्या विशेष किया?

लालाराम : सन् 2003 में मेरा ट्रान्सफ़र चितोरिया मिडिल स्कूल में हो गया। उस समय सुधा चौधरी ज़िला कलेक्टर, अनुराधा शंकर सिंह एसपी और राजश्री सिंह ज़िला पंचायत अध्यक्ष थीं। इन तीनों महिलाओं ने विदिशा ज़िले के चितोरिया गाँव का कायाकल्प कर दिया था। राजश्री सिंहजी से विद्यालय में महिला शौचालय बनवाने हेतु आग्रह किया तो उन्होंने तुरन्त स्वीकृति दे दी। शौचालय बनते ही गाँव की लड़कियों ने स्कूल में बड़ी संख्या में प्रवेश लिया।

कई बार पिछले पन्ने पलटकर अपनी ज़िन्दगी देखने पर पाता हूँ कि मैं शिक्षक ही

बनना चाहता था, क्योंकि मैं अपने शिक्षकों से अत्यधिक प्रभावित था। उनको अपना आदर्श मानता रहा। उनके जैसा शिक्षक बनने की अभिलाषा हृदय में सजीव कर रखी थी। शासन ने मेरी योग्यता को परखा और समाज ने मेरे कामों को स्वीकार किया। अपने शिक्षकीय दायित्व से मैं प्रसन्न और सन्तुष्ट हूँ।

चित्र : पारुल बत्रा

अंजना : अपनी शिक्षण पद्धति और नवाचारी गतिविधियों के बारे में कुछ बताइए।

लालाराम : सन् 2005 में मेरा ट्रान्सफ़र शासकीय माध्यमिक विद्यालय, गढ़ला हो गया। यह वही विद्यालय है जहाँ से मैंने कक्षा 6 से 8 तक पढ़ाई की थी। मेरे मनोभाव में उमंगों के पंख लग गए थे कि जहाँ मैं पढ़ा था, वहीं पढ़ा रहा हूँ। अपने शिक्षकों के सारे शैक्षणिक क्रियाकलाप मेरे मानस पटल पर उभरकर आते थे। स्मृतियाँ निरन्तर ऊर्जा का संचार करती रहीं। तभी प्राइमरी स्कूलों में एक्टिविटी बेस्ड लर्निंग (एबीएल) और मिडिल स्कूलों में एएलएम प्रोग्राम संचालित किए जाने लगे थे। शाला परिसर में बने नवीन कक्ष को मैंने एबीएल के लिए सभी दिशा-निर्देशों का पालन करते हुए और उसमें कुछ नवाचारी गतिविधियों को सम्मिलित कर ऐसा सुसज्जित किया कि जो देखता, दंग रह जाता। यहीं मैंने एक कमरे की दीवारों पर उत्तरी अमरीका, दक्षिणी अमरीका, ऑस्ट्रेलिया, भारत और मध्य प्रदेश के भौतिक व राजनीतिक मानचित्रों को पेन्ट से चित्रित करा दिया। विज्ञान, गणित और भाषा की विभिन्न अवधारणाओं को दीवारों के शेष बचे भाग पर सूत्र शैली में सँजो दिया। पूरे विद्यालय भवन की दीवारों के ऊपरी भागों पर पट्टिका निर्मित कर उसपर सूत्र वाक्यों का अंकन कर दिया। विद्यालय धीरे-धीरे ज़िले में प्रसिद्धि पाने लगा और अधिकारियों के दौरों का सिलसिला चालू हो गया। मैं प्रोत्साहन और शाबाशी से गदगद हो रहा था। इस क्रम में मुझसे एक भारी भूल होने लगी कि मैं शैक्षिक कार्य छोड़कर ऐसे ही अन्य कार्यों में रुचि लेने लगा, यहाँ तक कि आसपास के विद्यालयों की एबीएल एवं एएलएम कक्षाओं के कक्ष सजाने में सलाहकार का काम करने में मैं अपने-आपको गौरवान्वित अनुभव करने लगा।

इसी दौरान सहायक शिक्षक से सामाजिक विज्ञान के उच्च श्रेणी शिक्षक के पद पर पदोन्नत होकर अपने गृह निवास कानपुर के हाई स्कूल में मेरा पदांकन हो गया। स्कूल में शिशुपाल सिंह जाटव, प्राचार्य का सान्निध्य मिला, जो काफ़ी अनुशासित एवं अपने कार्य के लिए प्रतिबद्ध हैं। अब मैं एक परिपक्व शिक्षक के रूप में अपनी नवाचारी शिक्षण गतिविधियों के साथ कर्मशील हो गया। शाला भवन पठार पर था और मैदान के लिए मेरे मित्र सौदान सिंह ने बोल दिया था कि जितनी ज़मीन की आवश्यकता हो उतनी ज़मीन सीमांकन कर फेंसिंग करवा लो। मैंने ऐसा ही कर उस पथरीले पठार पर पौधारोपण करवा दिया। इस विद्यालय में रहकर मुझे प्रतिभा प्रदर्शन के अनेक अवसर मिले जिनमें इंस्पायर अवॉर्ड के तहत बच्चों के साथ मिलकर तरह-तरह के मॉडल बनाकर प्रस्तुत किए और उनका चयन ज़िला स्तर तक हुआ।

अंजना : आप सामाजिक विज्ञान के शिक्षक रहे हैं, इस विषय को पढ़ाने का आपका क्या दृष्टिकोण है?

लालाराम : सामाजिक विज्ञान कोई एक विषय न होकर बहुत सारे विषयों का एक समूह है, जिसमें इतिहास, नागरिक शास्त्र, भूगोल, अर्थशास्त्र, पर्यावरण, समाजशास्त्र, गणित, आदि का व्यवहारिक उपयोग समाहित है। यही कारण है कि सामाजिक विज्ञान पढ़ाने के लिए विभिन्न शिक्षण पद्धतियों की आवश्यकता महसूस होती है। जहाँ तक मेरे पढ़ाने का ढंग है, मैं समाज विज्ञान को शिक्षक केन्द्रित न मानकर विद्यार्थी केन्द्रित मानता हूँ। विद्यार्थियों के मध्य और विद्यार्थियों के माध्यम से सम्पन्न होने वाली गतिविधियों का उपयोग करके अवधारणाओं को स्पष्ट करने का प्रयास करता हूँ।

इतिहास को पढ़ाने में क़िस्से-कहानियों को ऐतिहासिक सन्दर्भों के माध्यम से सुनाने और उस तरह की वर्तमान में यदि कोई घटना घटित होती है तो दोनों में उस काल के परिप्रेक्ष्य और आज के परिप्रेक्ष्य में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित कर उनको रोचक बनाने का प्रयास करता हूँ। नागरिक शास्त्र वर्तमान का शास्त्र है जिसमें किसी देश के नागरिकों के सर्वांगीण विकास के लिए शासन और समाज दोनों की सक्रिय भागीदारी को कक्षा में विभिन्न गतिविधियों द्वारा समझने का प्रयास करते हैं। नियुक्त विद्यार्थी-मंत्रियों का चुनाव प्रत्यक्ष मतदान प्रणाली के द्वारा सम्पन्न कर, गठित विद्यार्थी मंत्रिमण्डल के निर्माण से लोकतांत्रिक प्रक्रिया को बेहतर ढंग से समझाया जाता है।

भूगोल को विभिन्न पेडागॉजी के माध्यम से समझाना सुगम होता है, जैसे– शैक्षणिक भ्रमण के समय ऐसे स्थान पर जाना जहाँ पर्वतीय, पठारी और मैदानी भूमि के दृश्य दिखाई देते हों। विद्यार्थियों को इन भू-आकृतियों को समझना एवं उनमें परस्पर अन्तर कर पाना आसान होता है। भ्रमण के दौरान विभिन्न प्रकार की चट्टानों, मिट्टियों की पहचान और उनमें पैदा होने वाली उपजों का दृश्य, फ़सल वितरण की अवधारणा आदि सीखना आसान होता है। नदियों के मार्ग में उनसे बनी भू-आकृतियों, जैसे– विसर्प आदि, को समझना सुगम होता है।

ग्लोब और मानचित्र के माध्यम से अक्षांश व देशान्तर रेखाओं के संजाल को समझाना, उनकी संख्या और प्रकृति को स्पष्ट करना कि अक्षांश पूर्ण वृत्त और देशान्तर अर्धवृत्त क्यों होते हैं? जहाँ अक्षांशों के मध्य समानान्तर दूरी होती है वहीं भूमध्य रेखा से ध्रुवों की ओर बढ़ने पर देशान्तरों के मध्य दूरी घटती जाती है और ध्रुवों पर शून्य तक हो जाती है। इस तरह ग्लोब को देखकर पृथ्वी के गोलाकार होने के अनुमान से बच्चे अक्षांश-देशान्तर की इन प्रवृत्तियों को सहज ही सीख जाते हैं। इन रेखाओं के माध्यम से किसी स्थान की स्थिति, उसका अक्षांशीय व देशान्तरीय विस्तार, उसकी चतुर्दिक सीमाएँ, आदि बच्चों के मन-मस्तिष्क में उस क्षेत्र की पहचान का स्थाई अंकन करने में सफल हो जाती हैं। समोच्च रेखाओं के प्रायोगिक कार्य से बच्चे किसी स्थान की वास्तविक ऊँचाई व गहराई का ज्ञान प्राप्त कर पाते हैं और वे

चित्र : बिन्दु जैन

समोच्च रेखाओं की उपयोगिता के महत्त्व को समझ पाते हैं।

ग्लोब के माध्यम से ताप कटिबन्ध और इससे जलवायु का निर्धारण व उस जलवायु में मानव जीवन की विभिन्न दशाओं को समझाना आसान होता है। विभिन्न आरेखों, मानचित्रों और चित्रों के माध्यम से जनसंख्या, वनस्पति, खनिजों, आदि के वितरण और आयात-निर्यात को इस पेडागॉजी के माध्यम से समझाना रुचिकर होता है। विद्यार्थियों को रूढ़ चिह्नों का अंकन व उनकी व्यवहारिक उपयोगिता को भी शैक्षिक भ्रमण में आसानी से सिखाया जाता है। सड़क पर बने हुए पुलों, घाटों, विभिन्न तरह के मोड़ों, सड़क, पशुओं की आवाजाही, आदि को विभिन्न रूढ़ चिह्नों और यातायात में उपयोगी संकेतों को समझकर वे दुर्घटनाओं से बच सकते हैं।

अंजना : लाम्बाखेड़ा मिडिल स्कूल में आते ही आपने कुछ महत्त्वपूर्ण काम करवाए, उनके बारे में संक्षिप्त में बताइए।

लालाराम : 2014 में मैं ट्रान्सफ़र होकर शासकीय माध्यमिक विद्यालय लाम्बाखेड़ा, भोपाल आ गया। यहाँ स्टेट बैंक ऑफ़ इंडिया की स्थानीय शाखा से बात करके बच्चों के लिए छह कम्प्यूटरों की व्यवस्था करवाई। स्कूल में शौचालय बहुत पुराना था और आवश्यक सुविधाएँ भी नहीं थीं; इसके लिए नेस्ले कम्पनी से सम्पर्क किया और सर्व सुविधायुक्त शौचालय बनवाया। बच्चों की तादाद देखते हुए स्कूल में फ़र्नीचर की कमी थी, इसके लिए केनफ़िन बैंक से सभी कक्षाओं और कार्यालय के लिए फ़र्नीचर की माँग की। उन्होंने आकर पहले सत्यापन किया और फिर आवश्यक फ़र्नीचर उपलब्ध करा दिया। इसी तरह, दूसरे दानदाताओं के माध्यम से आरओ वाटर फ़िल्टर, वाटर कूलर, लाइब्रेरी के लिए 25 हज़ार रुपए की पुस्तकों और 2 बुक शेल्फ़ से विद्यालय को लाभान्वित करवाने में सफल रहा।

अंजना : आप अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन की सामाजिक विज्ञान टीम के साथ सम्बद्ध रहे और अलग-अलग मौक़ों पर सहभागिता भी की है। शैक्षिक यात्रा में इस तरह के जुड़ाव को आप कैसे देखते हैं?

लालाराम : अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से सम्पर्क होने के बाद सामाजिक विज्ञान विषय को समझने व कक्षा में समझाने के मेरे तरीक़ों में और भी बदलाव आए। इसी दरम्यान अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के दिशा-निर्देशों के अनुपालन में शासकीय माध्यमिक विद्यालय लाम्बाखेड़ा में नवम्बर 2019 में बाल शोध मेले का आयोजन करने का निश्चय किया। बाल शोध मेले के लिए विभिन्न अवधारणाओं को क्लियर करने हेतु मॉडल की तैयारी करना पहला अनुभव था।

बाल शोध मेला पूरी तरह विद्यार्थियों पर केन्द्रित था। मुझे केवल एक सहयोगी की भूमिका में कार्य करना था। बाल शोध मेले की तैयारी जुलाई से ही होने लगी थी, जिसमें कक्षा 6 से 8 तक के विद्यार्थियों ने सौरमण्डल, सूर्यग्रहण व चन्द्रग्रहण, पेरिस्कोप, आदिमानव के हथियार, पृथ्वी के ताप कटिबन्ध, भारतीय मसालों का स्वाद, ज्वालामुखी, मानव विकास की श्रृंखला, भारत के प्राचीन ग्रन्थ, संविधान प्रदत्त मौलिक अधिकार और मूल कर्तव्य, पवन दिशासूचक, पर्वत, पठार, मैदान और नदियों के मॉडल, समोच्च रेखाओं पर आधारित भू-आकृतियाँ, भारतीय संसद का मॉडल, पृथ्वी की घूर्णन गति : दिन और रात का होना, ऋतु परिवर्तन : कारण और परिणाम, चन्द्रमा की चन्द्र कलाओं के अनुक्रम में अमावस्या और पूर्णिमा की स्थिति, विभिन्न प्रकार की मिट्टियाँ और उनके पाए जाने का स्थान व उनमें पैदा होने वाली फ़सलों का विवरण, विभिन्न प्रकार की फ़सलों के उत्पादन, ग्लोब पर अक्षांश व देशान्तर रेखाओं को प्रदर्शित करने वाला मॉडल, चट्टानों के प्रकार, अमेज़न बेसिन में जीवन, सड़क सुरक्षा, विभिन्न ताप कटिबन्धीय प्रदेशों में मानव, खरीफ़, तिलहन, नगदी और व्यापारिक फ़सलों के विवरण, भारत के मानचित्र में राज्यों का संयोजन करने वाला मॉडल, आदि बनाकर प्रदर्शित किए।

मॉडल तैयार करने वाले बच्चों ने अवधारणाओं की बख़ूबी व्याख्या की और अन्य बच्चे इनके सहयोगी के रूप में बढ़-चढ़कर भाग ले रहे थे। जोश ऐसा था कि इन बच्चों के साथ मैंने भी बाल शोध मेले की तिथि तक किसी भी शासकीय अवकाश के दिन काम बन्द नहीं रखा। बच्चों में ग़ज़ब का उत्साह था। आज भी मैं फ़ाउण्डेशन द्वारा आयोजित विभिन्न शैक्षिक विमर्शों में शामिल होता हूँ, इससे नई दृष्टि मिलती है। शिक्षकों को अपने ज्ञान और नज़रिए को तराशते रहना चाहिए।

अंजना : इस बाल शोध मेले से आपको कुछ नया सीखने को मिला या कोई नया अनुभव हुआ हो तो उसके बारे में बताएँ।

लालाराम : इस दौरान मैंने बच्चों के साथ काम करते-करते बहुत-सी बातें सीखीं। जिन कामों को करने में मैं कठिनाई अथवा उलझन अनुभव कर रहा था, उन्हीं को करने के लिए बच्चों के अपने सृजनशील मस्तिष्क में सहज ही अनूठे विचार थे। उनके कार्य करने के ढंग ऐसे थे कि विकट समस्या भी यूँ ही हल हो जाती थी।

इस कड़ी में बच्चों द्वारा पत्थर, लकड़ी, मिट्टी आदि के आदिमानव सदृश हथियारों, दैनिक उपयोग में लाए जाने वाले बर्तनों का निर्माण करने, पृथ्वी के ग्लोब को अपने अक्ष पर 23.5 अंश पर झुकाने के लिए उल्टे गिलास में मिट्टी भरकर अक्ष को तिरछा सेट करने के विचार, आदि चौंकाने और उत्साहित करने वाले क्षण रहे। विभिन्न टॉपिक पर नए-नए मॉडल बनाने के हमारे सपनों को पंख लग रहे थे। बाल शोध मेले की तैयारी एवं उसके सम्पन्न होने के उपरान्त इस तरह की कार्य विधि से हम सभी शिक्षक और विद्यार्थी विषय की अवधारणाओं को सहज और सरल करने में सफल होकर प्रसन्नता अनुभव कर रहे थे। इस बाल शोध मेले की तैयारी एवं उसके सम्पन्न होने के दरम्यान मेरा विचार पुख़्ता हो गया कि शिक्षक विद्यार्थियों के सीखने में केवल सहयोगी की भूमिका में ही होता है। सीखने की क्षमता तो बच्चों में स्वयं होती है। शिक्षक अपने शैक्षणिक कौशलों से उन क्षमताओं को बच्चों के मन-मस्तिष्क से उत्सर्जित कर साधने-सँवारने का कार्य करते हैं। साथ ही विभिन्न बच्चों के मध्य अलग-अलग स्थितियों में अपने शिक्षण कौशल को भी परिमार्जित करते जाते हैं।

अंजना : डाइट, भोपाल और फ़ाउण्डेशन द्वारा 'सामाजिक विज्ञान एवं पर्यावरण अध्ययन' विषय पर आयोजित 'सेमिनार' में आपने भी अपना परचा प्रस्तुत किया था। उससे जुड़े कुछ अनुभव साझा करें।

चित्र : पारुल बत्रा

लालाराम : साल 2018 में यह पहला अवसर था जब मैं डाइट में अपना परचा पढ़ रहा था। मुझे अपने सेवाकाल में विभिन्न कक्षाओं को पढ़ाने का मौक़ा मिला, लेकिन कक्षा शिक्षण से जुड़े अनुभवों पर गहराई से विचार करके, विश्लेषण करके लिखना और फिर उसे प्रस्तुत करना, यह कभी किया ही नहीं था।

कक्षा 8 के भूगोल विषय के अध्याय 'धरातलीय स्वरूप' को बच्चों के साथ उनकी बनाई हुई अनुकृतियों (मॉडल) के माध्यम से तीन दिनों तक पढ़ाया। बच्चों की सहभागिता, रचनात्मकता और कल्पनाशीलता देखने लायक़ थी। बच्चों के सवाल और किसी विषय पर उनके तर्क और विचारों से मुझे भी नई दृष्टि मिल रही थी। हर बच्चे के काम और उसकी प्रक्रिया को सिलसिलेवार ढंग से दस्तावेज़ किया। बच्चों ने जो सवाल किए, स्पष्टीकरण दिए, वह सब शब्दशः लिखा। मैं जो समझा और बच्चों से जो बात की, उसे लिखता गया। यह सब व्यवस्थित रूप से एक सेमिनार के परचे के हिसाब से लिखना मेरे लिए सबसे ज़्यादा चुनौतीपूर्ण रहा। फ़ाउण्डेशन के स्रोत व्यक्तियों की मदद से मैं उसे परचे के रूप में लिख पाया। कई ड्राफ़्ट लिखे, उनमें संशोधन किया तब कहीं जाकर वह सेमिनार में पढ़ने लायक़ बन सका।

अगली चुनौती डाइट के सभागार में सभी के समक्ष परचे को पढ़कर प्रस्तुत करने की थी। लेकिन कक्षा शिक्षण की प्रक्रिया, बच्चों के सीखने की गति और उनकी प्रतिक्रिया इतनी प्रभावी थी कि मुझमें वह दस्तावेज़ पढ़ने का ज़बरदस्त आत्मविश्वास आ गया था। प्रस्तुति से पहले एक-दो बार मैंने परचा पढ़ा, उसके क्रम और प्रवाह पर साथियों से बातचीत की, इस तरह अच्छे से परचा प्रस्तुत कर पाया। यह सब मेरे सेवाकाल में एक नया अनुभव जोड़ गया।

अंजना : शिक्षकीय सेवाकाल के उत्तरार्ध में अपने काम को लेकर आप क्या सोचते हैं?

लालाराम : मध्य प्रदेश सरकार ने उच्च अधिकारियों के साथ हम सभी चयनित शिक्षकों को कन्याकुमारी स्थित विवेकानंद आश्रम में 7 दिन की वर्कशॉप हेतु भेजा। वह मेरे उन्मुखीकरण का एक स्वर्णिम अवसर था जहाँ पूरे मध्य प्रदेश के चयनित शिक्षकों और उत्कृष्ट विद्यार्थियों से मेल-मिलाप के दौरान बहुत कुछ सीखने को मिला। किन्तु मेरा जो समय बच्चों को पढ़ाने के लिए जाना चाहिए था वह प्रशासन को ख़ुश करने में जाने लगा, इस बात का मुझे ग़म है। यह एक सरकारी तंत्र में काम करने का चक्रव्यूह है जिसका मैं भी शिकार हुआ हूँ। किन्तु जैसे ही ठहरकर आप अपने काम पर रिफ़्लेक्शन करते हैं तो असल में पाते हैं कि आप क्या कर रहे हैं। आपके काम का फ़ायदा सचमुच ज़रूरतमन्दों को मिल रहा है या नहीं, इसके लिए शिक्षक का रिफ़्लेक्टिव होना अत्यन्त आवश्यक है।

अंजना : आपने समय दिया और ख़ुद के व काम के बारे में इतनी गहराई और विस्तार से बात की, इसके लिये धन्यवाद।

लालाराम विश्वकर्मा ने बरकतउल्ला विश्वविद्यालय, भोपाल से भूगोल और हिन्दी स्नातकोत्तर किया है। साथ ही आपने डीम्ड विश्वविद्यालय, इलाहाबाद से एजुकेशन में भी एमए किया है। शिक्षक के रूप में 1979 से अपनी सेवाएँ दे रहे हैं। शिक्षक संगोष्ठी 2011 में उन्हें प्रथम स्थान प्राप्त हुआ था। वर्तमान में शासकीय माध्यमिक विद्यालय लाम्बाखेड़ा, भोपाल में उच्च श्रेणी शिक्षक के पद पर पदस्थ हैं और शिक्षकीय जीवन के चार दशक का सेवाकाल पूर्ण कर चुके हैं।

सम्पर्क : lalaramvishwkarma25@gmail.com

अंजना त्रिवेदी विगत ढाई दशकों से सामाजिक क्षेत्र में सक्रिय हैं। शिक्षण-प्रशिक्षण के साथ ही पत्र-पत्रिकाओं के लिए सतत लेखन रहा है। महिला स्वास्थ्य, शिक्षा एवं नागरिक अधिकार इनके प्रमुख विषय रहे हैं। अंजना वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, भोपाल, मध्य प्रदेश में सामाजिक विज्ञान स्रोत व्यक्ति के रूप में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : anjana.trivedi@azimpremjifoundation.org

गणित सीखने में भाषा, संवाद और शिक्षक व विद्यार्थी के बीच बातचीत का महत्त्व

पाठशाला की संवाद श्रृंखला की यह नौवीं परिचर्चा है। संवाद का विषय है 'गणित सीखने में भाषा, संवाद और शिक्षक व विद्यार्थी के बीच बातचीत का महत्त्व'। इस संवाद में रवि के सुब्रह्मण्यम, प्रोफ़ेसर, होमी भाभा सेंटर फ़ॉर साइंस एजुकेशन टीआईएफ़आर, मुंबई; शहनाज़ डी.के. शिक्षक उदयपुर राजस्थान; अशोक प्रसाद, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, श्रीनगर, उत्तराखंड; हृदयकान्त दीवान, प्रोफ़ेसर, अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलूरु; बीना जैन, शिक्षिका, राजकीय प्राथमिक विद्यालय, नवीन ज्योतिनगर, जयपुर; सुधीर श्रीवास्तव, अवकाश प्राप्त प्राध्यापक, एससीईआरटी, रायपुर छत्तीसगढ़ और सुनील कुमार वर्मा, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, खुरई, ज़िला सागर ने अपने विचार साझा किए हैं। सं.

रवि : आज गणित को देखने में काफ़ी परिवर्तन आया है, ख़ासकर शालेय गणित को देखने के नज़रिए में। पहले गणित को एक तकनीक, हिसाब-किताब, समस्या सुलझाने और सिद्ध करने के कौशल के रूप में देखा जाता था। आज गणित को ज्ञान की एक ऐसी शाखा के रूप में देखा जाता है जिसमें ज्ञान को जाँचने, खोजने व स्वीकारने का अपना एक तरीक़ा है। हम जानते हैं कि अलग-अलग विषयों में ज्ञान को सिद्ध करने के अलग-अलग तरीक़े होते हैं। ख़ासकर कुछ ऐसी प्रक्रियाएँ होती हैं जिनसे ज्ञान स्थापित माना जाने लगता है। लगभग दो हज़ार साल से गणित ज्ञान की एक फ़र्क़ शाखा रहा है व उसका रूप धीरे-धीरे परिवर्तित होकर निर्धारित होता रहा है। लेकिन शालेय गणित में अब जो परिवर्तन आने लगा है उसका एक कारण न्यू मैथ्स मूवमेंट था। दूसरा कारण यह भी था कि गणित के विषय में हम अंकगणित और बुनियादी हिसाब-किताब से बहुत आगे बढ़ चुके हैं। एक तरह से ज्ञान की दूसरी शाखाओं के मुक़ाबले में गणित के ज्ञान में शायद काफ़ी अधिक वृद्धि हुई है जैसे कोई विस्फोट हुआ है, जैसे-जैसे गणित का विस्तार हुआ उसका इस्तेमाल (application) भी बहुत विस्तृत हो गया और ज्ञान की अन्य शाखाओं में गणितीय ज्ञान का इस्तेमाल भी बहुत अहम हो गया। यानी, पहले विज्ञान में गणित का इस्तेमाल होता था अब सूचना व तकनीकी और सामाजिक विज्ञानों में भी गणित के ज्ञान का इस्तेमाल होने लगा है।

चूँकि गणित के इस्तेमाल का ढंग बहुत व्यापक हो चुका है, अतः अब गणित को सिर्फ़ एक टूल के रूप में नहीं देख पाएँगे क्योंकि इससे बहुत समस्याएँ होंगी। इसे टूल के रूप में समझने से गणित का इस्तेमाल कहाँ और कैसे किया जा सकता है, इसकी समझ, उसकी सीमाएँ, सम्भावित उपयोग और शक्ति (पावर) क्या हो सकती है? ये पहलू बहुत संकीर्ण हो जाते हैं। इन सब बातों को ठीक ढंग से समझने के लिए गणित की एक मज़बूत बुनियाद होना ज़रूरी है और स्कूली गणित का एक उद्देश्य यही है। इस उद्देश्य के लिए गणित को ज्ञान की एक शाखा के रूप में समझना ज़रूरी है। जब तक गणित को एक कौशल, जैसे– घुड़सवारी, क्रिकेट आदि, की तरह देखा जाता था, यही होता था कि शिक्षक कुछ दिखाएँगे और बच्चे

उसकी नक़ल करने की कोशिश करेंगे। इसमें सिद्धान्त पढ़ाने और समझने की ज़रूरत नहीं थी। जैसे घुड़सवारी करते-करते सीख जाते थे वैसे ही करते-करते गणित भी सीख जाएँगे। लेकिन जब इसे ज्ञान की एक विस्तृत शाखा के दृष्टिकोण से देखते हैं, तब इसमें अवधारणाएँ समझना, गणितीय कथनों को समझना, यह जाँच पाना कि वे सही हैं या नहीं, गणित सीखने के केन्द्रीय बिन्दु हो जाते हैं और इसके लिए गणित में बातचीत करना महत्त्वपूर्ण हो जाता है। समझने के लिए महज़ दिखावे यानी प्रदर्शन से काम नहीं चल पाता। समझने और कथन की जाँच के लिए संवाद व भाषा अहम और ख़ास हो जाते हैं। इन्हीं के ज़रिए हम गणितीय नियमों को स्थापित कर सकते हैं, और जो स्थापित नियम हैं उनका इस्तेमाल कर अन्य नए नियम व सम्बन्ध खोज सकते हैं।

दूसरा पहलू है कि गणित की पेडागॉजी में भी बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन का पहला क़दम था— व्यवहारवाद से रचनावाद की ओर झुकाव। व्यवहारवाद गणित के उस दृष्टिकोण से जुड़ा था जिसमें उसे कौशल समझा जाता था और इसलिए उसकी पद्धति में फ़ीडबैक के रूप में ग़लतियाँ सुधारने की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। साथ ही उसमें गणित की अवधारणाएँ और प्रक्रियाएँ सिखाने का काम छोटे-छोटे टुकड़ों और चरणों में होता था। लेकिन धीरे-धीरे यह स्पष्ट होने लगा कि इस तरीक़े से बच्चे सीख नहीं पा रहे हैं, और शिक्षणशास्त्र के नज़रिए से देखें तब भी यह एक कमज़ोर तरीक़ा प्रतीत होता है क्योंकि जब बच्चे बिना समझ के सीखते हैं तो बहुत ग़लतियाँ होती हैं। इसीलिए रचनावाद की लहर के साथ ठोस वस्तुओं का इस्तेमाल कक्षा में शुरू हुआ, पेडागॉजी में यह पहला बदलाव आया। दूसरा महत्त्वपूर्ण बदलाव सामाजिक रचनावाद का उभरना था। इसके अनुसार, सिर्फ़ ठोस वस्तुओं के उपयोग से सीखना इतना अच्छा नहीं होता जितना जब उसमें ठोस वस्तुओं के साथ-साथ बातचीत व संवाद की भी अहम भूमिका हो। रचनावाद को पियाजे के साथ जोड़ा जाता है और सामाजिक रचनावाद को वायगोत्स्की से। सामाजिक रचनावाद में, सांस्कृतिक औज़ार (cultural tools) का इस्तेमाल बहुत ज़रूरी है। शिक्षा का उद्देश्य है दैनिक सोच-विचार की प्रक्रिया से वैज्ञानिक सोच-विचार की प्रक्रिया तक पहुँचा पाना। वैज्ञानिक सोच को प्रोत्साहित करने में कल्चरल टूल्स के साथ भाषा की भी महत्त्वपूर्ण भूमिका है। इसके अलावा शिक्षणशास्त्र की दृष्टि से भी भाषा महत्त्वपूर्ण है। ये दो महत्त्वपूर्ण कारण हैं जिनकी वजह से गणित की कक्षा में भाषा और संवाद की जगह होनी ही चाहिए।

अशोक : जब हम गणित को कौशल की तरह देखते हैं तो भाषा का उतना महत्त्व नहीं रहता है, लेकिन अगर हम उसको पड़ताल या कुछ खोज करने के तरीक़े के रूप में देखते हैं तब भाषा बहुत महत्त्वपूर्ण बन जाती है। जैसे कि बच्चे को यह कहा जाए कि जो
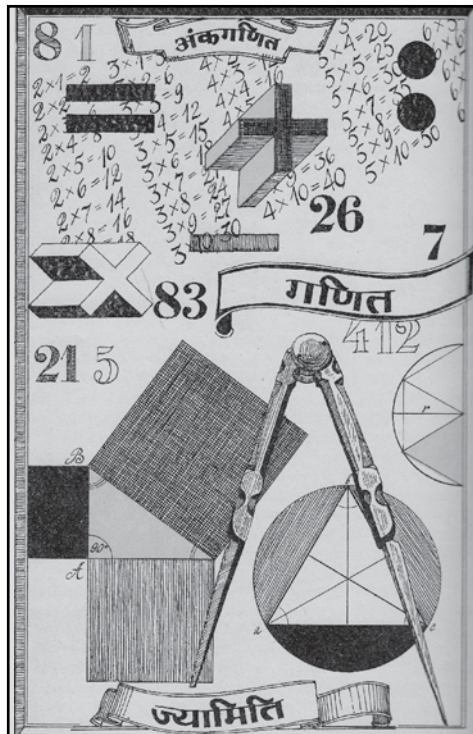
सवाल उसने हल किए हैं उन्हें अपने शब्दों में बोलकर बताए और दैनिक जीवन के उदाहरणों को कक्षा में लाकर उनका इस्तेमाल करे। पर सवाल यह है कि आगे की प्रक्रिया किस तरीक़े की हो? शहनाज़ इस विषय पर अपने विचार रखें।

शहनाज़ : मैं कक्षा 6, 7 व 8 में गणित पढ़ाती हूँ। शुरुआती वर्षों में, मैं बोर्ड पर सवाल करवा देती थी जिन्हें बच्चे कॉपी कर लेते थे। इसके अलावा मुझे थोड़े बहुत और निर्देश देने होते थे। लेकिन पढ़ाने के साथ-साथ कार्यशालाओं में जाकर और विद्या भवन जैसी संस्थाओं में काम कर हमने समझा कि गणित इस तरह से नहीं पढ़ाया जा सकता और यदि पढ़ाया जाता है तो उससे बच्चों को कोई विशेष लाभ नहीं होता।

मैंने अपनी कक्षाओं में गणित सिखाने में काफ़ी बदलाव किया। बच्चों के साथ इबारती सवालों पर काम करने पर पाया कि उनकी माध्यम की भाषा (हमारे यहाँ हिन्दी) कमज़ोर जब वे गणित के सवालों को पढ़ते हैं तब बहुत मुश्किल से ही यह समझ पाते हैं कि सवाल में पूछा क्या गया है, क्योंकि सवालों की भाषा दैनिक जीवन की भाषा से बहुत फ़र्क़ होती है। इबारती सवालों में जब उनको सवाल की दो-चार लाइनें पढ़नी होती हैं, तो पहली लाइन से तीसरी में आते-आते वो लगभग भूल ही जाते हैं कि पहली लाइन में क्या कहा गया है। मैंने कुछ बच्चों के साथ अलग-अलग समूह बनाकर बातचीत की। यह समझने का प्रयास था कि उन्हें क्या समस्या होती है और समझ में क्यों नहीं आता है। उन्होंने बताया कि गणित के बहुत सारे शब्द उन्हें समझ ही नहीं आते, जैसे सवाल में लिखा गया है कि इसका मूल्य क्या है? 'मूल्य' का मतलब उन्हें समझ नहीं आ रहा था। इसके बाद मैंने बच्चों से बात की कि आप बाज़ार जाते हैं और वहाँ ख़रीदी का कुछ काम करके आते हैं तो क्या उस बारे में कुछ सवाल बना सकते हैं? उन्होंने 'हाँ' कहा और सवाल बनाकर दिखाए।

पहले गणित को एक तकनीक, हिसाब-किताब, समस्या सुलझाने और सिद्ध करने के कौशल के रूप में देखा जाता था। आज गणित को ज्ञान की एक ऐसी शाखा के रूप में देखा जाता है जिसमें ज्ञान को जाँचने, खोजने व स्वीकारने का अपना एक तरीक़ा है।

उनके बनाए सवालों के कुछ उदाहरण रखूँ तो एक कॉपी 10 रुपए की है। हमने ऐसी 8 कॉपियाँ ख़रीदीं तो इन कॉपियों की क़ीमत कितनी होगी? फिर किताब में दिया सवाल पढ़ते हैं : एक कॉपी का मूल्य 8 रुपए है तो इस तरह की 10 कॉपियों का मूल्य ज्ञात कीजिए? तो इन सवालों में क्या कोई फ़र्क़ है? धीरे-धीरे वे समझ पाते हैं कि मूल्य और क़ीमत एक ही बात हैं। इस तरह की बातचीत से उनको गणित की पुस्तक भाषा का फ़र्क़ समझ आता है। ऐसी बातचीत होती रहना मुझे ज़रूरी लगता है। एक और उदाहरण देखें— सवाल था, एक कमीज़ के लिए 1 मीटर 70 सेंटीमीटर कपड़ा चाहिए और ऐसी 7 कमीज़ सिलवानी हों तो कितना कपड़ा चाहिए होगा? जब बच्चों से पूछा कि क्या आपने दुकानदार को कपड़ा मापते हुए देखा है? उनका जवाब 'हाँ' था। क्या 1 मीटर 70 सेंटीमीटर नाप जानते हो? उन्होंने कहा कि हाँ, जानते हैं। मैंने पूछा कि चलो बताओ, 7 कमीज़ के लिए कितना कपड़ा चाहिए होगा। उन्होंने बताया कि दुकानदार पहले एक कमीज़ के लिए नापेगा, फिर उसी से दूसरी, तीसरी नापेगा और ऐसा करके 7 कमीज़ के कपड़े नाप लेगा। मैंने कहा कि अभी हमारे पास कमीज़ तो नापने के लिए है नहीं और इस सवाल को करने के लिए कैसे पता लगाएँगे कि सात कमीज़ के लिए कितना कपड़ा चाहिए?

बच्चे सोचना शुरू करते हैं कि हमारे पास नापने के लिए कपड़ा नहीं है लेकिन सवाल तो हमें करना है, तब वो कहते हैं कि मैडम, इस सवाल में से सेंटीमीटर हटा दीजिए और हमें केवल यह बता दीजिए कि एक कमीज़ के लिए एक मीटर कपड़ा तो सात कमीज़ के लिए सात मीटर। फिर आगे और सोचेंगे तो 70 सेंटीमीटर को भी सात बार जोड़ना है। तो बच्चे कोशिश करते हैं कि कैसे जोड़ेंगे। और कुछ बच्चे 70 को सात बार लिखकर जोड़ देते हैं। इस तरह से सेंटीमीटर को फिर वापस मीटर में बदलना भी उनको समझ में आता है। 70 को सात बार जोड़ा तो 490 सेंटीमीटर हुआ। इस तरह की बातचीत से बच्चों को नापना, इकाइयों को बदलना, फिर पूरे कपड़े का हिसाब बताना समझ आया। इस तरह के अनुभवों से मुझे लगा कि बातचीत से उनको यह समझने में मदद मिलती है कि सवाल में क्या पूछा गया है और उन्हें क्या करना पड़ेगा। और फिर इबारती सवाल ही नहीं हैं, और तरह के छोटे सवाल भी हैं, जैसे– दी हुई संख्याओं को आरोही या अवरोही क्रम में जमाइए, क्षेत्रफल, परिमाप बताइए, आदि।

यहाँ बच्चे समझ नहीं पाते कि आरोही और अवरोही का क्या मतलब है? यहाँ भी उनसे बात करनी पड़ती है कि आरोही का मतलब है ‘छोटे से बड़ा’, और जब संख्याओं को जमाते हुए बार-बार ‘छोटे से बड़ा’ को आरोही शब्द के साथ काम में लेते हैं तो वे धीरे-धीरे समझने लगते हैं। इसी तरह फिर अवरोही के साथ। इस प्रक्रिया में धैर्य चाहिए क्योंकि आत्मविश्वास की कमी के कारण वे बार-बार कहते हैं कि कैसे जमाना है, हमें समझ में नहीं आ रहा, आप बता दें। उनके साथ यह बात करते हैं कि इन संख्याओं को पढ़कर देखो कि कौन-सी बड़ी है कौन-सी छोटी। आरोही का मतलब क्या है? जब आप गिनती लिखते हो तो क्या होता है? जब गिनती आगे बढ़ती जाती है, तो उसमें संख्याएँ आरोही (बढ़ते) क्रम में चलती हैं। अब आगे बढ़ते जाने के लिए सबसे पहले कौन-सी संख्या लिखेंगे। इस तरह कक्षा में बातचीत करते-करते बच्चों से भी बहुत-सी बातें निकलकर आती हैं, जैसे वो कहते हैं कि हमारे पास बिल था पर हमें नहीं पता था कि बिल कैसा होता है। अब ध्यान देंगे। या बाज़ार में गए तो हमने कभी ध्यान से नहीं देखा कि सामान की सजावट कैसी होती है और दूध वाले कैसे मापते हैं।
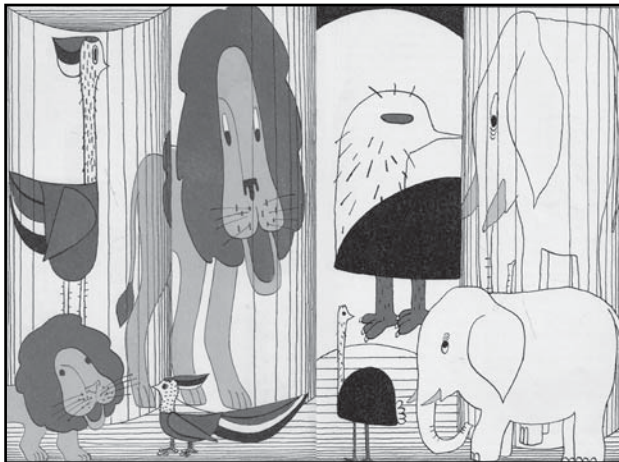
बातचीत के ज़रिए धीरे-धीरे सवालों को लेकर थोड़ा अधिक सोचना-विचारना शुरू होता है। हालाँकि, शुरुआत में मुश्किलें आती हैं, लेकिन बार-बार करते रहने से यह सब उनकी प्रैक्टिस में आ जाता है। वे समझने लगते हैं कि दिए गए सवाल को अच्छे से पढ़ना है और समझ में नहीं आए तो दो बार पढ़ना है, और सोचना है कि क्या पूछा गया है और हम इसको कैसे हल करेंगे। उसके बारे में बातचीत करनी है और फिर प्रश्न करके बराबर उनकी ही बातों को उनके सवालों के साथ जोड़ते हुए आगे बढ़ाना पड़ता है। इस प्रक्रिया में थोड़ा तर्क भी शामिल हो और बच्चे ये समझें कि ऐसा क्यों करें या क्यों नहीं करें, या इसमें

क्या करना ज़रूरी है जिससे वो समझ पाएँ कि उनका सवालों को समझने का ढंग कैसा हो?

अशोक : धन्यवाद शहनाज़, आपने दो बातें बहुत ही महत्त्वपूर्ण कहीं। पहली, किताब में दिए गए सवालों की भाषा और बच्चे की भाषा में बड़ा अन्तर होता है। दूसरी, हमें कक्षाओं में बातचीत को बढ़ावा देना चाहिए क्योंकि ये सोचने-विचारने और तर्क करने में मददगार होती है। इसके लिए कक्षाओं की प्रक्रियाएँ भी सोचनी पड़ती हैं, जैसे— कुछ रुकना, रुक कर कहना, सोचो, अच्छा ये बताओ, आदि। अब सुनील अब आप अपने विचार रखें।

सुनील : धन्यवाद अशोक। यह बात दोहराने योग्य है कि बातचीत कई मायने में बच्चों और हम सबके लिए मददगार होती है। जैसे ज़िक्र आया है कि पाठ्यपुस्तक की भाषा और बच्चों की भाषा में काफ़ी दूरी हो सकती है, और बच्चों के साथ संवाद इस दूरी को पाटने का मौक़ा देता है। इससे यह समझने की गुंजाइश भी बनती है कि बच्चे का परिवेशी सन्दर्भ क्या है, बच्चे किन शब्दों इस्तेमाल कर रहे हैं और किनका अर्थ वे नहीं जानते। जो शब्द मैं इस्तेमाल कर रहा हूँ या जो किताब में हैं, उन्हें बच्चे जानते हैं कि नहीं। मैंने महसूस किया है कि जब बच्चों को सन्दर्भ देते हुए चीज़ों को खोजने की तरफ़ लगाया जाता तो ऐसे खोजकर सीखने में उन्हें मज़ा मिलता है। गणित को मात्र एक विषय के रूप में अथवा सिर्फ़ एक कौशल के रूप में देखना उचित नहीं हैं, आज यह समझ नीति चर्चा में और कई जगह पाठ्यपुस्तक में भी आ गई है, किन्तु फिर भी कक्षा तक इसके पहुँचने में अभी भी बाधाएँ हैं जिन्हें दूर करना होगा। पाठ्यपुस्तक में आने से लेकर कक्षा तक जाने में कई कड़ियाँ हैं और इन सब बातों को वास्तव में महसूस करना आसान नहीं होता। शिक्षकों से बच्चों के परिप्रेक्ष्य को समझकर चर्चा करने की बात करने पर उनका कहना यही होता है कि इस सबमें बहुत समय लगता है और हम पाठ्यक्रम कैसे पूरा करें, किन्तु इसके न करने से बहुत समस्या होती है, जैसे— एक सवाल था : घनाभ में एक फुट मोटा, एक फुट चौड़ा, और पाँच फुट लम्बा एक लट्ठा है। उससे एक फुट चौड़े, एक फुट लम्बे और एक इंच मोटे कितने पटिए निकलेंगे? यह बहुत सामान्य-सी बात है, पर इसे हल करने में बच्चे $A \times B \times C$ यानी घनाभ के आयतन का फार्मूला लगाकर पहले बड़े और फिर छोटे घनाभ का आयतन पता करते हैं। इस क़वायद के बाद भाग करते हैं। दरअसल यह सब करने की ज़रूरत नहीं है केवल लम्बाइयों में भाग करना है, अर्थात 5 फुट को 1 इंच से भाग करना है। दिक़्क़त यह है कि बातचीत के बिना समझ नहीं बनती और सिर्फ़ यांत्रिक ढंग से फ़ॉर्मूलों का उपयोग किया जाता है। इसके अलावा, प्रशिक्षणों में भी शिक्षकों को तरीक़े सिखाए जाते हैं व स्रोत व्यक्ति उनसे उस तरह की चर्चा नहीं कर पाते जिससे उनमें समझ व आत्मविश्वास आए। प्रशिक्षण के दौरान उन्हें स्वायत्तता इस्तेमाल करने के लिए तैयार नहीं किया जाता और न ही उसकी अपेक्षा होती है। कक्षा में क्या पढ़ाया जाना है, किस गति से पढ़ाया जाना है, यह सब तय करने का काम भी शिक्षा विभाग का होता है और शिक्षक के पास अपने ढंग से चलने और बच्चों के हिसाब से आगे बढ़ने की कोई गुंजाइश नहीं होती। विभाग के ज़मीनी स्तर के कार्य करने वाले लोग व शिक्षक तो वैसे ही बँधे होते हैं एवं परीक्षा इसमें और ज़्यादा जकड़न

गणित की पेडागॉजी में भी बहुत बड़ा परिवर्तन आया है। इस परिवर्तन का पहला क़दम था— व्यवहारवाद से रचनावाद की ओर झुकाव। व्यवहारवाद गणित के उस दृष्टिकोण से जुड़ा था जिसमें उसे कौशल समझा जाता था और इसलिए उसकी पद्धति में फ़ीडबैक के रूप में ग़लतियाँ सुधारने की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। साथ ही उसमें गणित की अवधारणाएँ और प्रक्रियाएँ सिखाने का काम छोटे-छोटे टुकड़ों और चरणों में होता था।

डाल देती है। यह सब गणित की कक्षा में संवाद व सार्थकता की सम्भावना को बहुत प्रभावित करता है।

अशोक : धन्यवाद सुनील। बीना, आप अपनी बात कहें।

बीना : गणित सिखाने के लिए भाषा से सम्बन्ध जोड़ना ज़रूरी है। कक्षा में बच्चों के साथ संवाद और तर्क-वितर्क करते हुए चर्चा के माध्यम से ही हम बच्चों को गणित अध्ययन में आगे बढ़ा सकते हैं। मैं पहले 8वीं तक की कक्षाएँ लिया करती थी और ऐसा ही होता था कि मैं बच्चों को सवाल दे देती थी और बच्चे चुपचाप उस सवाल को हल करते थे। मैं और साथी शिक्षक यही कहते थे कि आपको यह सूत्र लगाकर इस तरह से इसको हल करना है। परन्तु यह एक मशीनी तरीक़ा था। जैसे एक मशीन का बटन चालू किया और मशीन अपना काम करना चालू करती है, वैसे ही हमने बच्चों को सवाल समझाया और उन्होंने उसी तरीक़े से हल करना शुरू कर दिया कहीं भी अपना दिमाग़ इस्तेमाल नहीं करना था। जब से मैं कक्षा 1 से 5 के बच्चों को पढ़ाने लगी तो मुझे लगा कि ब्लैकबोर्ड पर कुछ लिख देने और बच्चे के द्वारा उसको कॉपी कर लेने से प्रभावी गणित शिक्षण नहीं हो सकता। यदि कक्षा में बच्चों की भागीदारी होनी है तो बच्चों के साथ संवाद करना ही होगा। कुछ अनुभव साझा करूँ, तो शुरू में मैं कहती थी कि यह गिनती उतार लो, या जोड़ का तरीक़ा समझा दिया। अब तुम जोड़ कर लो, बच्चे रटते थे और जहाँ भी थोड़ा बहुत फ़र्क़ आता, बच्चे वहीं अटक जाते। अब हम एक गट्ठर और बण्डल इस चीज़ को बच्चों में के साथ करते हैं कि दस के बाद दस का एक और बण्डल हो गया, उसके बाद अगर हम एक-एक तीली या जो भी वस्तु हम ले रहे हैं वो उसमें जोड़ते जाते हैं तो दस के साथ में एक को जोड़ा तो ग्यारह, फिर दो जोड़ा तो बारह, इस तरह से बच्चों को गिनती सिखाते हैं तो उसका वो ज्ञान भी स्थाई होता है। मैंने पढ़ाने के तरीक़े में बदलाव किया, बोलचाल की भाषा को कक्षा में जगह दी, बच्चों को बोलने की जगह दी कि इस सवाल को कैसे करें, हमने बच्चों के दैनिक जीवन के सन्दर्भों को शामिल करने का प्रयास शुरू किया। जैसे– कभी सप्ताह में तो कभी पन्द्रह दिन में एक बार कक्षा में बाज़ार बनाना। मैं अमूमन ऐसा करती हूँ कि रैपर्स इकट्ठे करके उन्हें दुकान पर रखती हूँ और बच्चों को पैसे दे देती हूँ। यह जो नक़ली नोट आते हैं वही होते हैं। उनके उपयोग से बच्चे आपस में सामान लेते-देते हैं, ख़रीदते हैं और फिर देखते हैं कि हमने कितने पैसे दिए और कितने पैसे वापस मिलने चाहिए। इस तरह की गतिविधियों से और उनमें हुए संवाद से बच्चे बहुत कुछ समझ पाते हैं। अगर इबारती सवालों की बात करें तो किताब में दिए सवालों की भाषा बँधी हुई होती है, उसमें बच्चों की आम भाषा नहीं होती। 100 रुपए लेकर फ़रीदा बाज़ार गई। उसने 20 की पुस्तकें और 30 रुपए
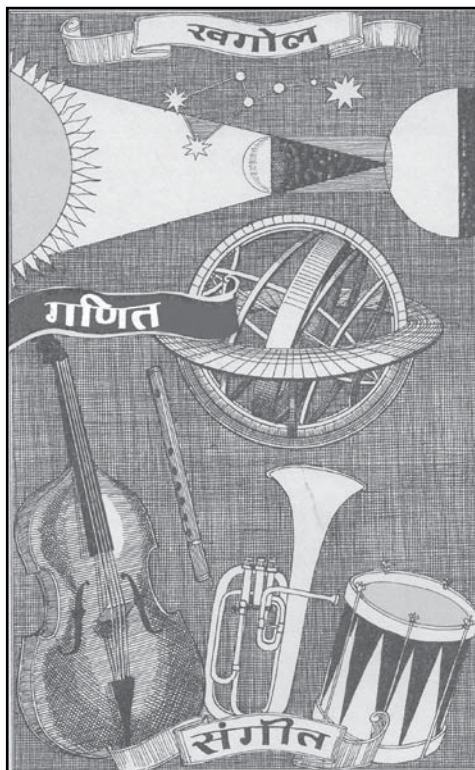
की नोटबुक ख़रीदीं, उसने कुल कितने रुपए की सामग्री ख़रीदी। अब सामग्री और नोटबुक शब्द समझना मुश्किल हो सकता है। फिर नाम से भी सन्दर्भ सोचने में आसानी होती है, जैसे– यदि मेरी कक्षा में रहनुमा नाम की बच्ची है तो सवाल में, रहनुमा सौ रुपए लेकर बाज़ार गई, रखने से आसानी से समझ आता है। यहाँ बच्चों के लिए बताना आसान होता है कि रहनुमा कितने रुपए लेकर गई? पुस्तक कितने की थी? नोटबुक कितने की थी? उन्हें सवाल व उसे वैसे क्यों किया, यह समझ आता है। मेरे अनुभव से यह भी कह सकती हूँ कि यदि हम कुछ ठोस वस्तुओं के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए काम करते हैं तो उससे भी बच्चे उस कार्य को जल्दी सीखते हैं और तर्क भी दे पाते हैं। यदि मेरे सामने दो बण्डल हैं और उनके साथ में दो खुली तीलियाँ हैं तो ये दो बण्डल के साथ में दो तीली होने पर बाईस हो जाएँगे। कई बार बच्चों के सन्दर्भ में जो ठोस उदाहरण हैं, उनके उपयोग से जल्दी आगे बढ़ सकते हैं। हमारे विद्यालय में जो बच्चे आते हैं उनकी माताएँ साड़ियों पर फूल बनाने का काम करती हैं तो मैं उन फूल के पैटर्न्स से पैटर्न की चर्चा पर ले आती हूँ। जैसे– अगर तुम एक फूल ऐसा बनाते हो तो दूसरा कैसा बनेगा? और फिर उसके बाद कैसा बनेगा? क्योंकि यह उनके दैनिक जीवन में जुड़ा हुआ होता है और उन्होंने अपने अभिभावकों को उस कार्य को करते देखा है तो वो बेहद आसानी से पैटर्न पकड़ लेते हैं। इसके बाद हमने अपने विद्यालय में कुछ और ठोस वस्तुएँ, जैसे– पेंसिल, रबर आदि, उनके सामने रख दीं और उनसे पैटर्न बनवाए वो आसानी से उस कार्य को कर पाए। एक और बात सुनील सर ने कही कि हम उन्हें ख़ुद सोचने को नहीं कहते, सूत्र बता देते हैं। लेकिन ये क्यों है, कैसे है, ऐसे तर्क हम अपनी क्लास में बच्चों के सामने प्रस्तुत करते हैं। जैसे– यदि हम ग्राफ़ में बने खानों के आधार पर आयत के क्षेत्रफल की बात करते हैं तो बच्चों को समझ आता है कि क्षेत्रफल क्या है और उसको निकालने का तरीक़ा क्या हो सकता है वे स्वयं अपने सूत्र का निर्माण कर लेते हैं। वे यह भी समझ पाते हैं कि इससे आयत का ही नहीं किसी भी आकृति का क्षेत्रफल पता कर सकते हैं। मेरा मानना है गणित शिक्षण सबसे ज़्यादा संवाद माँगता है। उनके दैनिक जीवन से जोड़ते हुए जब हम उनसे बात करते हैं तो बच्चे अपने पूर्व ज्ञान को जोड़ते हुए बताते हैं कि उस कार्य को कैसे कर सकते हैं। जैसे– जो बच्चे बाहर बाज़ार में काम कर रहे होते हैं, बाज़ार में चाय की दुकान पर या सब्ज़ी बेचने का या ऐसे ही कुछ काम कर रहे होते हैं वे बहुत ही जल्दी इन अवधारणाओं को पकड़ भी लेते हैं। यानी, अगर हम पूछें कि पाँच किलो सब्ज़ी कितने की आएगी जब एक किलो सब्ज़ी का मूल्य बीस रुपए है, तो बच्चे बताने में ज़्यादा समय नहीं लगाएँगे क्योंकि ये उनके दैनिक जीवन से जुड़ी हुई बात है और वो रोज़ इस कार्य को करते ही हैं। कक्षा में हम बच्चों के सामने कुछ ठोस परिस्थिति रख उन्हें जब अमूर्त वस्तुओं की तरफ़ लाते हैं तो बच्चे जोड़ पाते हैं और कर पाते हैं। एक मैं सीधे लिख दूँ कि एक पेन का मूल्य दस रुपए है, ऐसे आठ पेनों का मूल्य कितना होगा? बच्चे उस सवाल को तीन बार पढ़ेंगे तो भी नहीं समझ पाएँगे कि उसमें क्या करना है। एक पेन बच्चे को दे दें कि यह तुम दस रुपए का लाए हो, अब ये मैंने सात और पेन रख दिए। अब ये आठों पेन कितने

ठोस वस्तुओं का इस्तेमाल कक्षा में शुरू हुआ, पेडागॉजी में यह पहला बदलाव आया। दूसरा महत्त्वपूर्ण बदलाव सामाजिक रचनावाद का उभरना था। इसके अनुसार, सिर्फ़ ठोस वस्तुओं के उपयोग से सीखना इतना अच्छा नहीं होता जितना जब उसमें ठोस वस्तुओं के साथ-साथ बातचीत व संवाद की भी अहम भूमिका हो। रचनावाद को पियाजे के साथ जोड़ा जाता है और सामाजिक रचनावाद को वायगोत्स्की से। सामाजिक रचनावाद में, सांस्कृतिक औज़ार (cultural tools) का इस्तेमाल बहुत ज़रूरी है।

रुपए के होंगे? वो इस बात को बता पाएँगे क्योंकि उनके सामने पेन हैं जिनसे वह करके देख सकते हैं। मेरा तात्पर्य है कि इबारती सवाल जब भी हम बच्चों के साथ करें तो भले ही हम इबारत बोर्ड पर लिखते हैं लेकिन उस इबारत को हम बच्चे के दैनिक जीवन से जोड़ दें। जब आप उस इबारत को दैनिक जीवन से जोड़ते हुए कराते हैं तो धीरे-धीरे वो अपनी किताब की भाषा और अपने दैनिक जीवन के कार्यों को आपस में जोड़ने का प्रयास करेंगे और धीरे-धीरे हमें ये कहने की ज़रूरत नहीं पड़ेगी कि बच्चे इबारती सवाल नहीं समझते पाते हैं। मेरी राय में हमें बच्चों के साथ उनकी भाषा में संवाद करते हुए, तर्क-वितर्क करते हुए, और सारे बच्चों को अपनी कक्षा में जोड़ते हुए चलना है।

अशोक : अब मैं सुधीर से आग्रह करूँगा कि वे अपनी बातें कहें।

सुधीर : गणित की कक्षा में भाषा का इस्तेमाल और उसको लेकर बच्चे को शामिल करना और फिर सीखने में उसकी मदद करना, इन तमाम मुद्दों पर मैं सोच रहा था। तब एक विचार यह आया कि वो कौन-कौन सी परिस्थितियाँ हो सकती हैं जिनमें बच्चा बात करने से कतराता है और उन परिस्थितियों का निराकरण कैसे कर सकते हैं और कैसे वो माहौल बना सकते हैं कि बच्चे को कक्षा में बात करने के ज़्यादा मौक़े मिलें। मैंने अपने बचपन को याद किया। जब हम पढ़ते थे, चाहे स्कूल में या कॉलेज की कक्षा में, तब हमारी क्या स्थिति थी, वो कौन-कौन सी चीज़ें थीं जो हमारे अन्दर बात करने का साहस पैदा नहीं होने देती थीं, चार-पाँच बातें मुझे समझ में आईं वो बातें हालाँकि कॉमन हैं और आप सब भी इन्हें जानते होंगे और इनसे सहमत होंगे लेकिन फिर भी बताना चाहूँगा। सबसे पहले यह कि शिक्षक कैसे हैं, हमारे साथ उनका व्यवहार कैसा है? यदि वो घुलने-मिलने वाले, ख़ुशमिज़ाज शिक्षक हैं जिनके साथ कक्षा में हमें ऐसा लगता है कि हम बात कह सकते हैं तो हम बोलते हैं, अपनी बात कहते हैं। यदि बहुत डर पैदा करने वाला शिक्षक होता था तो हम अकसर चुप रहते थे। इस प्रकार, पहला कारण जो बच्चे को बात करने से रोकता है, या वो उसको मोटिवेट कर सकता है वो है शिक्षक का व्यवहार। दूसरी चीज़ थी कि आम बच्चों की तरह हमारे अन्दर भी हमेशा एक डर रहता था कि हम जो बात कहेंगे वो ग़लत होगी या सही। उस समय ऐसी कोई सोच न तो विद्यार्थियों के दिमाग़ में थी और न ही शिक्षक के दिमाग़ में, कि बच्चे को ग़लती करने के मौक़े दिए जा सकते हैं और सीखते समय ग़लती होती ही है। अगर बात सही होगी तो ठीक है, लेकिन सही नहीं हुई तो कई बार कक्षा में बाक़ी सारे साथियों के उपहास का पात्र बनना पड़ता था और ये तीसरा कारण था कि हमारे साथी कहीं हमारा मज़ाक न उड़ाएँ। चौथी बात थी कि हमारी गणित की कक्षाओं में बात करने के मौक़े बेहद कम हुआ करते थे, बातचीत अकसर एकतरफ़ा चलती थी, शिक्षक बोर्ड पर सवाल हल करके चले जाते थे और हम कुछ समझते, कुछ नहीं समझते कॉपी में नोट करने की जद्दोजहद में होते थे। चलो, आप कुछ बताओ, बात करो, यह कहा ही नहीं जाता था। अधिक-से-अधिक यही होता था कि जब सारी सूचनाएँ इकट्ठी हो जाती थीं तो सर पूछते थे कि बताओ, इसके लिए कौन-से सूत्र का इस्तेमाल करोगे? तो बातचीत केवल सूत्र की होती थी। जो हमने पढ़ लिए उसके बाद
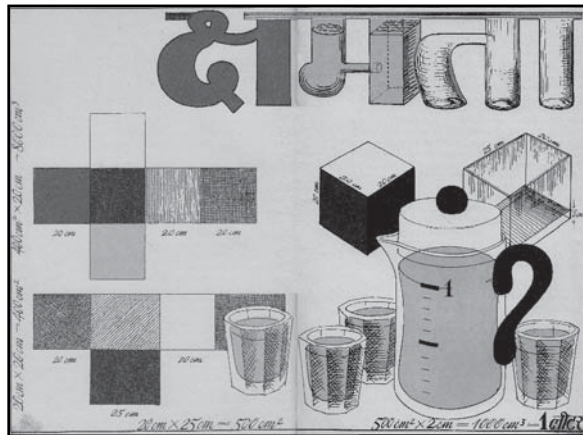
उसमें से चुनने की। इतनी सारी सूचनाएँ हैं तो कौन-सा सूत्र यहाँ हमको उचित होगा, इस तरह बातचीत सीमित रहती थी।

अगली बात जो इस सन्दर्भ में मुझे बहुत महत्त्वपूर्ण लगती है वो ये है कि जो विषय सामग्री थी या पाठ्यवस्तु या जिस चीज़ पर भी कक्षा में बात हो रही है, क्या वह बच्चों की समझ और जानकारी के दायरे में है? अभी के सन्दर्भ में जब मैंने शिक्षक के रूप में काम करना शुरू किया तब भी मैंने देखा कि बच्चों के साथ बातचीत में एक बहुत बड़ा कारक यह होता है कि जिन चीज़ों को लेकर कक्षा में बच्चे के साथ में बातचीत कर रहे हैं वो या उनका सन्दर्भ क्या बच्चे की पहुँच में है? ये भी एक ख़ास मुद्दा है जो तय करता है कि बच्चा अपनी कोई बात कर पाया कि नहीं। आगे एक कक्षा का उदाहरण रखूँगा जिसमें स्पष्ट होगा कि ऐसी परिस्थितियाँ कैसे बन सकती हैं और बच्चे कब व कैसे बात कर सकते हैं? एक महत्त्वपूर्ण पहलू इसमें भाषा का है। अगर हमारी कक्षा की भाषा हिन्दी है और बच्चे हिन्दी ठीक से नहीं बोल पाते या समझ नहीं पाते हैं तो वे चुप रहते हैं। वे जब शिक्षकों को हिन्दी में ही बात करते देखते हैं तो उन्हें लगता है कि हम हिन्दी में अपनी बात नहीं कह पाएँगे, और उनकी अपनी भाषा, जैसे यहाँ छत्तीसगढ़ी, में नहीं बोल सकते। तो छत्तीसगढ़ी के न होने से उन्हें मौक़े नहीं मिलते, वो संकोच करते हैं और बहुत सारी चीज़ें समझते हुए भी अपनी बात नहीं कह पाते। भाषा का माध्यम भी कक्षा की बातचीत में, संवाद में एक बहुत बड़ा मुद्दा है।

गणित के सन्दर्भ में इससे जुड़ी हुई दूसरी चीज़ यह है कि गणित की जो विशेष शब्दावली है उसके अर्थ को वो ठीक से नहीं समझता तो उसका प्रयोग करने से भी हिचकिचाता है और इन सबके साथ जुड़कर एक बात और आती है कि शिक्षक ने बच्चे के अन्दर कितना आत्मविश्वास पैदा किया है। जिस पृष्ठभूमि से बच्चा आ रहा है, वहाँ उसके आत्मविश्वास के साथ किस तरह का काम हुआ है? ये कुछ बिन्दु मुझे समझ में आए कि ये वो कारक थे जो हमको भी बातचीत करने से रोकते थे। इस आधार पर बच्चों के साथ काम करने के दरमियान मैं अकसर सोचता था कि कक्षा प्रक्रियाओं से ये बातें अगर किसी तरह से हटा पाएँ, तो बच्चे में बातचीत करने का शायद ज़्यादा हौसला बनेगा। अभी कुछ दिन पहले एक संकुल बैठक में चर्चा हो रही थी और यही बात चल रही थी कि गणित को लेकर क्या शिक्षक को ही सारी बातें बतानी चाहिए या बच्चे को भी मौक़े देने चाहिए। बात निकलकर आई कि हम बच्चे को यदि मौक़ा दें तो बहुत सारी चीज़ें उनके पास से निकलकर आ सकती हैं। बहुत सारे शिक्षकों को इसपर यक़ीन नहीं होता कि ये चीज़ें हो सकती हैं। उनकी इस बातचीत के आधार पर हम लोगों ने तय किया कि बच्चों के साथ एक छोटी-सी एक्सरसाइज़ करके देखें। और मुझे मौक़ा मिला तीसरी कक्षा के बच्चों के साथ काम करने का।

गणित में भाषा के उपयोग में गणितीय भाषा का भी उपयोग और उसमें गणितीय संवाद करना बहुत ज़रूरी होता है। इसकी भी केन्द्रीय भूमिका होती है। जैसे— दावा करना या अनुमान लगाना (conjecture), उसे परखना व उसके साथ सहमति या असहमति व्यक्त करना। और इस सहमति या असहमति के हमारे तर्क क्या हैं, उनको भी प्रस्तुत करना ज़रूरी है। कक्षा की बातचीत में इसके लिए भी जगह बननी चाहिए।

शुरू में मुझे समझ नहीं आया कि किससे शुरुआत करें। लेकिन मैंने देखा कि वो बच्चे उस समय कपड़े की एक गेंद बनाकर खेल, खेल रहे थे। मुझे लगा कि यहीं से बातचीत शुरू की जा सकती है। मैं उनकी कक्षा में गया, शिक्षक भी साथ थे। मैंने उनकी गेंद को लेकर उनसे बात की। उनसे पूछा, कैसे बनाई? जिस बच्चे ने बनाई थी उसे बताने में, उसका वर्णन करने में

काफ़ी ख़ुशी हुई। उसने बताया कि पहले बहुत सारे कपड़े एकत्र किए और उनको सुतली से बाँधना शुरू किया, फिर बाँधते-बाँधते इसे एक आकार दे दिया और ऊपर कपड़े लपेट दिए। फिर उन सारी चीज़ों को एक मोज़े के अन्दर बन्द कर दिया। तो गेंद के बनने की प्रक्रिया क्या थी वो उसने बताई। अब मैंने कहा कि गेंद का आकार ऐसा क्यों है? आप उसको चॉक के डिब्बे में भर सकते थे, तो और बहुत अच्छी, बड़ी गेंद बन सकती थी। उन्होंने कहा कि ये जो गेंद है ये इससे लुढ़कती है। यहाँ बताना चाहूँगा कि ये सारी बातचीत दो भाषाओं में हो रही थी। मैं हिन्दी में बोल रहा था और बच्चे छत्तीसगढ़ी में जवाब दे रहे थे। और कुछ ही देर में उनको ये समझ में आने लगा था कि मैं उनकी बात समझ पा रहा हूँ और वो मेरी। उन्होंने कहा कि बॉल ढोलान के मतलब है कि बॉल लुढ़क जाती है। उनके पास हिन्दी भाषा के गणित सम्बन्धित शब्दों के छत्तीसगढ़ी पर्यायवाची होते हैं। अगर कक्षा में उनकी भाषा के शब्दों को जगह देना शुरू करें तो उनके लिए चीज़ें आसान हो जाती हैं। बातचीत चली, मैंने आगे पूछा कि ऐसी और कौन-कौन सी चीज़ें होती हैं? उन्होंने बहुत सारी चीज़ों के नाम गिनाए। जैसा इस गेंद का शेप है वैसी बाटी भी होती है, भँवरा भी लगभग वैसा ही होता है, और लड़्डू भी ऐसा होता है। ऐसी कई सारी चीज़ें सामने आईं। मैंने पूछा कि इस आकृति का कोई नाम भी होता है? बच्चों ने बताया कि ऐसी आकृति को हम गोल कहते हैं। फिर मेरा सवाल था कि और जो तुम जानते हो उनमें से कौन-कौन सी चीज़ें गोल होती हैं? उन्होंने बताना शुरू किया : साइकल के टायर भी गोल होते हैं, चक्का भी गोल और इस तरह उन्होंने आसपास की बहुत सारी चीज़ों के नाम गिनाए। वे गोल के साथ वृत्त और चक्र की बात भी कर रहे थे। मुझे लगा कि इस बात को आगे बढ़ाकर देखना चाहिए। मैंने फिर पूछा कि ये टायर का गोल होना और बॉल गोल होना, क्या इन दोनों में कुछ फ़र्क़ है, कोई अन्तर है? अब देखिए, यहाँ उन बच्चों ने आपस में बातचीत शुरू की और ढूँढ़ना शुरू किया कि टायर और बॉल दोनों को हम गोल कह रहे हैं, लेकिन इन दोनों के गोल होने में एक फ़र्क़ तो है जो हमें साफ़-साफ़ दिखाई दे रहा है। पर इस फ़र्क़ को बताएँ कैसे? थोड़ी देर बाद एक बच्ची ने कहा कि सर, ये जो चक्का है न इसे जब हम ज़मीन पर रखेंगे तो वो सभी तरफ़ से ज़मीन को छूता है। लेकिन जब हम गेंद को ज़मीन पर रखते हैं तो गेंद का थोड़ा-सा हिस्सा ही ज़मीन को छूता है। इसी तरह से उन्होंने बहुत सारी चीज़ें अपने शब्दों में बताईं और वो निश्चित रूप से एक वृत्त को और एक गोले को अलग-अलग कर पा रहे थे। ऊपर जिन बिन्दुओं की मैंने बात की जिनके कारण बच्चे बोलते नहीं, मैंने कोशिश की कि उन्हें हटाऊँ और हटा पाया। यह देखा कि बातचीत व संवाद से चीज़ें बन सकती हैं। उसके बाद कुछ और बातें हुईं। मैंने उनसे पूछा कि अगर टायर जैसे तुमको गोल बनाना है तो ऐसा बनाने के और क्या-क्या तरीक़े हो सकते हैं। उन्होंने कहा कि टायर को ज़मीन पर रख दें
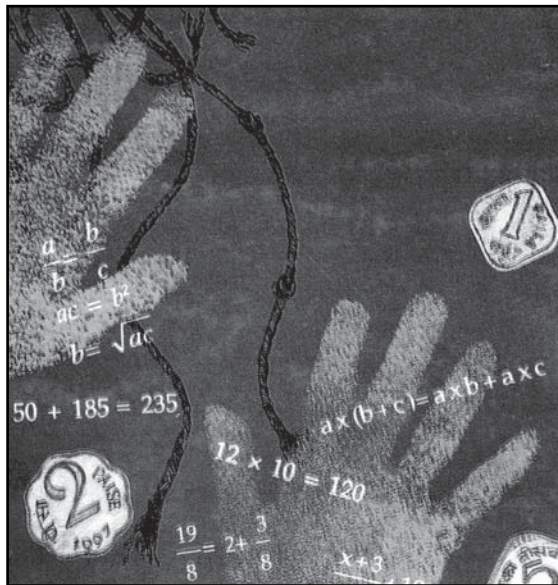
और वहाँ से जब हम उसके साथ-साथ लकड़ी चलाएँगे तो उस तरह की आकृति बन सकती है। एक थाली को ज़मीन पर रखते हैं, ढक्कन को काग़ज़ पर रखकर पेंसिल घुमाएँ तो भी यह आकृति बन सकती है। अमूमन उन्होंने वृत्त बनाने की बात कर ली। मुझे लगा कि इनके जो गणितीय नाम हैं, जैसे– वृत्त, ये शब्द उनके पास कैसे जाएगा। मैंने बच्चों से कहा कि ये जो आकृति तुम देख रहे हो इसके बारे में किताब में कुछ बातें दी गई हैं, अगर किसी ने देखा हो तो तुम लोग बता सकते हो। इतना कहने की देर थी कि सारे बच्चों ने दौड़कर अपने बस्ते से किताबें निकालीं और वृत्त वाले पाठ को ढूँढ़ लिया। मैंने पूछा कि ये गेंद जैसे चीज़ थी उसको तो तुम गोल कह रहे थे, वैसे ये जो चक्का है इसको गोल कह रहे हो, क्या इसका कोई और भी नाम है? उन्होंने किताब को पढ़ना शुरू किया, बहुत आश्चर्य हुआ कि उस बीस-पच्चीस बच्चों की कक्षा में सभी बच्चे एक किताब के ऊपर मक्खी की तरह झूम गए थे उनको पढ़ने में दिक़्क़त हो रही थी फिर भी उन्होंने पढ़कर बता दिया कि सर, इसका नाम वृत्त है। 'वृत्त' शब्द किताब में से ढूँढ़ना उनकी अपनी खोज थी और एक नया नाम उन्होंने ढूँढ़ लिया और एक फ़र्क़ जान लिया कि जो एक गेंद जैसी चीज़ है उसका एक नाम है और चक्के जैसी चीज़ के लिए दूसरा शब्द है, मैं जिसे वृत्त कह रहा हूँ उसको वो 'विरित' बोलते हैं, लेकिन मुझे समझ में आ रहा था और यह भी कि अभी इसे बोलने की इजाज़त होनी चाहिए। देर-सवेर वे ख़ुद ही शब्दों का संशोधन कर लेंगे। फिर मैंने कहा कि इसके बारे में पाठ में और क्या-क्या चीज़ें दी गई हैं तो कुछ ही देर में उन्होंने पूरा पाठ पढ़ लिया, आपस में बातचीत की और बताया कि सर, इसमें त्रिज्या और केन्द्र भी लिखा है। फिर हमने त्रिज्या पर बात शुरू की। उन्होंने गणितीय शब्दों में त्रिज्या की परिभाषा नहीं बताई लेकिन उनकी समझ बिलकुल सही थी। ठीक बीच की जगह से किनारे तक जो लकड़ी रखेंगे उसकी जो लम्बाई होगी वो त्रिज्या की माप होगी और ये जो रेखा बनेगी वो त्रिज्या होगी। अगला सवाल था कि एक वृत्त में तुम कितनी त्रिज्याएँ बना सकते हो, वहाँ कक्षा में चारों ओर बोर्ड बने हुए थे तो बच्चों ने अपने-अपने हिस्से में, अपने अनुमान से वृत्त बनाया और अनुमान से एक केन्द्र बनाया और उनमें होड़ लग गई कि कौन कितनी ज़्यादा त्रिज्या बना सकता है। सबने अपनी-अपनी त्रिज्याएँ बनाईं। कोई बोला, मैंने 25 त्रिज्या बनाईं। कोई बोला कि सर, मैंने 26, कोई बोला 40। अन्त में पूछा कि और ज़्यादा बन सकती हैं तो बोले, हाँ सर, और बहुत सारी बन सकती हैं। ये मेरा छोटा-सा अनुभव था। बाद में जब शिक्षकों के साथ चर्चा हुई तो उनका कहना था कि जितनी बातें आपने कक्षा में बताईं वो बच्चों को दस मिनट में बताई जा सकती थीं लेकिन आपने पौन घण्टे का समय लिया। दूसरे शिक्षक ने कहा कि एक फ़र्क़ है, वह यह कि सारी चीज़ें बच्चों ने बताईं। मुझे लगता है कि जो बातें मैंने महसूस कीं अपने विद्यार्थी जीवन में कि मुझे कौन-कौन सी चीज़ें कक्षा में बात करने से रोकती थीं, उनको किसी तरह से कक्षा में से बाहर कर सकें, उनको कक्षा के माहौल से बाहर निकाल दें तो बच्चों को बात करने के ज़्यादा मौक़े मिलते हैं। ऐसा करने से उनके पास जो गणित का ज्ञान था, वो भी बहुत आसानी से बाहर निकलकर आता रहा। इससे हमें यह समझ आता है कि उनकी समझ कैसे विकसित हो रही है।

बच्चों की भाषा और स्कूली भाषा में फ़र्क़ हो सकता है, जैसा हिन्दी और छत्तीसगढ़ी एवं बच्चे की भाषा में होता है। यह सब भाषाओं में होता है, सिर्फ़ छत्तीसगढ़ी की बात नहीं है। अगर आप मराठी, तमिल या हिन्दी को भी लेंगे तो वहाँ भी घरेलू भाषा और अकादमिक भाषा में काफ़ी फ़र्क़ होता है। तो इन चुनौतियों को कैसे हल कर सकते हैं इसपर कुछ बात हुई, लेकिन मुझे लगा कि गणित की कुछ ख़ास प्रक्रियाएँ व ख़ास भाषा और ख़ास संवाद व विमर्श जिसमें कुछ तर्क करना, अनुमान लगाना, परिभाषा बनाना, ये सब ज़रूरी होता है। ये भी हमें थोड़ा-सा लाना चाहिए।

अशोक : मुझे तीन प्रमुख बातें सामने आती लग रही हैं। एक सन्दर्भ से खोजने तक में जो प्रक्रिया होती है वह एक चुनौतीपूर्ण प्रक्रिया होती है। दूसरी बात यह कि बातचीत के ज़रिए गणित की अवधारणाओं पर काम होता है और बेहतर तरीक़े से होता है, लेकिन ये अपने-आप में समय लेने वाली प्रक्रिया है और जो तीसरी बात है बच्चों के दृष्टिकोण को शामिल करना। तो क्या ऐसा भी होता है कि बातचीत तो हो रही हो और ये लगे कि वो बातचीत है लेकिन उसमें बच्चों का दृष्टिकोण तो शामिल ही नहीं है। इन सभी पर और बातचीत हो सकती है। तो रवि से शुरू करते हैं कि इस सब पर हम कैसे आगे बढ़ें?

हृदयकान्त : रवि, आप रियलिस्टिक गणित के बारे में थोड़ा विस्तार से बताएँ जैसा कि शहनाज़, बीना की बात में इसकी झलक दिखती है। उनके कुछ उदाहरणों में उस दृष्टि के कई पहलू भी दिखते हैं। इसपर भी आप कुछ कहें तो अच्छा होगा।

रवि : कक्षा में भाषा की भूमिका, उसके प्रकार्य से सम्बन्धित बहुत सारे उदाहरण आए हैं और बहुत अच्छे से वो स्पष्ट हुआ है कि भाषा बड़ी भूमिका निभाती है। जैसे– बच्चों के अनुभव को संग्रह करना, पेश करना, खोज शुरू करना और उसपर बातचीत होना। यह सब दर्शाता है कि कक्षा में बच्चे की भाषा में बोलना, संवाद करना ज़रूरी है। एक और बात मैं इसमें जोड़ना चाहता हूँ कि गणित में भाषा के उपयोग में गणितीय भाषा का भी उपयोग और उसमें गणितीय संवाद करना बहुत ज़रूरी होता है। इसकी भी केन्द्रीय भूमिका होती है। जैसे– दावा करना या अनुमान लगाना (conjecture), उसे परखना व उसके साथ सहमति या असहमति व्यक्त करना। और इस सहमति या असहमति के हमारे तर्क क्या हैं, उनको भी प्रस्तुत करना ज़रूरी है। कक्षा की बातचीत में इसके लिए भी जगह बननी चाहिए। सुधीर ने जो बताया, बहुत ही स्पष्ट, विस्तृत और पावरफुल था। उनके उदाहरण में बहुत-सी चीज़ें आ गईं, जैसे– बच्चों ने ध्यानपूर्वक अवलोकन किया कि गोल और वृत्त में कुछ फ़र्क़ होता है, इससे वे अनुभव की भाषा से गणितीय भाषा की ओर बढ़े। आगे यह कुछ-कुछ औपचारिक (फ़ॉर्मल) और अमूर्त (एब्स्ट्रेक्ट) हो जाता है। त्रिज्या और व्यास की भी बात हुई। त्रिज्या और व्यास दिखते नहीं हैं, लेकिन इन विचारों पर इन ख़ास सन्दर्भों में संवाद होना ज़रूरी है। शिक्षकों के बीच भी संवाद ज़रूरी है कि हम त्रिज्या, व्यास जैसी अवधारणाओं पर कैसे बातचीत कर सकते हैं। पहले ये सब स्पष्ट होना चाहिए और वो सोच पाने से फ़ायदा क्या होता है। वृत्त की परिभाषा हम जानते हैं, किसी एक केन्द्र बिन्दु से समान दूरी पर स्थित बिन्दुओं का बिन्दुपथ वृत्त कहलाता है। इसे बच्चे को कण्ठस्थ करने की बजाय समझना है। फिर वृत्त और डिस्क में भी अन्तर होता है वो भी सीखने वालों के सामने रखना है। पर इन परिभाषाओं की ज़रूरत क्या है, और इन परिभाषाओं से क्या फ़ायदा होता है, इनकी तरफ़ कैसे जा सकते हैं? ऐसे सवालों पर भी शिक्षकों के बीच संवाद ज़रूरी है। इससे ही जिसे पेडागॉजिकल कन्टेन्ट नॉलेज (pedagogical content knowledge) कहा जाता है, बढ़ता है। उदाहरण के लिए, वृत्त कितना बड़ा है यह नाप करना है तो कैसे करेंगे, तब इसमें शायद व्यास की अवधारणा

आ जाएगी। और यह सोच पाना कि एक वृत्त के हर व्यास की साइज़ बराबर होती है और उससे हम ये भी देख सकते हैं कि वृत्त का हर व्यास केन्द्र से गुज़रता है। इस सबके दौरान एक सन्दर्भ गढ़कर हम त्रिज्या की तरफ़ भी जा सकते हैं। इससे हम गणितीय अवधारणाओं और गणितीय भाषा की तरफ़ थोड़ा आगे बढ़ सकते हैं। बाक़ी सारी चीज़ों का अच्छे से ज़िक्र हुआ है और अच्छे से बात रखी है। इसमें कुछ चुनौतियाँ भी हैं, जैसे– बच्चों की भाषा और स्कूली भाषा में फ़र्क़ हो सकता है, जैसा हिन्दी और छत्तीसगढ़ी एवं बच्चे की भाषा में होता है। यह सब भाषाओं में होता है, सिर्फ़ छत्तीसगढ़ी की बात नहीं है। अगर आप मराठी, तमिल या हिन्दी को भी लेंगे तो वहाँ भी घरेलू भाषा और अकादमिक भाषा में काफ़ी फ़र्क़ होता है। तो इन चुनौतियों को कैसे हल कर सकते हैं इसपर कुछ बात हुई, लेकिन मुझे लगा कि गणित की कुछ ख़ास प्रक्रियाएँ व ख़ास भाषा और ख़ास संवाद व विमर्श जिसमें कुछ तर्क करना, अनुमान लगाना, परिभाषा बनाना, ये सब ज़रूरी होता है। ये भी हमें थोड़ा-सा लाना चाहिए।

बीना : अभी सर ने कहा था कि ऐसे शिक्षण में हमारा समय ज़्यादा लगता है, तो मेरा मानना यह है कि बच्चों के साथ काम करने की शुरुआत में, बच्चों के दैनिक जीवन व दैनिक गतिविधि से जोड़ते हुए बढ़ने में भले ही समय लगे लेकिन ये ज्ञान स्थाई होता है। जब हम बच्चों की समझ को आगे बढ़ाने की कोशिश करते हैं तो पिछले ज्ञान को थोड़ा रेफ़र करते ही पिछला ज्ञान जो उसके दिमाग़ में होता है वे इस्तेमाल में ले सकते हैं। वहाँ हमारे समय की बचत होती है। जब सूत्रों और रटन्त विद्या के माध्यम से पढ़ाते हैं तो बच्चे बिलकुल भूल जाते हैं और जब हम आगे बढ़ने की कोशिश करते हैं हमें पहले वाला दोबारा सिखाना पड़ता है। इसलिए मैं इस बात से सहमत नहीं हूँ कि इसमें बहुत ज़्यादा समय लगता है। उसके अलावा सुधीर सर ने बताया कि हम बच्चों से ही प्रश्न पूछें और उन्हें सोचने और जवाब देने कहे, वे ही किताब में ढूँढ़ें, यह बहुत अच्छा उदाहरण है।

रजनी : शहनाज़ आप कुछ कहना चाहेंगी?

शहनाज़ : जब हम सवाल पढ़ते हैं और गणित की शब्दावली पर बात करते हैं तो बच्चों के साथ-साथ हमें यह बात भी करने की ज़रूरत होती है कि आपकी भाषा में इसे क्या कहते हैं। इससे उनकी समझ बनती है कि हम इसको यह कहते हैं और सामान्यतः यहाँ-यहाँ इस्तेमाल करते हैं। इससे उन्हें अपने सन्दर्भ से चीज़ों को जोड़ने में मदद मिलती है। और दूसरा जो मैंने अनुभव किया है कि जब शिक्षक बच्चों के साथ थोड़ा बहुत खेल खेलते हैं, जैसे– दुकान वाला खेल, पर्चे वाले, कार्ड वाले खेल आदि, उस समय भी बच्चों के साथ काफ़ी सारी बातचीत होती है। खेलों में भी वो कई सारी गणित की चीज़ों को खोज पाते हैं। जिस तरह के काम हम करवाना चाह रहे हैं उनसे सम्बन्धित कोई खेल, जिसमें गणित का पुट हो और गणितीय बातचीत की गुंजाइश हो, बना लेते हैं और उसपर लगातार बातचीत करने से चीज़े भी थोड़ी सरल हो जाती है। जैसा सुधीर सर कह रहे थे कि खेलते समय बच्चों को किसी प्रकार का डर नहीं होता और उनको यह भी नहीं लगता कि शिक्षक डाँटेंगे।

मुझे लगता है कि जिस तरह हमने ठोस चीज़ों को गणित में शामिल (introduce) किया है उससे गणित की शिक्षा में ये ख़तरा बढ़ गया है। शिक्षक को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वास्तव में ये सब जो बैसाखियाँ, कंक्रीट चीज़ें हैं, इनसे हमें आगे बढ़ना चाहिए। बच्चों के अपने सिम्बोलिक रिसोर्सेस होते हैं, उनके व उनके उपयोग पर और बातचीत करनी होगी। गणित में हम जिन सिम्बल्स का इस्तेमाल करते हैं, ज़रूरी है कि उनमें कुछ स्ट्रक्चर हो। जैसे— हर संख्या के लिए संख्यांक (numeral) का एक सिम्बल है।

उस समय उनमें थोड़ा आत्मविश्वास होता है कि हम खेल-खेल में कुछ सीख भी रहे हैं और इसमें ग़लती हो भी गई तो कोई ज़्यादा परेशानी नहीं होगी। अत: वहाँ सीखने और बातचीत की भी काफ़ी अच्छी सम्भावनाएँ होती हैं।

अशोक : सुनील ने एक बात रखी थी। वो कह रहे थे कि सन्दर्भ से शुरू कर खोज तक जाने की प्रक्रिया चुनौतीपूर्ण होती है। यह बात यहीं तक रह गई थी तो इसपर थोड़े और उदाहरण मिले। और दूसरी बात, जैसे गणित में हम कुछ ठोस रूप से शुरुआत करते हैं, कुछ मॉडल बनाते हैं और उसके बाद बातचीत के मौक़े बनते हैं, ये मॉडल बनाने की प्रक्रिया कहाँ तक जा सकती है? शुरुआती स्तर पर ये ठीक लगता है, इसको आगे तक कैसे देख सकते हैं? इसपर भी थोड़ा कहें।

हृदयकान्त: मैं ऐसा ही सवाल रवि से भी पूछना चाह रहा था। ये जो मॉडल इस्तेमाल करने का मसला है, जैसे– चूड़ी का या गेंद को वृत्त या गोला जो भी कहें, या ये जो बण्डल और तीली का उपयोग हम करते हैं, एक तरह से सन्दर्भ का अर्थ और उसके इर्द-गिर्द पूरी बातचीत इन तरह के मसलों में उलझ गई है। क्या यह सही है या फिर उसको तोड़कर किसी और चीज़ पर जाना है। क्या हम, जिस तरफ़ रवि इंगित करना चाह रहे हैं, उस तरफ़ जा रहे हैं? यह उस सवाल में भी दिखता है कि सन्दर्भ से खोज तक कैसे जाएँ? मतलब कैसे यह पूरा प्रपंच कुछेक उदाहरण देने के रूप में न होकर ज़्यादा व्यापक मसले के रूप में हो, जिसके बारे में बच्चा और जगह भी सोचे। इसी बात को शायद *एनसीएफ़* में भी आप लोगों ने रखा है, गणितीयकरण के रूप में। तो आप अगर इस सबको लिंक कर सकें तो मुझे इस बात को समझने में थोड़ी मदद मिलेगी।

रवि : यह बात सही है कि हमने ठोस चीज़ों पर अगर बहुत ध्यान देना शुरू किया तो उससे कुछ दिक़्क़तें भी आ सकती हैं। जैसे, मुझे याद है कि तीलियों के बण्डल के साथ बच्चे मुंबई के आसपास एक स्कूल में काम कर रहे थे। मैं स्कूल में अनुभवी शिक्षाविद् के साथ गया था। उन्होंने बच्चों के सामने के तीली के बण्डल और तीली की जगह को बदल दिया, इससे बच्चे काफ़ी कन्फ़्यूज़ हो गए। वो उस प्रोसीजर में ही घुस गए थे और अटक गए थे। उनकी तीलियों के पीछे जो असल में संख्यात्मक मात्रा की समझ है वो नहीं बन पाई थी। उस तरह का सन्दर्भ का उपयोग भी एक यांत्रिक प्रोसीजर बन गया था। यह ख़तरा है कि अगर हम ठोस चीज़ों में अटक गए तो बच्चे ज़्यादा नहीं सीख पाएँगे। मुझे लगता है कि जिस तरह हमने ठोस चीज़ों को गणित में शामिल (introduce) किया है उससे गणित की शिक्षा में ये ख़तरा बढ़ गया है। मुझे लगता है कि शिक्षक को यह ध्यान में रखना चाहिए कि वास्तव में ये सब जो बैसाखियाँ, कंक्रीट चीज़ें हैं, इनसे हमें आगे बढ़ना चाहिए। बच्चों के अपने सिम्बोलिक रिसोर्सेस होते हैं, उनके व उनके उपयोग पर और बातचीत करनी होगी। गणित में हम जिन सिम्बल्स का इस्तेमाल करते हैं, ज़रूरी है कि उनमें कुछ स्ट्रक्चर हो। जैसे– हर संख्या के लिए संख्यांक का एक प्रतीक है। संख्या व
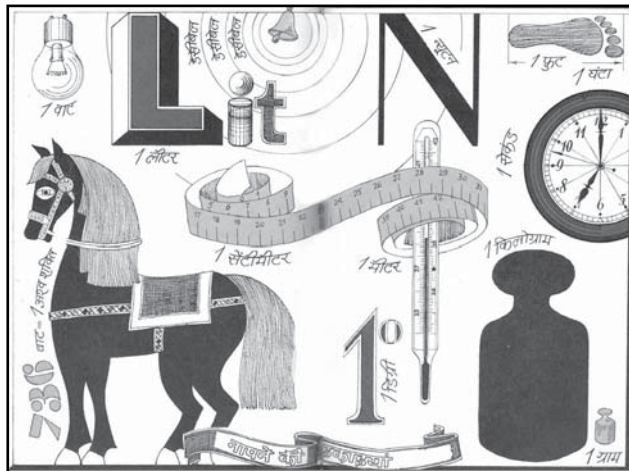
उसके संख्यांक के रचने में कुछ स्ट्रक्चर होता है। स्थानीय मान और इस संरचना को समझना और उसके साथ परिमाण (quantity) की धारणा को जोड़ना बहुत ज़रूरी है। साथ ही, बच्चों को प्रतीकों के साथ काम करना आना चाहिए और इसपर भी प्रयास होना चाहिए कि बच्चे भी अपने सिम्बल बना सकते हैं, इन्वेन्ट कर सकते हैं। वे अपने प्रतीक बनाकर उपयोग कर पाएँ तो शायद ठोस चीज़ों को छोड़कर आगे बढ़ पाएँगे। फिर एक स्टेज आएगी जहाँ पर बच्चे अपने-आप ख़ुद के जो भी सिम्बल्स का इस्तेमाल कर रहे हैं वहाँ से भी औपचारिक शब्दों व मान्य गणितीय संकेतों की तरफ़ जा सकते हैं, लेकिन ये बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल है। जब हम बीजगणित (algebra) की तरफ़ बढ़ेंगे तो इसके अभाव में वे बीजगणित कैसे सीख पाएँगे? क्योंकि कई आगे की अवधारणाएँ सीखने में बीजगणित की बहुत आवश्यकता है। साइंस सीखने में, सांख्यिकीय, प्रायिकता, निर्देशांक ज़्यामिति आदि, कई हिस्से हैं जिनमें बीजगणित की समझ ज़रूरी है। इनमें प्रतीक चिह्नों का प्रयोग होता है और उसे सिखाने का तरीक़ा अलग होता है। इनमें हम ठोस वस्तुएँ कम ही इस्तेमाल कर सकते हैं, तो इनके लिए क्या अप्रोच होनी चाहिए? ये अलग अप्रोच तो हमें लेनी ही होगी।

हृदयकान्त : बातचीत के सन्दर्भ में यह बड़ा सवाल हर शिक्षक का है कि मेरे पास बीस-पच्चीस या अधिक बच्चे हैं। मैं एक शिक्षक हूँ। जब मैं एक बच्चे के साथ बातचीत करता हूँ तो उस बच्चे को मैं उसके मॉडल्स बनाने, उन मॉडल्स से खेलने की और उन मॉडल्स को समझकर जो असल में गणितीय स्वरूप हैं वहाँ तक पहुँचाने में मदद कर सकता हूँ। लेकिन जब ज़्यादा बड़ी कक्षा है तो उसमें ये बातचीत किस प्रकार हो सकती है? और उसमें किस चीज़ से बचना चाहिए जिससे कि वो एक तरह से तीली या बण्डल जैसे छद्म, या जैसी बातचीत के बारे में चिन्ता थी, ये भी उसी तरह नाटकनुमा न बनकर रह जाए?

रवि : हाँ, यह समझना बहुत महत्त्वपूर्ण है। हमें एक उदाहरण चाहिए। जैसे– कक्षा के डिस्कोर्स (चर्चा व विमर्श) को हम बहुत ग़ौर से देखें तो उसमें गणितीय तत्त्व (मेथेमेटिकल चीज़ें) कहाँ हैं और कैसे उभरकर आ रहे हैं, ये समझना ज़रूरी है। मुझे लगता है कि यही शिक्षकों के क्षमतावर्धन का तरीक़ा है। इससे उनके कौशल व समझ दोनों का विकास होगा। इसलिए हमें कक्षा में हो रहे विमर्श के अध्ययन की ज़रूरत है। यह भी सोचना होगा कि उसे देखने के लिए हम क्या-क्या और कौन-कौन से लेंस लगाकर उसको देखेंगे। एक और बात, कुछ ख़ास रिप्रेजेंटेशन जो होते हैं जो लम्बे समय तक गणित की शिक्षा में चल सकते हैं, मतलब प्राथमिक से लेकर उच्च प्राथमिक और हाई स्कूल एवं आगे भी, जैसे– नम्बर लाइन एक अच्छा उदाहरण है, उनको हमें शायद ज़्यादा महत्त्व देना चाहिए और उनको कहीं-न-कहीं केन्द्रीय भूमिका देनी चाहिए। मैं ये नहीं कह रहा हूँ कि प्राथमिक कक्षाओं से ही वो शुरू होना चाहिए, लेकिन हम जो भी रिप्रेजेंटेशन उपयोग कर रहे हैं उनमें से ऐसे कुछ रिप्रेजेंटेशन बहुत गहरे हैं। वे अलग-अलग रूप में हमारे साथ बहुत लम्बे समय तक जा सकते हैं। उनके साथ हमें जोड़ते रहना ज़रूरी है। मुझे लगता है कि ये कुछ हद तक नियंत्रित

क्लासरूम के डिस्कोर्स (चर्चा व विमर्श) को हम बहुत ग़ौर से देखें तो उसमें गणितीय तत्त्व (मेथेमेटिकल चीज़ें) कहाँ हैं और कैसे उभरकर आ रहे हैं, ये समझना ज़रूरी है। मुझे लगता है कि यही शिक्षकों के क्षमतावर्धन का तरीक़ा है। इससे उनके कौशल व समझ दोनों का विकास होगा। इसलिए हमें कक्षा में हो रहे विमर्श के अध्ययन की ज़रूरत है। यह भी सोचना होगा कि उसे देखने के लिए हमें क्या-क्या और कौन-कौन से लेंस लगाने होंगे।

करेगा कि बच्चे कुछ ठोस चीज़ों में ही न अटक जाएँ।

सुनील : यह ठीक है कि हमें वास्तव में ठोस वस्तु से अमूर्त की तरफ़ आना है। इसमें अनुभव व चर्चा से गणित को अमूर्त रूप में जो खींचकर निकालना है उस प्रक्रिया में शिक्षक की महती भूमिका है। इसमें जहाँ पेडागॉजिक व कन्टेन्ट के ज्ञान की ज़रूरत एक हद तक शिक्षक की क्षमता निर्माण की माँग करती है वहीं इसके अलावा इस तरह की कक्षा का निर्माण विश्वास, एजेंसी और स्वायत्तता की भी माँग करता है।

अशोक : आप सभी का इस संवाद में भाग लेने के लिए बहुत सुक्रिया।

*सभी चित्र व्लादीमिर ल्योवशिन की क़िताब *कप्तान एकक का फ़्रिगेट*, रादुगा प्रकाशन मास्को से साभार

पाठकों के विचार

पाठशाला अंक 10 में प्रकाशित द्रोण साहू का लेख *बच्चों की भाषा के सम्मान के मायने : एक अनुभव* काफ़ी संवेदनशीलता से लिखा गया है। यह हमें गम्भीर भाषा समस्या को समझने की ओर इंगित करता है। बच्चे जब अपनी क्षेत्रीय भाषाओं के साथ कक्षा में आते हैं तो उनके लिए खुलकर बोलना कठिन होता है और जब शिक्षक द्वारा भाषा की इस समस्या का ध्यान नहीं रखा जाता तो बच्चे कक्षा के अन्दर चुप रहने लगते हैं। इस तरह के लेखों को पढ़कर शिक्षक व बच्चों के बीच बेहतर रिश्ते की पहल भी दिखाई देती है। लेख में इस ओर भी इशारा किया गया कि कक्षा में हर बच्चा महत्त्वपूर्ण होता है।
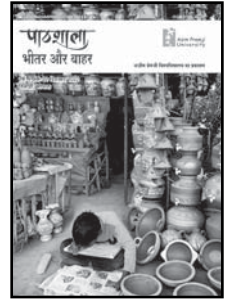
ये लेख कक्षा में हमें हर भाषा का महत्त्व भी बताता है। मैं अपनी कक्षाओं में भी इस तरह के उदाहरण देख पाती हूँ, जब बच्चा घर और स्कूल की भाषा की दुविधा में रहता है। पर जब हम उनकी घर की भाषा से शुरुआत करते हैं तो वह अधिक स्वतंत्र होकर अपनी बात रख पाते हैं।

- किरण पाटीदार, शासकीय कन्या प्राथमिक शाला, चोली, महेश्वर

अनिल सिंह के लेख से मुझे कक्षा में कहानियों की प्रासंगिकता के कुछ नए आयाम भी सीखने को मिले। लेख ने इस बात की पुष्टि एवं समर्थन किया है कि किस प्रकार कहानियों को छात्र-छात्रों के बीच स्वीकार्यता मिलती है और वे मनोयोग व संवेदनाओं के साथ कहानी के साथ एकाकार हो जाते हैं। यह सीखने को भी मिला कि कहानियाँ किसी भी विषय में शिक्षण का एक असरदार ज़रिया बन सकती हैं। कहानियों की वास्तविक क्षमता है कि वह छात्रों के मध्य सहज भाव से स्वीकार्यता व जुड़ाव उत्पन्न कर पाती हैं। अब यदि इन्हीं कहानियों के ज़रिए विषय की बारीक़ियों को भी बुनकर छात्रों के बीच ले जाया जाए तो काफ़ी हद तक छात्रों को विषय समझने में भी मदद मिलेगी।

यदि मैं गणित की बात करूँ तो अकसर कुछ छात्र इबारती प्रश्नों से जूझते दिखते हैं। इसका एक समाधान तो कहानियों में ही छुपा हुआ दिखता है कि क्यों न आरम्भ से ही विषय को कक्षा में छोटी-छोटी कहानियों के रूप में प्रस्तुत करते हुए ले जाया जाए जिससे छात्रों को कहानियों से सूचनाएँ एकत्र करने और समाधान की ओर अग्रसर होने में मदद मिलेगी।

- नरेंद्र कोठियाल, अज़ीम प्रेमजी स्कूल मातली , उत्तरकाशी, उत्तराखंड

पाठशाला के हर अंक की तरह नौवाँ अंक भी मेरे लिए काफ़ी प्रासंगिक है। अंक के लेखों को पढ़ने के बाद मुझे अपने कक्षा शिक्षण के लिए कई महत्त्वपूर्ण बिन्दु मिले। ईमानदारी से कहूँ तो इन लेखों को पढ़ना मेरे लिए थोड़ा कठिन था जिसके मुख्यतः दो कारण थे। पहला यह कि मैं ज़्यादातर विज्ञान एवं विज्ञान शिक्षण से जुड़ी सामग्री पढ़ती हूँ। दूसरा कारण है लेखों में हिन्दी भाषा का उपयोग, जो बोलचाल में इस्तेमाल होने वाली हिन्दी से थोड़ा अलग थी।

मधु कुशवाहा द्वारा लिखित *जेंडर संवेदनशील शिक्षकों का सृजन* पढ़ते हुए मैं एक महिला शिक्षक के रूप में अपने कुछ शिक्षण अनुभवों को उससे जोड़ पा रही थी। मुझे दो उदाहरण याद आए। पहला, जब एक पुरुष सहकर्मी ने मुझे उच्च प्राथमिक छात्रों को जीव विज्ञान पढ़ाने के लिए कहा, जबकि स्वयं उन्होंने अपने लिए भौतिकी विषय पढ़ाना चुना। एक अन्य उदाहरण में, हम लकड़ी के बोर्ड पर विद्युत सर्किट बना रहे थे और इसके लिए लकड़ी काटने, ड्रिलिंग, सोल्डरिंग, आदि की आवश्यकता थी। पुरुष शिक्षकों ने कार्य में हस्तक्षेप करके काम की प्रक्रिया को इस तरीक़े से बाधित किया कि महिला शिक्षकों की इन कार्यों में प्रतिभागिता गौण हो गई।

मेरा मानना है कि जेंडर संवेदना को विकसित करने की नींव परिवार और विद्यालय से ही रखी जाती है। हालाँकि, छात्रों के बीच इसे स्थापित करने से पहले शिक्षकों को स्वयं इस विषय में संवेदनशील होने की आवश्यकता है। लेखिका द्वारा दिए गए सुझाव, कि इसे बीएड के पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाए, से मैं पूर्णतः सहमत हूँ।

लेखिका लिखती हैं कि विद्यालय ख़ुद कुछ सीमाएँ बनाते हैं जो सम्भावनाओं को सीमित करने वाली होती हैं, क्योंकि जाने-अनजाने शिक्षकों की बातचीत, व्यवहार और यहाँ तक कि उनके पढ़ाने के तरीक़े भी बच्चों के मन में विपरीत लिंगों से जुड़ी रूढ़िवादी सोच को बढ़ाते हैं। हम अकसर स्कूल संस्कृति में कुछ बातों को देखते हैं, जैसे— पुरुष और महिला शिक्षकों एवं छात्र-छात्राओं का अलग समूह में बातचीत करना, बातचीत की विषयवस्तु में अन्तर होना, समग्र स्कूल संचालन में महिला और पुरुष शिक्षकों की फ़र्क़ भूमिका, महिला शिक्षिकाओं की पुरुष शिक्षकों पर निर्भरता, आदि।

समाज में व्याप्त इन रूढ़ियों को दूर करने में अध्यापक की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। महिला शिक्षकों के लिए भी ज़रूरी है कि वे छात्रों के लिए एक उदाहरण बनें कि वह एक पुरुष सहयोगी के बराबर प्रदर्शन कर सकती हैं। स्कूल को ऐसा वातावरण बनाने की भी आवश्यकता है जहाँ पुरुष और महिला शिक्षक दोनों को विकसित होने और प्रदर्शन करने के समान अवसर और अनुकूल परिस्थितियाँ मिलें।

लेखिका द्वारा *युवा छात्रों के साथ व्यवहार करने* वाले उद्धृत उदाहरण में जेंडर मुद्दों से जुड़ी छात्रों की पहले से मौजूद रूढ़िवादी मानसिकता दिखाई देती है। जब एक पुरुष छात्र ने लेखन में बार-बार महिला क्रिया शब्द इस्तेमाल करने को नज़रअन्दाज़ किया और लेखिका के पूछने पर कहा कि इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता है, तब लेखिका का छात्र को महिला क्रिया शब्दों से सम्बोधित करना और कॉपी में नोट लिखना एक चिन्तनशील कार्य था।

कमलेश चंद्र जोशी के लेख *प्राथमिक कक्षाओं में लिखना सीखना : कुछ अवलोकन* ने मुझे विस्तृत अन्तर्दृष्टि प्रदान की। लेख से मेरी भाषा कौशल और भाषा में उत्कृष्टता विकसित करने के लिए प्रतिक्रिया देने की समझ बनी। लेखक ने बताया है कि वर्तनी की त्रुटियों को ठीक करना और विराम चिह्नों पर ध्यान केन्द्रित करना भाषा कक्षा में एक प्रमुख या व्यापक अभ्यास है। मैं भी इस अभ्यास को अपनी कक्षा में दोहराती हूँ। मुझे भी भाषा कौशल में सुधार या उन्हें और अधिक लिखने को प्रेरित करने के लिए प्रासंगिक सकारात्मक प्रतिक्रिया प्रदान करना मुश्किल लगता है।

लेखक द्वारा कहानी को आगे बढ़ाने के सन्दर्भ में मेरे विचार थोड़े अलग हैं। जैसे कि यदि छात्र को उदाहरण देकर समझाया जाए तो वह अपनी कल्पनाशीलता का प्रयोग न करके सिर्फ़ दिए गए

उदाहरण तक ही सीमित हो सकता है। मैं इस बात को अपनी कक्षा में प्रयोग करना चाहूँगी और समझने की कोशिश करूँगी कि जो मैंने सोचा था, वह कक्षा में होता है या नहीं।

लेख में शिक्षक के लेखन को बच्चों के समक्ष साझा करने का सुझाव मुझे दिलचस्प व नवाचारी लगा। मैं सहमत हूँ कि नमूना उत्तर या नमूना लेखन छात्रों को अपने विचार लिखने में सही दिशा देते हैं, उनकी सोचने की क्षमता को बढ़ाने के साथ-साथ उन्हें आसपास के परिवेश के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में भी मदद करते हैं।

इन लेखों में दिए गए सुझावों व विचारों को अपनी कक्षाओं में क्रियान्वित करने के लिए मैं काफ़ी उत्साहित हूँ।

- अर्चना द्विवेदी, अज़ीम प्रेमजी स्कूल मातली, उत्तरकाशी

पाठशाला के अंक 10 के अनुक्रम में शिक्षणशास्त्र खण्ड में लिखे पहले लेख का शीर्षक देखा, 'मैं महापल्ली में रहता हूँ' कुछ रोचक लगा तो सोचा यही पढ़ा जाए। लेख कक्षा 1 के बच्चे के लेखन के नमूने से शुरू हुआ। मीनू ने काफ़ी बारीक़ी से बच्चे की लिखाई का अवलोकन करते हुए यह बताने की कोशिश की कि कैसे हम बच्चों के लेख से यह जान पाते हैं कि उन्हें भाषा की कितनी समझ है और किस तरह सकारात्मक सोच रखते हुए उन कुछ पंक्तियों से हम यह बता सकते हैं कि बालक को किन-किन सम्प्रत्ययों का ज्ञान है और वह क्या-क्या जानता है। बजाय इसके कि हम ये देखें कि उसने लिखने में व्याकरण सम्बन्धी कितनी ग़लतियाँ की हैं, हमें यह समझना चाहिए कि वह लिखना सीखने की प्रक्रिया में कहाँ तक पहुँचा है और उसके अनुभव क्या हैं? मीनू ने यह भी सुझाया कि हमें ऐसे लेख जाँचते हुए सुधार कहाँ, क्यों, और कैसे करना चाहिए। मैं उनकी बातों से ख़ुद को जोड़ पाई क्योंकि अभी हाल ही में कक्षा 1 की हिन्दी की वर्कशीट जाँचते हुए मैंने काफ़ी ऐसे साक्ष्य पाए जिनमें बच्चों ने इन्वेंटेड स्पैलिंग का प्रयोग करते हुए अपनी बात रखी। मैंने पाया कि बच्चों को बहुत सारे वर्णों का ज्ञान है और वे अपनी भावनाओं को व्यक्त करने की क्षमता रखते भी हैं और करते भी हैं। लेखिका ने कई तरीक़े भी साझा किए जिनसे हम बच्चों को लिखने की तरफ़ अग्रसर कर सकते हैं और उनका लेखन बेहतर बना सकते हैं। बच्चों को मौलिक लेखन और बाल साहित्य पढ़ने के अवसर देना उनमें से एक है।
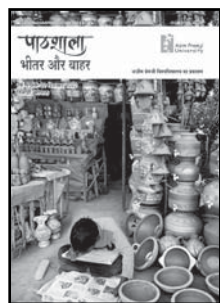
लेख सोचने का नया आयाम प्रदान करता है कि हमें बच्चों का लेखन सिर्फ़ ग़लतियाँ निकालने की दृष्टि से नहीं, बल्कि सकारात्मकता की दृष्टि से देखना चाहिए।

- निशा नेगी, शिक्षक, अज़ीम प्रेमजी स्कूल मातली, उत्तरकाशी, उत्तराखण्ड

नि:सन्देह पत्रिका के अंक 10 में अनुभव-आधारित शिक्षण परिस्थितियों को सहज बनाकर प्रस्तुत करने का प्रयास श्लाघनीय है। आलेखों की श्रृंखला में कक्षा 1 के बच्चे से स्व-परिचय लिखवाने का प्रयास एक विशिष्टता का द्योतक है। एक शिक्षक प्रशिक्षक के रूप में, यह मेरे लिए अनुभव के नए क्षितिज खोलने के समान है, जो इन्टर्नशिप के लिए विद्यालयों में आ रहे प्रशिक्षणार्थियों को प्रेरणा देने का कार्य करेगा। शिव पाण्डेय का अनुभव-आधारित शोध लेख, विचार करने का माध्यम बना। इस आलेख में अन्तर-अनुशासनात्मक सन्दर्भ के भी दर्शन हो रहे हैं। *कुत्ते के अंडे* नामक कहानी संग्रह का उल्लेख मात्र ही आलेख को आकर्षक बनाता है एवं पाठक के मन में उत्सुकता जगाता है। आरम्भिक भाषाई विकास में चित्रों एवं भाषा के योगदान पर समंक-आधारित प्रयोगात्मक शोध

रुचिप्रद होने के साथ ही गतिविधि-आधारित शिक्षण के महत्त्व को रेखांकित करने वाला रहा। *राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020* की मूल धारणा, कि बच्चों को मातृभाषा में शिक्षा देनी चाहिए, को 2019 में ही मूर्तरूप देने का प्रयास द्रोण साहू द्वारा किया जाना एक शिक्षक की दूरदर्शिता का परिचायक है। यही प्रयास दिनेश पटेल के लेख में भीली भाषा को लिपि स्वरूप देने में दिखता है।

डॉ. पल्लव पांडे, सहायक आचार्य (अँग्रेज़ी), शिक्षा संकाय, जनार्दन राय नागर राजस्थान विद्यापीठ (डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी), उदयपुर, राजस्थान

हेमवती चौहान का लेख *बाल साहित्य की ज़रूरत,* स्वयं में ही मुकम्मल है। लेख के आरम्भ में ही इसका इल्म हो जाता है कि बाल साहित्य सम्भावनाओं से भरा साहित्य है। इसमें हम अपने अनुभव जोड़कर नई समझ विकसित करते हैं। वास्तव में, बच्चे भी जब किसी कहानी को पढ़ते हैं तो कहीं-न-कहीं उसके विषय में एक धारणा बनाते हैं और अपने अनुभव या पूर्वानुमान से जोड़कर उसे समझते हैं। लेखिका ने बच्चों को बातचीत के विभिन्न अवसर दिए और विभिन्न गतिविधियों से जोड़ा। एक बात जो अहम है वो ये कि शिक्षक को उत्साही और सक्रिय होना चाहिए व उसमें स्वयं पढ़ने की आदत होनी चाहिए।

इसमें एक-दो चीज़ मैं अपनी ओर से जोड़ना चाहूँगी कि अधिकांशतः कक्षा एक एवं दो के बच्चे हर शब्द नहीं समझ सकते, लेकिन भाषा की ध्वनि व लय से लगाव पैदा करना सीख सकते हैं। इसलिए हम कविताओं को लयबद्ध तरीक़े से गाकर बच्चों को उससे जोड़ सकते हैं। यहाँ पर एक बात का और ध्यान रखा जाए कि जब कोई कविता या कहानी बच्चों को सुनाएँ तो उसका उद्देश्य अवश्य बताएँ।

- ममता, सहायक अध्यापक, राजकीय प्राथमिक विद्यालय मनसूना, ब्लॉक उखीमठ, ज़िला रुद्रप्रयाग

पाठशाला के 10वें अंक में लेखकों द्वारा रोचक और पठनीय आलेख, अनुभव और कहानियाँ लिखी गई हैं। मुझे जेंडर असमानता जैसे एक महत्त्वपूर्ण विषय पर विजय प्रकाश का आलेख प्रभावी लगा। लेखक ने बड़े ही रोचक व सुन्दर तरीक़े से बच्चों के जेंडर सम्बन्धी दृष्टिकोण को बदलने का प्रयास किया है। यह जानना मज़ेदार है कि कैसे एक अध्यापक अपने छात्रों द्वारा समाज की संकीर्ण सोच में आमूलचूल परिवर्तन ला सकता है।

अनिल सिंह का लेख *कहानियाँ आख़िर करती क्या हैं?* में किसी कथानक को रोचक तरीक़े से प्रस्तुत करते हुए और अलंकारों व मुहावरों का प्रयोग करते हुए कहानी सुनाने के तौर-तरीक़ों पर बात की गई है। इसमें बच्चों पर किसी कहानी के पड़ने वाले प्रभाव को दर्शाया गया है।

अन्त में, मैं निशा नाग द्वारा किताब *साधारण लोग, असाधारण शिक्षक* की लिखी गई समीक्षा 'शिक्षकों की प्रेरणादायी गाथाएँ' पर दो शब्द कहना चाहूँगी। सर्वविदित है कि हमारे सरकारी विद्यालयों के शिक्षक विपरीत परिस्थितियों में भी विद्यालयों का संचालन कर रहे हैं। लेख दर्शाता है कि अधिकांश सरकारी विद्यालयों के अध्यापक अपने अथक प्रयासों से विद्यालयों की दशा सुधारने में लगे हैं, ताकि विद्यालयों की छात्र संख्या बढ़े व समाज का रुझान सरकारी स्कूलों की ओर हो जाए। सरकारी शिक्षा व्यवस्था की सकारात्मक छवि प्रस्तुत करता यह लेख हमें ऊर्जा प्रदान करता है।

- मीरा आर्या, राजकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय कुलॉऊ, गरुड़, बागेश्वर, उत्तराखंड

पाठशाला का 10वाँ अंक हमें सीखने-सिखाने की प्रक्रिया के विभिन्न पहलुओं को सहजता से खोजने व समझने की ओर ले जाता है। बातों-बातों में लेखक विजय प्रकाश जैन ने अपने लेख

में जिस प्रकार लड़के-लड़की में समानता दर्शाने का प्रयास किया है, यह संवेदनाओं से भरा है। बच्चों में प्रारम्भ से ही लड़कियों की क्षमता को कम न समझने की ओर इशारा किया गया है। जेंडर मुद्दे को प्रभावशाली तरीक़े से इस लेख में प्रस्तुत किया है।

लेखिका नीतू यादव ने *भेड़िए को दुष्ट क्यों कहते है चलो पता लगाएँ? लेख में* नकारात्मकता के पहलुओं को सकारात्मक तरीक़े से उजागर किया है। भेड़िए की प्रवृत्ति से मनुष्य के स्वभाव को बताने का प्रयास किया है। अनिल सिंह के लेख में कहानियों के शिक्षा में महत्त्व को रोचक ढंग से लिखा गया है और कुछ कहानियों के ज़रिए मन में चल रहे आवेगों को बाहर लाने का प्रयास किया गया है। कहानियों द्वारा ज्ञान निर्माण को सुदृढ़ बनाने का रास्ता दिखाया गया है? शिव पाण्डेय के लेख में पीयर इंस्ट्रक्शन शिक्षण पद्धति के अनुभव विचारणीय हैं।

लेखिका अंजना त्रिवेदी ने *आपदा में सामाजिक विज्ञान का चेहरा* लेख में लॉकडाउन के दौरान एक शिक्षिका की समस्या व असमंजस को दिखाया है। भाषा सीखने में आने वाली कठिनाइयाँ व इनसे उबरने के नए तरीक़े बताए गए हैं। लेख कहता है, विषय की गहरी समझ बच्चों के साथ मानवीय रिश्ते से बनती है। निशा नाग का *शिक्षकों की प्रेरणादायी गाथाएँ कहती किताब* आलेख भी रोचक व ज्ञान से पूर्ण है।

पत्रिका वाक़ई शिक्षक व बच्चों के अन्तर्सम्बन्धों को समझने की कुंजी है। इस पत्रिका को पढ़कर कुछ नई विधाएँ मन में घर कर रही हैं जो निश्चित ही शिक्षण व जीवन में लाभदायी सिद्ध होंगी। आशा करती हूँ, अगले अंक में गणित से सम्बन्धित कुछ नए व रोचक तथ्यों को पढ़ने का अवसर मिलेगा।

- रुकसाना बानो, राजकीय प्राथमिक विद्यालय बिमोला, गरुड़, बागेश्वर, उत्तराखण्ड

पाठशाला का 10वाँ अंक शिक्षक साथियों के लिए बहुत उपयोगी है। शैक्षिक विमर्श के अलावा यह पत्रिका शिक्षकों के अनुभव और कक्षा में उनके काम को सार्थक तरीक़े से 'रिफ्लेक्ट' करती है।

वैसे तो इस अंक की सारी सामग्री अच्छी है, लेकिन मैं विशेष रूप से ज़िक्र करुँगी *मैं महापल्ली में रहता हूँ* लेख की। मीनू पालीवाल का यह आलेख कई मायनों में हमें बच्चों के सीखने की प्रक्रियाओं का अवलोकन करने में सहायक है। यहाँ बच्चे के द्वारा किए गए कार्यों को देखने का, सकारात्मक निर्णय लेने का तथा लेख सकारात्मक सोच से बच्चे को प्रोत्साहित करने की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित करता है। बच्चे के द्वारा तीन-चार माह में सीखे गए शब्दों को लिखने का अवसर देकर, बारीक़ी से उसका अवलोकन करके जो निष्कर्ष निकाले गए वे बेहतरीन हैं। जैसे अक्षर पहचानना और अपने ही प्रयासों द्वारा उन्हें जोड़कर कुछ लिखने का प्रयास करना सराहनीय है। क्योंकि हम शिक्षक हैं इस प्रकार के नए सन्दर्भ जैसे तीन-चार माह में ही बच्चा जो सीख पाया है उसे स्वतः लिखने के अवसर देना और बच्चे में निहित अनूठी प्रतिभा को उभारना मायने रखता है। उदाहरण के तौर पर 'क्ष' का प्रयोग बच्चे द्वारा नए संदर्भ में करना। इस लेख से बहुत कुछ सीखने को मिला है। मीनू को साधुवाद है ही और साथ ही साधुवाद पाठशाला की पूरी टीम को भी।

- सुशील कंवर, शिक्षिका, उच्च प्राथमिक शाला जगन्नाथ पुरा, जयपुर

पाठशाला, अध्ययन–अध्यापन क्षेत्र के विभिन्न पहलुओं को समीक्षात्मक दृष्टि से उजागर करती एक बेहतरीन पत्रिका लगी।

आलेख *जेंडर संवेदनशील शिक्षकों का सृजन* हो या *लिखना : मौखिक से मौलिक की ओर* या *प्राथमिक कक्षाओं में लिखना सीखना : कुछ अवलोकन*, सभी रचनाएँ नया सिखाने के लिए तत्पर हैं। इन लेखों में शैक्षणिक जगत के लिए आवश्यक एवं चिन्तनशील मुद्दे हैं। शिक्षकों की उत्साही सहभागिता बच्चों के साथ ज़रूरी है। शुरुआती रूप में बच्चों के साथ कार्य करने में जहाँ लिखना बहुत महत्त्वपूर्ण माना जाता है वहीं सुनना, बोलना, पढ़ना, आदि का अन्तर्सम्बन्ध भी सुगम रूप से दर्शाया गया है।

स्कूली शिक्षा में जनजातियों की भागीदारी : रूमानियत से परे कुछ विचारणीय मुद्दे लेख में अमित कोहली के विचारों से यह समझ आया कि इस देश का प्रत्येक बच्चा शिक्षा का हक़दार है। उसे मुख्य धारा में शामिल होने का पूरा हक़ है। मुकेश मालवीय द्वारा रचित *क्या गणित आपको अन्धविश्वास सिखाता है?* पढ़कर गणितीय अवधारणाओं के बारे में जानकारी मिलती है। यह लेख शिक्षक वर्ग के लिए महती भूमिका निभाता है। कक्षा अनुभव के अन्तर्गत *मोहल्ले में अपनी जगह : मोहल्ला एलएसी* दूरदराज़ के इलाक़ों के लिए शिक्षा का एक उम्दा मॉडल लगा।

पत्रिका में 'शिक्षा की पहुँच सभी तक', 'आवश्यकता के अनुरूप शिक्षा', 'पुस्तकें, पुस्तकालय एवं शिक्षक', गुणवत्तापूर्ण शिक्षा, जैसे मुद्दों को भी शामिल करने का सुझाव है।

- पूनम भाटिया, प्रधान अध्यापक, उच्च प्राथमिक विद्यालय, बम्बाला, सुखपुरिया, जयपुर

फॉर्म 4

1. **प्रकाशन का स्थान :** अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमेंट, प्लाट नं. 321-322, ई-8 अरेरा कॉलोनी, पंजाब नेशनल बैंक के पीछे, फार्चून प्राइड सोसायटी, त्रिलंगा, भोपाल- 462039 मध्यप्रदेश
2. **प्रकाशन की नियत अवधि :** तिमाही
3. **मुद्रक का नाम :** मनोज पी.
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा, बेंगलूरु 562 125 कर्नाटक
4. **प्रकाशक का नाम :** मनोज पी.
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड, सरजापुरा, बेंगलूरु 562 125 कर्नाटक
5. **सम्पादक का नाम :** गुरबचन सिंह
   राष्ट्रीयता : भारतीय
   पता : ई 8 / 103 शिवकुंज रेलवे हाउसिंग सोसायटी, स्टॉप नं. 11 के पास, अरेरा कॉलोनी, भोपाल- 462016 मध्यप्रदेश
6. **उन व्यक्तियों के नाम जिनका स्वामित्व है :**
   स्वामी : अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डिवलपमेंट
   पता : प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039

मैं मनोज पी. घोषणा करता हूँ कि मेरी अधिकतम जानकारी और विश्वास के अनुसार ऊपर दिए गए विवरण सत्य हैं।

तारीख 9 मार्च 2022 **प्रकाशक के हस्ताक्षर**

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल

द्वारा आयोजित संगोष्ठी

विद्यालयी शिक्षा में कला व शारीरिक शिक्षा : आवश्यकता, वर्तमान परिस्थितियाँ, सम्भावनाएँ व चुनौतियाँ

में भाग लेने के लिए आप सभी आमंत्रित हैं।

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय 2017 से देश के अलग-अलग विश्वविद्यालयों के साथ मिलकर विद्यालयी शिक्षा से सम्बन्धित विषयों पर 'शिक्षा के सरोकार' शृंखला के अन्तर्गत भारतीय भाषाओं में संगोष्ठी का आयोजन करता रहा है। इस क्रम में अब तक हिन्दी, कन्नड़ और पंजाबी भाषाओं में विभिन्न मुद्दों पर संगोष्ठियाँ आयोजित की गई हैं।

इसी शृंखला की उक्त संगोष्ठी अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, भोपाल के कान्हासैय्या में नवनिर्मित परिसर में दिसम्बर,2022/जनवरी, 2023 में प्रस्तावित है।

संगोष्ठी का परिप्रेक्ष्य

कला शिक्षा व शारीरिक शिक्षा को हमेशा से ही शिक्षा का महत्त्वपूर्ण हिस्सा माना जाता रहा है। नीति एवं वैचारिक दस्तावेज़ों में भी रेखांकित किया जाता रहा है कि खेल व कला के सभी पहलू, बौद्धिक विकास एवं औपचारिक विषयों की अवधारणाओं की समझ के विकास में महती भूमिका अदा करते हैं। यह भी कि समाजीकरण की प्रक्रिया एवं भावनात्मक और संवेदनात्मक विकास में भी कला व खेलकूद की अहम भूमिका है। राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा (एनसीएफ) 2005 और कला, संगीत, नृत्य और रंगमंच पर पोजीशन पेपर, दोनों ही दस्तावेज़, कला व कला-एकीकृत शिक्षा की वकालत करते हैं। ये दोनों दस्तावेज़ संगीत, नृत्य, दृश्य कला और थिएटर को एक अनिवार्य हिस्से (दसवीं कक्षा तक) के रूप में स्कूल पाठ्यक्रम में शामिल करने पर ज़ोर देते हैं। इसी तरह, शिक्षा में खेलों को एकीकृत करने की हिमायत करते हुए राष्ट्रीय खेल नीति 2001 खेलों एवं शारीरिक शिक्षा को शैक्षिक पाठ्यक्रम के साथ मिलाने तथा इसे सेकेण्डरी स्कूल तक शिक्षा का अनिवार्य हिस्सा बनाने और इसे विद्यार्थी की मूल्यांकन पद्धति में सम्मिलित करने की प्रतिबद्धता को दर्शाती है। नई शिक्षा नीति 2020 ने भी इसे अपनी वैचारिक समझ का प्रमुख हिस्सा माना है, और इसके महत्त्व को स्वीकार करते हुए यह नीति शिक्षा में भारतीय कलाओं, खेलकूद और संस्कृति को बढ़ावा देने पर ज़ोर देती है।

शारीरिक शिक्षा, खेलकूद व कला शिक्षा की स्कूल में जगह पर मंथन एवं संवाद की महती आवश्यकता है। यह समझने व विचार करने की आवश्यकता है कि यह क्यों महत्त्वपूर्ण है, नीति दस्तावेज़ इनके बारे में क्या कहते हैं, स्कूलों व शिक्षा व्यवस्था के अन्य हिस्सों में इसका क्या स्थान है व आज इसकी स्थिति क्या है, इन्हें शामिल करने के लिए किस-किस तरह के व्यवस्थित अथवा प्रयोगात्मक छोटे-छोटे प्रयास हुए हैं, इन सबके क्या अनुभव रहे हैं व इनके आलोक में आगे बढ़ने का क्या रास्ता हो सकता है व इनके ज़्यादा गम्भीरता से शामिल होने में प्रमुख अड़चनें किस प्रकार की हैं (आर्थिक हैं, व्यवस्थागत हैं, सामाजिक हैं, सांस्कृतिक हैं आदि-आदि)। यह संगोष्ठी इन सभी मसलों के इर्द-गिर्द संवाद को बढ़ावा देने के लिए है। इस सन्दर्भ में कुछ उपविषय इस तरह हो सकते हैं :

अ. स्कूली शिक्षा में कला/ सौन्दर्यशास्त्र के आयामों की मौजूदगी ...क्यों ?

1. स्कूलों में खेल व कला शिक्षा : दस्तावेज़ों में उनके प्रति दृष्टिकोण व उसका विकास/ कला और खेल शिक्षा–परिप्रेक्ष्य
2. इंसान के विकास और गहराई से सीखने में कला और खेल शिक्षा का योगदान
3. ज्ञान के एक हिस्से के रूप में कला और खेलकूद व शारीरिक शिक्षा
4. कला शिक्षा और खेल शिक्षा के सन्दर्भ में हुए प्रयोग
5. कला शिक्षा और खेल शिक्षा की मौजूदा स्थिति व सम्भावनाएँ
6. कला शिक्षा और खेलकूद : जेंडर, विशेष क्षमता वाले बच्चे, सभी की भागीदारी

आ. पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक स्तर पर कला और खेल शिक्षा

1. सभी विद्यार्थियों में शिक्षा के प्रति दिलचस्पी पैदा करने और उनके लिए शिक्षा को अर्थपूर्ण बनाने में इनकी भूमिका
2. पूर्व प्राथमिक और प्राथमिक स्तर के लिए कला व खेल शिक्षा का दृष्टिकोण व स्वरूप
3. विषयों की चारदीवारी और कला शिक्षा व खेलकूद

इ. उच्च प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की कक्षाओं में कला और खेल

1. कला और खेल का अन्य विषयों के साथ समेकन/ अन्तर्सम्बन्ध : नवाचार, प्रतिफल, चुनौतियाँ और सम्भावनाएँ
   (अ) इस स्तर पर विषयों के शिक्षण में कला की जगह
   (ब) कला व खेलों और विषय शिक्षण से इनका जुड़ाव
2. कला और खेलकूद शिक्षण के लिए पाठ्यक्रम निर्धारण : मौजूदा स्थिति, चुनौतियाँ और सम्भावनाएँ
3. माध्यमिक स्तर के लिए कला व खेल शिक्षा का दृष्टिकोण व स्वरूप

इ. शिक्षक प्रशिक्षण : वर्तमान स्थिति, चुनौतियाँ, सम्भावनाएँ

1. कला शिक्षा व खेलकूद : शिक्षकों की तैयारी
2. सामान्य शिक्षा महाविद्यालयों में कला और खेल के लिए तैयारी की सम्भावनाओं का विश्लेषण
3. कला शिक्षा और खेलकूद : स्कूलों की तैयारी

संगोष्ठी में भाग लेने की प्रक्रिया

संगोष्ठी हिन्दी में होगी। प्रस्तुत किए जाने वाले आलेख हिन्दी भाषा में ही अपेक्षित हैं। संगोष्ठी में इनका प्रस्तुतिकरण और उन पर चर्चा भी हिन्दी में ही होगी।

संगोष्ठी में भाग लेने के लिए आपको अपने प्रस्तावित शोध आलेख का एक 'एब्स्ट्रैक्ट' भेजना होगा। यहाँ 'एब्स्ट्रैक्ट' से आशय है कि आपके आलेख के मुख्य बिन्दु क्या होंगे, अपनी बात को पुख़्ता रूप से रखने के लिए आपके अवलोकन और तर्क की पुष्टि के लिए या ध्यान आकर्षित करने के लिए आप कौन-से साहित्य व शोध प्रविधि का सहारा लेंगे, और इन सबसे आप किन बातों की स्थापना करना चाहेंगे।

आप अपने प्रस्तावित पर्चे का एब्स्ट्रैक्ट 15 मई, 2022 तक भेज सकते हैं। एब्स्ट्रैक्ट 500 से 800 शब्दों तक का हो सकता है। कृपया 'एब्स्ट्रैक्ट' के अन्त में अपना संक्षिप्त परिचय, इमेल, डाक का पता तथा फ़ोन नम्बर का उल्लेख अवश्य करें। जहाँ तक सम्भव हो 'एब्स्ट्रैक्ट' वर्ड फाइल में यूनीकोड में भेजें। साथ ही इस फाइल की एक पीडीएफ भी भेजें।

अपने एब्स्ट्रैक्ट seminar.artssportseducation@gmail.com पर भेजें।

एब्स्ट्रैक्ट प्राप्त होने पर संगोष्ठी की अकादमिक समिति उस पर विमर्श के बाद अपनी स्वीकृत ईमेल के माध्यम से आपको भेजेगी। एब्स्ट्रैक्ट स्वीकृत होने के बाद आप पूर्ण आलेख लिखना आरम्भ कर सकते हैं। पूर्ण आलेख भी उक्त ईमेल पते पर ही भेजा जाना है। और अधिक जानकारी के लिए दिए गए ईमेल पर सम्पर्क कर सकते हैं।

मुद्रक तथा प्रकाशक मनोज पी. द्वारा अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डेवलपमेंट के लिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, E-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039 की ओर से प्रकाशित एवं गणेश ग्राफ़िक्स, 26-बी, देशबंधु परिसर, प्रेस काम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1 भोपाल द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : गुरबचन सिंह

लेखकों से आग्रह

पाठकों से प्राप्त सुझाव के आधार पर *पाठशाला भीतर और बाहर* में छपने वाले लेखों की प्रकृति, स्वरूप और प्रस्तुति में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। प्रयास है कि पत्रिका ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे साथियों के लिए अपने अनुभवों को दर्ज करने, उनको विस्तार देने और गहराई देने के लिए एक उपयुक्त मंच बने और साथ ही इन अनुभवों को साझा करने का भी। इसी तरह यह ज़मीनी स्तर पर होने वाले कार्य की दृष्टि से अर्थपूर्ण व कार्य में मददगार भी बन पाएगी। और व्यापक पाठक वर्ग सहित आप व हमारे शिक्षक साथी इसे पढ़ेंगे और इसका अधिकाधिक उपयोग कर पाएँगे।

आपसे आग्रह है कि आप अनुभवों को दर्ज कर पत्रिका में छपने के लिए भेजें। आप स्कूल में, कक्षा में, और अलग–अलग मंचों पर शिक्षकों के साथ किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके साथी शिक्षक भी उनके द्वारा किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके द्वारा भेजे गए लेख बच्चों के सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे– विभिन्न विषयों या प्रकरणों को सीखने–सिखाने के अनुभव या फिर शिक्षकों के साथ अन्तर्क्रिया के नए तौर–तरीक़ों पर केन्द्रित या फिर किसी महत्त्वपूर्ण या उल्लेखनीय संवाद के बारे में जो औरों के लिए भी उपयोगी हो। इनके और बहुत–से उदाहरण हो सकते हैं। जैसे– बच्चों के साथ काम के सन्दर्भ में गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक अध्ययन, आदि किसी भी विषय की किसी भी कक्षा के अनुभव। ये अनुभव किसी अवधारणा को बच्चों को सिखाने, उन्हें गतिविधियाँ कराने या उनके साथ खेल खेलने आदि के हो सकते हैं।

आप, स्कूल और शिक्षकों के साथ (इसमें एंगेज्ड शिक्षक भी शामिल हैं) जो काम कर रहे हैं, उससे सम्बन्धित लेख भी साझा कर सकते हैं। इसमें आपने जो किया उसके साथ–साथ आप अपने काम में किस ख़ास तरह से आगे बढ़े और वह आपने क्या सोचकर किया, इस विचार को शामिल कर सकते हैं। इस दौरान आप अपने काम के सकारात्मक नतीजे व उसमें दिखने वाले गैप भी बताएँ, जैसे– बाल सभा या बाल शोध मेलों में कुछ परिवर्तन किया, तो वह क्या सोचकर किया, उसका क्या नतीजा निकला और बेहतर करने के लिए उसमें और क्या–क्या किया जा सकता है, आदि? इसी तरह कक्षा में बच्चों को चित्रकला करवाने, कहानी सुनाने या किसी नाटक में भाग लिया, तो उसके बारे में क्या अनुभव रहे, यह बता सकते हैं। गणित का एक उदाहरण शिक्षण सामग्री जैसे– गिनमाला का प्रयोग करके गिनती सिखाने का हो सकता है। इसी तरह वालंटरी टीचर फ़ोरम, टीचर लर्निंग सेंटर, समर–विंटर कैम्प के शैक्षिक प्रयासों आदि के बारे में भी मननशील लेख हो सकते हैं। ये लेख पाठक को यह समझने में मदद करें कि उनमें क्या प्रयास था, किस परिस्थिति में उसे सोचा गया, कैसे किया गया, क्या हो पाया, क्या कमी रही, क्या सीखा और आगे के लिए आपके समूह के लिए और पाठकों के लिए उसके क्या निहितार्थ हैं?

इसी तरह, शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान, वालंटरी टीचर फ़ोरम में कार्य के दौरान, टीचर लर्निंग सेंटर पर हो रहे प्रयासों में, या उनके साथ सहकारी शिक्षण के दौरान हुए अनुभवों को मननशील व समालोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखकर भेजें तो अच्छा रहेगा। इसी तरह बच्चों अथवा शिक्षकों के साथ कक्षा के बाहर हुए सार्थक अनुभव भी आप मननशील ढंग से लिख सकते हैं।

लेखों के विषय और विषयवस्तु ऐसी हो जिससे फ़ील्ड में कार्य करने वाले साथियों और शिक्षकों को वैचारिक मदद मिलती हो और उनका दक्षता संवर्धन होता हो। लेख ऐसे हों जो स्कूल व कक्षा में पढ़ने–पढ़ाने के तरीक़ों व अन्य गतिविधियों में शिक्षकों व फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें। साथ ही ऐसे लेख भी हों जिनसे विविध विषयों एवं उनमें बुनी अवधारणाओं को पढ़ाने में मदद मिले और उनकी भाषा व विषय सामग्री अधिक–से–अधिक सदस्यों को आसानी से समझ में आने वाली हो।

यदि लेख में दिए गए किसी विवरण, चर्चा अथवा व्याख्या से सम्बन्धित किसी तर्क अथवा प्रमाण के लिए किसी पुस्तक, जरनल या वेब स्रोत से कोई सामग्री ली गई हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करें। आप जो भी सन्दर्भ सामग्री लें उससे लेख को अर्थपूर्ण, तार्किक और गुणवत्तापूर्ण बनाने में मदद मिले।

इसके अलावा आप शिक्षा से सम्बन्धित किसी पुस्तक, फ़िल्म अथवा अन्य शिक्षण सामग्री के बारे में भी लिख सकते हैं, मसलन उनका परिचय, समीक्षा अथवा विश्लेषण।

आशा करते हैं कि आपके यह लेखकीय अनुभव ठोस एवं यथार्थपरक होंगे। उनमें कुछ ऐसा ज़रूर हो जो पाठक को रुचिपूर्ण व सार्थक लगे।

लेखकों को अपने लेखन के सन्दर्भ में किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता महसूस होती है तो वे इसके लिए सम्पर्क कर सकते हैं। उन्हें सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा आवश्यक सहयोग और सुझाव दिए जाएँगे। उम्मीद है कि *पाठशाला भीतर और बाहर* का यह ग्यारहवाँ अंक आपको अच्छा लगेगा और आप इसके अगले अंकों के लिए ज़रूर लिखेंगे। पत्रिका के इस अंक पर आपकी टिप्पणियों व सुझावों का हमें हमेशा की तरह इन्तज़ार रहेगा।

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अन्य पत्रिकाएँ